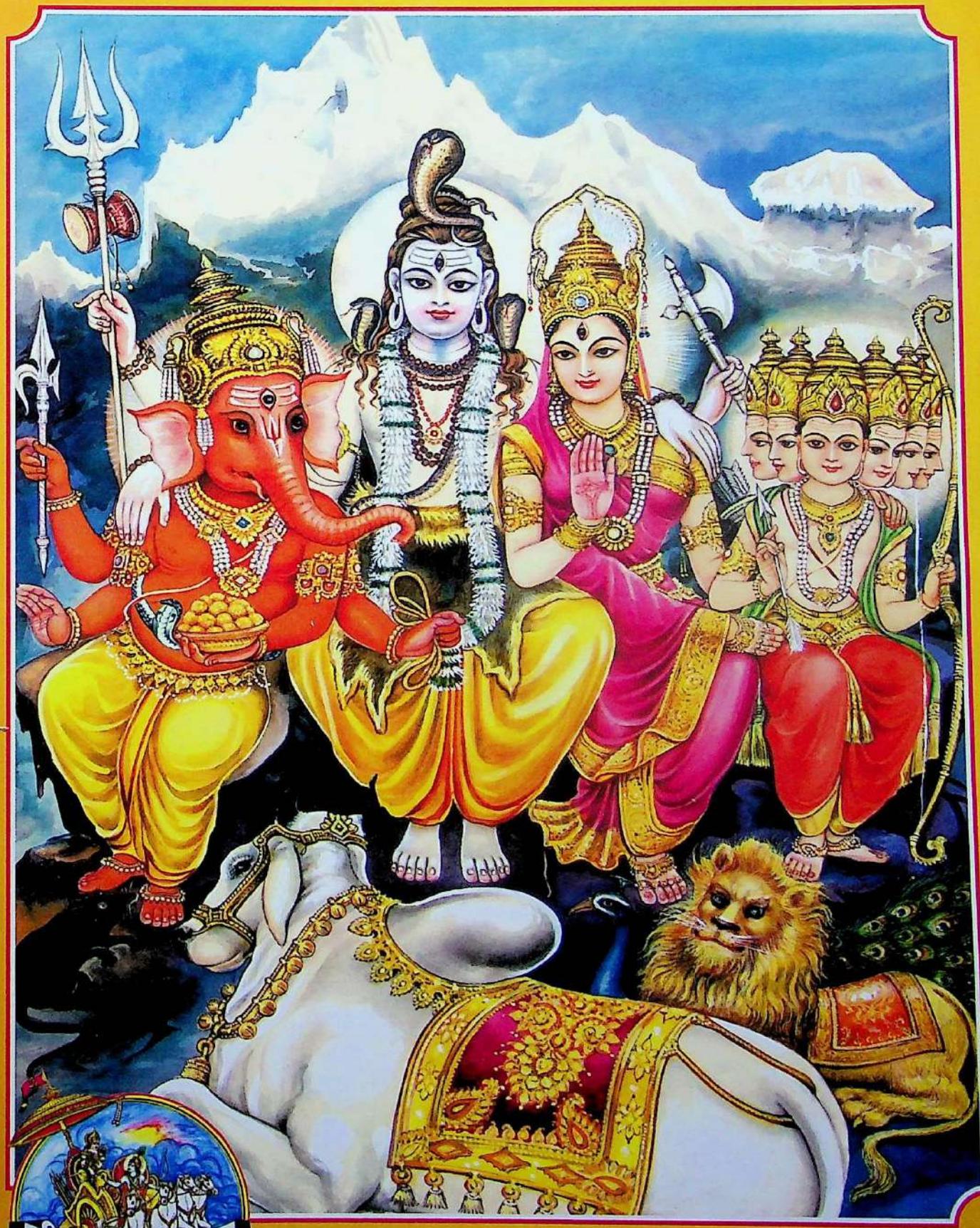


श्रीशिवमहापुराण

[प्रथम-खण्ड — पूर्वार्ध]

(सचित्र, मूल संस्कृत श्लोक — हिन्दी-व्याख्यासहित)





COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]

**गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित
पुराण, उपनिषद् आदि**

- 1930 } श्रीमद्भागवत-सुधासागर—भाषानुवाद, सचित्र
1945 } „ „ „ (विशिष्ट संस्करण)
25 श्रीशुक्सुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें
1951 } श्रीमद्भागवतमहापुराण—
1952 } „ „ सटीक पत्राकारकी तरह, बेड़िआ
दो खण्डोंमें सेट
26 } „ „ —(हिन्दी-अनुवादसहित)
27 } „ „ दो खण्डोंमें सेट (गुजराती भी)
564,565 श्रीमद्भागवत-महापुराण—अंग्रेजी सेट
29 „ मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी)
124 श्रीमद्भागवत-महापुराण—मूल मझला
1092 भागवतस्तुति-संग्रह
2009 भागवत-नवनीत
30 श्रीप्रेम-सुधासागर
31 श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध
728 महाभारत—हिन्दी टीका-सहित
सचित्र [छ: खण्डोंमें] सेट
38 महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक
1589 „ „ „ —केवल भाषा
39 संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा,
511 } „ „ सचित्र (दो खण्डोंमें) सेट
44 संक्षिप्त पद्मपुराण
1468 सं० शिवपुराण (विशिष्ट संस्करण)
789 सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी]
1133 सं० देवीभागवत—मोटा टाइप [गुजराती भी]
48 श्रीविष्णुपुराण—(हिन्दी-अनुवादसहित)
1364 श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी)
1183 सं० नारदपुराण
279 सं० स्कन्दपुराण
539 सं० मार्कण्डेयपुराण
1897 } श्रीमद्देवीभागवत महापुराण—(हिन्दी-
1898 } „ „ अनुवादसहित) दो खण्डोंमें सेट
1793 } „ „ (केवल हिन्दी)
1842 } „ „ दो खण्डोंमें सेट

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीशिवमहापुराण

[प्रथम-खण्ड — पूर्वार्ध]

(विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता—सृष्टिखण्ड, सतीखण्ड, पार्वतीखण्ड, कुमारखण्ड और युद्धखण्ड)

[सचित्र, मूल संस्कृत श्लोक — हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

५५८

गीताप्रेस ग्रन्थालय

[उत्तर - हरिहर - लक्ष्मी]

(श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत्, श्रीमद्भगवत्पुराण—गोविन्द, गोविन्दी, गोविन्दीप्रसाद, जिन्हों—कर्मण तत्कामं तद्वा तद्विदः)

सं० २०७६ प्रथम संस्करण ७,०००

❖ मूल्य—₹ ३००

(तीन सौ रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

(गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)

फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०, २३३१२५१

web : gitapress.org e-mail : booksales@gitapress.org

गीताप्रेस प्रकाशन gitapressbookshop.in से online खरीदें।

निवेदन

पुराण बाड़मयमें श्रीशिवमहापुराणका अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह पुराण चौथा है। शिवके उपासक इस पुराणको शैवभागवत मानते हैं। इस ग्रन्थके आदि, मध्य तथा अन्तमें सर्वत्र भूतभावन भगवान् सदाशिवकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। वेद-वेदान्तमें विलसित परमतत्त्व—परमात्माका इस पुराणमें शिव नामसे गान किया गया है।

सन् १९६२ में कल्याणके विशेषांकके रूपमें संक्षिप्त शिवपुराणाङ्कका प्रकाशन हुआ था, जिसमें शिवपुराणकी कथाएँ साररूपमें हिन्दीमें प्रकाशित हुई थीं। भगवान् सदाशिवके प्रेमी पाठकोंका पिछले बहुत वर्षोंसे यह आग्रह था कि मूल शिवमहापुराणका सानुवाद प्रकाशन विशेषांकके रूपमें किया जाय। इस दृष्टिसे मूल शिवमहापुराणके प्रकाशनकी योजना बनायी गयी, परंतु विशेषांककी पृष्ठसंख्या सीमित होनेके कारण चौबीस हजार श्लोकोंके इस बृहत् पुराणका मूलसंहित प्रकाशन एक वर्षमें सम्भव नहीं था, अतः यह निर्णय लिया गया कि शिवमहापुराणके मूल श्लोक पुस्तकरूपमें प्रकाशित कर दिये जायें तथा प्रत्येक श्लोकका अनुवाद श्लोकसंख्यासंहित दो वर्षोंमें सर्वसाधारणके लिये विशेषांकके रूपमें प्रकाशित किया जाय। तदनुसार सम्पूर्ण मूल शिवमहापुराण पुस्तकरूपमें प्रकाशित कर दिया गया तथा सन् २०१७ में श्रीशिवमहापुराण पूर्वार्थ (विद्येश्वरसंहिता एवं रुद्रसंहिता)-का तथा सन् २०१८ में इस पुराणके उत्तरार्थ (शतरुद्रसंहितासे वायवीयसंहितातक)-का हिन्दी अनुवाद विशेषांकके रूपमें प्रकाशित किया गया।

प्रतिपाद्य-विषयकी दृष्टिसे शिवमहापुराण अत्यन्त उपयोगी महापुराण है। इसमें भक्ति, ज्ञान, सदाचार, शौचाचार, उपासना, लोकव्यवहार तथा मानवजीवनके परम कल्याणकी अनेक उपयोगी बातें निरूपित हैं। शिवज्ञान, शैवीदीक्षा तथा शैवागमका यह अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है। साधना एवं उपासना-सम्बन्धी अनेकानेक सरल विधियाँ इसमें निरूपित हैं। कथाओंका तो यह आकर ग्रन्थ है। इसकी कथाएँ अत्यन्त मनोरम, रोचक तथा बड़े ही कामकी हैं। मुख्य रूपसे इस पुराणमें देवोंके भी देव महादेव भगवान् साम्बसदाशिवके सकल, निष्कल स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, उनके लीलावतारोंकी कथाएँ, द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके आख्यान, शिवरात्रि आदि व्रतोंकी कथाएँ, शिवभक्तोंकी कथाएँ, लिंगरहस्य, लिंगोपासना, पार्थिवलिंग, प्रणव, बिल्व, रुद्राक्ष और भस्म आदिके विषयमें विस्तारसे वर्णन है। यह पुराण उच्चकोटिके सिद्धों, आत्मकल्याणकामी साधकों तथा साधारण आस्तिकजनों—सभीके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें तो इस पुराणके अध्ययन एवं मनन तथा इसके उपदेशोंके अनुसार चलनेकी विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है। शिवपुराणका पठन-पाठन सच्ची सुख-शान्तिके विस्तारमें परम सहायक सिद्ध हो सकता है। शिवभक्तोंके उसी माँगको देखते हुए २ खण्डोंमें संस्कृत मूल हिन्दी व्याख्याके साथ इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

आस्तिकजन इस महापुराणको पढ़कर लाभ उठायें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्यको प्राप्त करें, भगवान् सदाशिवसे यही प्रार्थना है।

—राधेश्याम खेमका

श्रीशिवमहापुराण

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
--------	------	--------------	--------	------	--------------

माहात्म्य

१. शौनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सूतजीका उन्हें शिवमहापुराणकी महिमा सुनाना.....	१३
२. शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति	१७
३. चंचुलाका पापसे भय एवं संसारसे वैराग्य....	२१
४. चंचुलाकी प्रार्थनासे ब्राह्मणका उसे पूरा शिवपुराण सुनाना और समयानुसार शरीर छोड़कर शिवलोकमें	

जा चंचुलाका पार्वतीजीकी सुखी होना.....	२५
५. चंचुलाके प्रयत्नसे पार्वतीजीकी आज्ञा पाकर तुम्बुरुका विश्वपर्वतपर शिवपुराणकी कथा सुनाकर बिन्दुगका पिशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन दोनों दम्पतीका शिवधाममें सुखी होना.....	२८
६. शिवपुराणके श्रवणकी विधि	३०
७. श्रोताओंके पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन.	३५

विद्येश्वरसंहिता

१. प्रयागमें सूतजीसे मुनियोंका शीघ्र पापनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न	४५
२. शिवपुराणका माहात्म्य एवं परिचय	४८
३. साध्य-साधन आदिका विचार	५५
४. श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन	५७
५. भगवान् शिवके लिंग एवं साकार विग्रहकी पूजाके रहस्य तथा महत्वका वर्णन	५९
६. ब्रह्मा और विष्णुके भयंकर युद्धको देखकर देवताओंका कैलास-शिखरपर गमन	६३
७. भगवान् शंकरका ब्रह्मा और विष्णुके युद्धमें अग्निस्तम्भरूपमें प्राकट्य, स्तम्भके आदि और अन्तकी जानकारीके लिये दोनोंका प्रस्थान....	६५
८. भगवान् शंकरद्वारा ब्रह्मा और केतकी पुष्ट्यको शाय देना और पुनः अनुग्रह प्रदान करना	६८
९. महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका परिचय देते हुए लिंग-पूजनका महत्व बताना	७०
१०. सृष्टि, स्थिति आदि पाँच कृत्योंका प्रतिपादन, प्रणव एवं पंचाक्षर-मन्त्रकी महत्ता, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान होना	७५
११. शिवलिंगकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजनकी विधिका वर्णन तथा शिवपदकी प्राप्ति करनेवाले सत्कर्मोंका विवेचन	७९
१२. मोक्षदायक पुण्यक्षेत्रोंका वर्णन, कालविशेषमें विभिन्न नदियोंके जलमें स्नानके उत्तम फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी	८६
१३. सदाचार, शौचाचार, स्नान, भस्मधारण, सन्ध्या-	

वन्दन, प्रणव-जप, गायत्री-जप, दान, न्यायतः धनोपार्जन तथा अग्निहोत्र आदिकी विधि एवं उनकी महिमाका वर्णन	९०
१४. अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन, भगवान् शिवके द्वारा सातों वारोंका निर्माण तथा उनमें देवाराधनसे विभिन्न प्रकारके फलोंकी प्राप्तिका कथन	९९
१५. देश, काल, पात्र और दान आदिका विचार .	१०४
१६. मृत्तिका आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके लिये नैवेद्यका विचार, पूजनके विभिन्न उपचारोंका फल, विशेष मास, वार, तिथि एवं नक्षत्रोंके योगमें पूजनका विशेष फल तथा लिंगके वैज्ञानिक स्वरूपका विवेचन	११०
१७. षड्लिंगस्वरूप प्रणवका माहात्म्य, उसके सूक्ष्म रूप (३०कार) और स्थूल रूप (पंचाक्षर मन्त्र)-का विवेचन, उसके जपकी विधि एवं महिमा, कार्यब्रह्मके लोकोंसे लेकर कारणरुद्रके लोकों-तकका विवेचन करके कालातीत, पंचावरण-विशिष्ट शिवलोकके अनिवार्यनीय वैभवका निरूपण तथा शिवभक्तोंके सत्कारकी महत्ता ...	१२१
१८. बन्धन और मोक्षका विवेचन, शिवपूजाका उपदेश, लिंग आदिमें शिवपूजनका विधान, भस्मके स्वरूपका निरूपण और महत्व, शिवके भस्मधारणका रहस्य, शिव एवं गुरु शब्दकी व्युत्पत्ति तथा विज्ञानितके उपाय और शिवधर्मका निरूपण	१३६
१९. पार्थिव शिवलिंगके पूजनका माहात्म्य.....	१५०
२०. पार्थिव शिवलिंगके निर्माणकी रीति तथा वेद-मन्त्रोद्घारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	विधिका वर्णन	१५३		२३. भस्म, रुद्राक्ष और शिवनामके माहात्म्यका वर्णन	१६९
२१.	कामनाभेदसे पार्थिवलिंगके पूजनका विधान ..	१६१	२४. भस्म-माहात्म्यका निरूपण	१७३	
२२.	शिव-नैवेद्य-भक्षणका निर्णय एवं बिल्वपत्रका माहात्म्य	१६५	२५. रुद्राक्षधारणकी महिमा तथा उसके विविध भेदोंका वर्णन	१८४	
	रुद्रसंहिता				
	१-सृष्टिखण्ड				
१.	ऋषियोंके प्रश्नके उत्तरमें श्रीसूतजीद्वारा नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा	१९५	८. ब्रह्मा और विष्णुको भगवान् शिवके शब्दमय शरीरका दर्शन	२३१	
२.	नारद मुनिकी तपस्या, इन्द्रद्वारा तपस्यामें विघ्न उपस्थित करना, नारदका कामपर विजय पाना और अहंकारसे युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे अपने तपका कथन	१९८	९. उमासहित भगवान् शिवका प्राकट्य, उनके द्वारा अपने स्वरूपका विवेचन तथा ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंकी एकताका प्रतिपादन	२३५	
३.	मायानिर्मित नगरमें शीलनिधिकी कन्यापर मोहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे उनका रूप माँगना, भगवान् का अपने रूपके साथ वानरका-सा मुँह देना, कन्याका भगवान्को वरण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणोंको शाप देना	२०३	१०. श्रीहरिको सृष्टिकी रक्षाका भार एवं भोग-मोक्ष-दानका अधिकार देकर भगवान् शिवका अन्तर्धान होना	२४१	
४.	नारदजीका भगवान् विष्णुको क्रोधपूर्वक फटकारना और शाप देना, फिर मायाके दूर हो जानेपर पश्चात्तापपूर्वक भगवान्के चरणोंमें गिरना और शुद्धिका उपाय पूछना तथा भगवान् विष्णुका उन्हें समझा-बुझाकर शिवका माहात्म्य जाननेके लिये ब्रह्माजीके पास जानेका आदेश और शिवके भजनका उपदेश देना	२०८	११. शिवपूजनकी विधि तथा उसका फल	२४५	
५.	नारदजीका शिवतीर्थोंमें भ्रमण, शिवगणोंको शापोद्धारकी बात बताना तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे शिवतत्त्वके विषयमें प्रश्न करना ...	२१५	१२. भगवान् शिवकी श्रेष्ठता तथा उनके पूजनकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन	२५२	
६.	महाप्रलयकालमें केवल सद्ब्रह्मकी सत्ताका प्रतिपादन, उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे ईश्वरमूर्ति (सदाशिव)-का प्राकट्य, सदाशिवद्वारा स्वरूपभूत शक्ति (अम्बिका)-का प्रकटीकरण, उन दोनोंके द्वारा उत्तम क्षेत्र (काशी या आनन्दवन)-का प्रादुर्भाव, शिवके वामांगसे परम पुरुष (विष्णु)-का आविर्भाव तथा उनके सकाशसे प्राकृत तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्तिका वर्णन	२१९	१३. शिवपूजनकी सर्वोत्तम विधिका वर्णन	२६०	
७.	भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव, शिवेच्छासे ब्रह्माजीका उससे प्रकट होना, कमल-नालके उद्गमका पता लगानेमें असमर्थ ब्रह्माका तप करना, श्रीहरिका उन्हें दर्शन देना, विवादग्रस्त ब्रह्मा-विष्णुके बीचमें अग्निस्तम्भका प्रकट होना तथा उसके ओर-छोरका पता न पाकर उन दोनोंका उसे प्रणाम करना	२२४	१४. विभिन्न पृष्यों, अन्नों तथा जलादिकी धाराओंसे शिवजीकी पूजाका माहात्म्य	२६६	
	२-सतीखण्ड		१५. सृष्टिका वर्णन	२७४	
			१६. ब्रह्माजीकी सन्तानोंका वर्णन तथा सती और शिवकी महत्ताका प्रतिपादन	२८०	
			१७. यज्ञदत्तके पुत्र गुणनिधिका चरित्र	२८४	
			१८. शिवमन्दिरमें दीपदानके प्रभावसे पापमुक्त होकर गुणनिधिका दूसरे जन्ममें कलिंगदेशका राजा बनना और फिर शिवभक्तिके कारण कुबेर पदकी प्राप्ति	२८९	
			१९. कुबेरका काशीपुरीमें आकर तप करना, तपस्यासे प्रसन्न उमासहित भगवान् विश्वनाथका प्रकट हो उसे दर्शन देना और अनेक वर प्रदान करना, कुबेरद्वारा शिवमैत्री प्राप्त करना	२९६	
			२०. भगवान् शिवका कैलास पर्वतपर गमन तथा सृष्टिखण्डका उपसंहार	२९९	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
स्तुति करनेपर भगवान् शिवका प्राकट्य और ब्रह्मा तथा ऋषियोंको समझाना, ब्रह्मा तथा ऋषियोंसे अग्निष्वात्त आदि पितृगणोंकी उत्पत्ति, ब्रह्माद्वारा कामको शापकी प्राप्ति तथा निवारणका उपाय	३१३	एवं शिवका विवाहोत्सव, विवाहके अनन्तर शिव और सतीका वृषभारूढ़ हो कैलासके लिये प्रस्थान	३९५		
४. कामदेवके विवाहका वर्णन	३१९	२१. कैलास पर्वतपर भगवान् शिव एवं सतीकी मधुर लीलाएँ.....	४०१		
५. ब्रह्माकी मानसपुत्री कुमारी सन्ध्याका आख्यान	३२३	२२. सती और शिवका विहार-वर्णन	४०५		
६. सन्ध्याद्वारा तपस्या करना, प्रसन्न हो भगवान् शिवका उसे दर्शन देना, सन्ध्याद्वारा की गयी शिवस्तुति, सन्ध्याको अनेक वरोंकी प्राप्ति तथा महर्षि मेधातिथिके यज्ञमें जानेका आदेश प्राप्त होना	३२८	२३. सतीके पूछनेपर शिवद्वारा भक्तिकी महिमा तथा नवधा भक्तिका निरूपण	४११		
७. महर्षि मेधातिथिकी यज्ञाग्निमें सन्ध्याद्वारा शरीर-त्याग, पुनः अरुन्धतीके रूपमें यज्ञाग्निसे उत्पत्ति एवं वसिष्ठमुनिके साथ उसका विवाह	३३४	२४. दण्डकारण्यमें शिवको रामके प्रति मस्तक झुकाते देख सतीका मोह तथा शिवकी आज्ञासे उनके द्वारा रामकी परीक्षा	४१६		
८. कामदेवके सहचर वसन्तके आविर्भावका वर्णन	३३६	२५. श्रीशिवके द्वारा गोलोकधाममें श्रीविष्णुका गोपेशके पदपर अभिषेक, श्रीरामद्वारा सतीके मनका सन्देह दूर करना, शिवद्वारा सतीका मानसिक रूपसे परित्याग	४२१		
९. कामदेवद्वारा भगवान् शिवको विचलित न कर पाना, ब्रह्माजीद्वारा कामदेवके सहायक मारणोंकी उत्पत्ति; ब्रह्माजीका उन सबको शिवके पास भेजना, उनका वहाँ विफल होना, गणोंसहित कामदेवका वापस अपने आश्रमको लौटना.....	३४१	२६. सतीके उपाख्यानमें शिवके साथ दक्षका विरोध-वर्णन	४२७		
१०. ब्रह्मा और विष्णुके संवादमें शिवमाहात्म्यका वर्णन	३४६	२७. दक्षप्रजापतिद्वारा महान् यज्ञका प्रारम्भ, यज्ञमें दक्षद्वारा शिवके न बुलाये जानेपर दधीचिद्वारा दक्षकी भर्त्सना करना, दक्षके द्वारा शिव-निन्दा करनेपर दधीचिका वहाँसे प्रस्थान	४३२		
११. ब्रह्माद्वारा जगदम्बिका शिवाकी स्तुति तथा वरकी प्राप्ति	३५१	२८. दक्षयज्ञका समाचार पाकर एवं शिवकी आज्ञा प्राप्तकर देवी सतीका शिवगणोंके साथ पिताके यज्ञमण्डपके लिये प्रस्थान	४३६		
१२. दक्षप्रजापतिका तपस्याके प्रभावसे शक्तिका दर्शन और उनसे रुद्रमोहनकी प्रार्थना करना	३५६	२९. यज्ञशालामें शिवका भाग न देखकर तथा दक्षद्वारा शिवनिन्दा सुनकर कुद्ध हो सतीका दक्ष तथा देवताओंको फटकारना और प्राणत्यागका निश्चय	४४०		
१३. ब्रह्माकी आज्ञासे दक्षद्वारा मैथुनी सृष्टिका आरम्भ, अपने पुत्र हर्यश्वों तथा सबलाश्वोंको निवृत्तिमार्गमें भेजनेके कारण दक्षका नारदको शाप देना	३५९	३०. दक्षयज्ञमें सतीका योगाग्निसे अपने शरीरको भस्म कर देना, भृगुद्वारा यज्ञकुण्डसे ऋभुओंको प्रकट करना, ऋभुओं और शंकरके गणोंका युद्ध, भयभीत गणोंका पलायित होना	४४५		
१४. दक्षकी साठ कन्याओंका विवाह, दक्षके यहाँ देवी शिवा (सती)-का प्राकट्य, सतीकी बाललीलाका वर्णन	३६३	३१. यज्ञमण्डपमें आकाशवाणीद्वारा दक्षको फटकारना तथा देवताओंको सावधान करना	४४८		
१५. सतीद्वारा नन्दा-ब्रतका अनुष्ठान तथा देवताओंद्वारा शिवस्तुति	३६७	३२. सतीके दाध होनेका समाचार सुनकर कुपित हुए शिवका अपनी जटासे वीरभद्र और महाकालीको प्रकट करके उन्हें यज्ञ-विध्वंस करनेकी आज्ञा देना	४५१		
१६. ब्रह्मा और विष्णुद्वारा शिवसे विवाहके लिये प्रार्थना करना तथा उनकी इसके लिये स्वीकृति	३७४	३३. गणोंसहित वीरभद्र और महाकालीका दक्षयज्ञ-विध्वंसके लिये प्रस्थान	४५६		
१७. भगवान् शिवद्वारा सतीको वर-प्राप्ति और शिवका ब्रह्माजीको दक्ष प्रजापतिके पास भेजना	३७९	३४. दक्ष तथा देवताओंका अनेक अपशकुनों एवं उत्पातसूचक लक्षणोंको देखकर भयभीत होना	४५९		
१८. देवताओं और मुनियोंसहित भगवान् शिवका दक्षके घर जाना, दक्षद्वारा सबका सत्कार एवं सती तथा शिवका विवाह	३८५	३५. दक्षद्वारा यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना, भगवान्का शिवद्रोहजनित संकटको टालनेमें अपनी असमर्थता बताते हुए दक्षको समझाना			
१९. शिवका सतीके साथ विवाह, विवाहके समय शम्भुकी मायासे ब्रह्माका मोहित होना और विष्णुद्वारा शिवतत्त्वका निरूपण	३८९				
२०. ब्रह्माजीका 'रुद्रशिर' नाम पड़नेका कारण, सती					

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	
तथा सेनासहित वीरभद्रका आगमन	४६१		पुनः नवजात कन्याके रूपमें परिवर्तित होना. ५२३			
३६. युद्धमें शिवगणोंसे पराजित हो देवताओंका पलायन, इन्द्र आदिके पूछनेपर बृहस्पतिका रुद्रदेवकी अजेयता बताना, वीरभद्रका देवताओंको युद्धके लिये ललकारना, श्रीविष्णु और वीरभद्रकी बातचीत	४६५	७. पार्वतीका नामकरण तथा उनकी बाललीलाएँ एवं विद्याध्ययन	५२८			
३७. गणोंसहित वीरभद्रद्वारा दक्षयज्ञका विध्वंस, दक्षवध, वीरभद्रका वापस कैलास पर्वतपर जाना, प्रसन्न भगवान् शिवद्वारा उसे गणाध्यक्ष पद प्रदान करना ४७१			८. नारद मुनिका हिमालयके समीप गमन, वहाँ पार्वतीका हाथ देखकर भावी लक्षणोंको बताना, चिन्तित हिमवान्को शिवमहिमा बताना तथा शिवसे विवाह करनेका परामर्श देना	५३०		
३८. दधीचि मुनि और राजा क्षुवके विवादका इतिहास, शुक्राचार्यद्वारा दधीचिको महामृत्युंजय-मन्त्रका उपदेश, मृत्युंजयमन्त्रके अनुष्ठानसे दधीचिको अवध्यताकी प्राप्ति	४७७	९. पार्वतीके विवाहके सम्बन्धमें मेना और हिमालयद्वारा देखे गये अपने स्वप्नका वर्णन	५३५			
३९. श्रीविष्णु और देवताओंसे अपराजित दधीचिद्वारा देवताओंको शाप देना तथा राजा क्षुवपर अनुग्रह करना ४८३		१०. शिवजीके ललाटसे भौमोत्पत्ति	५३८			
४०. देवताओंसहित ब्रह्माका विष्णुलोकमें जाकर अपना दुःख निवेदन करना, उन सभीको लेकर विष्णुका कैलासगमन तथा भगवान् शिवसे मिलना	४८७	११. भगवान् शिवका तपस्याके लिये हिमालयपर आगमन, वहाँ पर्वतराज हिमालयसे वार्तालाप	५४०			
४१. देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति	४९१	१२. हिमवान्का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना, शिवद्वारा कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना	५४४			
४२. भगवान् शिवका देवता आदिपर अनुग्रह, दक्षयज्ञ-मण्डपमें पधारकर दक्षको जीवित करना तथा दक्ष और विष्णु आदिद्वारा शिवकी स्तुति		१३. पार्वती और परमेश्वरका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना, पार्वतीका महेश्वरकी सेवामें तत्पर रहना	५४७			
४३. भगवान् शिवका दक्षको अपनी भक्तवत्सलता, ज्ञानी भक्तकी श्रेष्ठता तथा तीनों देवोंकी एकता बताना, दक्षका अपने यज्ञको पूर्ण करना, देवताओंका अपने-अपने लोकोंको प्रस्थान तथा सतीखण्डका उपसंहार और माहात्म्य	५००	१४. तारकासुरकी उत्पत्तिके प्रसंगमें दितिपुत्र वज्रांगकी कथा, उसकी तपस्या तथा वरप्राप्तिका वर्णन	५५२			
	३-पार्वतीखण्ड		१५. वरांगीके पुत्र तारकासुरकी उत्पत्ति, तारकासुरकी तपस्या एवं ब्रह्माजीद्वारा उसे वरप्राप्ति, वरदानके प्रभावसे तीनों लोकोंपर उसका अत्याचार	५५६		
१. पितरोंकी कन्या मेनाके साथ हिमालयके विवाहका वर्णन	५०५	१६. तारकासुरसे उत्पीड़ित देवताओंको ब्रह्माजीद्वारा सान्त्वना प्रदान करना	५६०			
२. पितरोंकी तीन मानसी कन्याओं—मेना, धन्या और कलावतीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त तथा सनकादि-द्वारा प्राप्त शाप एवं वरदानका वर्णन	५०८	१७. इन्द्रके स्मरण करनेपर कामदेवका उपस्थित होना, शिवको तपसे विचलित करनेके लिये इन्द्रद्वारा कामदेवको भेजना	५६४			
३. विष्णु आदि देवताओंका हिमालयके पास जाना, उन्हें उमाराधनकी विधि बता स्वयं भी देवी जगदम्बाकी स्तुति करना	५११	१८. कामदेवद्वारा असमयमें वसन्त-ऋतुका प्रभाव प्रकट करना, कुछ क्षणके लिये शिवका मोहित होना, पुनः वैराग्य-भाव धारण करना	५६७			
४. उमादेवीका दिव्यरूपमें देवताओंको दर्शन देना और अवतार ग्रहण करनेका आश्वासन देना	५१५	१९. भगवान् शिवकी नेत्रज्वालासे कामदेवका भस्म होना और रतिका विलाप, देवताओंद्वारा रतिको सान्त्वना प्रदान करना और भगवान् शिवसे कामको जीवित करनेकी प्रार्थना करना	५७१			
५. मेनाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवीका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर वरदान देना, मेनासे मैनाकका जन्म.	५१९	२०. शिवकी क्रोधाग्निका वडवारूप-धारण और ब्रह्माद्वारा उसे समुद्रको समर्पित करना	५७५			
६. देवी उमाका हिमवान्के हृदय तथा मैनाके गर्भमें आना, गर्भस्था देवीका देवताओंद्वारा स्तवन, देवीका दिव्यरूपमें प्रादुर्भाव, माता मैनासे वार्तालाप तथा		२१. कामदेवके भस्म हो जानेपर पार्वतीका अपने घर आगमन, हिमवान् तथा मैनाद्वारा उन्हें धैर्य प्रदान करना, नारदद्वारा पार्वतीको पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश	५७७			
		२२. पार्वतीकी तपस्या एवं उसके प्रभावका वर्णन	५८१			
		२३. हिमालय आदिका तपस्यानिरत पार्वतीके पास				

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	जाना, पार्वतीका पिता हिमालय आदिको अपने तपके विषयमें दृढ़ निश्चयकी बात बताना, पार्वतीके तपके प्रभावसे त्रैलोक्यका संतप्त होना, सभी देवताओंका भगवान् शंकरके पास जाना ५८७			शिवको सौंपनेके लिये कहना ३६. सप्तर्षियोंके समझानेपर हिमवान्का शिवके साथ अपनी पुत्रीके विवाहका निश्चय करना, सप्तर्षियोंद्वारा शिवके पास जाकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बताकर अपने धामको जाना ३७. हिमालयद्वारा विवाहके लिये लग्नपत्रिकाप्रेषण, विवाहकी सामग्रियोंकी तैयारी तथा अनेक पर्वतों एवं नदियोंका दिव्य रूपमें सपरिवार हिमालयके घर आगमन ३८. हिमालयपुरीकी सजावट, विश्वकर्माद्वारा दिव्य-मण्डप एवं देवताओंके निवासके लिये दिव्य-लोकोंका निर्माण करना ३९. भगवान् शिवका नारदजीके द्वारा सब देवताओंको निमन्त्रण दिलाना, सबका आगमन तथा शिवका मंगलाचार एवं ग्रहपूजन आदि करके कैलाससे बाहर निकलना ४०. शिवबरातकी शोभा, भगवान् शिवका बरात लेकर हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान ४१. नारदद्वारा हिमालयगृहमें जाकर विश्वकर्माद्वारा बनाये गये विवाहमण्डपका दर्शनकर मोहित होना और वापस आकर उस विचित्र रचनाका वर्णन करना ४२. हिमालयद्वारा प्रेषित मूर्तिमान् पर्वतों और ब्राह्मणोंद्वारा बरातकी अगवानी, देवताओं और पर्वतोंके मिलापका वर्णन ४३. मेनाद्वारा शिवको देखनेके लिये महलकी छतपर जाना, नारदद्वारा सबका दर्शन कराना, शिवद्वारा अद्भुत लीलाका प्रदर्शन, शिवगणों तथा शिवके भयंकर वेषको देखकर मेनाका मूर्च्छित होना ४४. शिवजीके रूपको देखकर मेनाका विलाप, पार्वती तथा नारद आदि सभीको फटकारना, शिवके साथ कन्याका विवाह न करनेका हठ, विष्णुद्वारा मेनाको समझाना ४५. भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य रूपको प्रकट करना, मेनाकी प्रसन्नता और क्षमा-प्रार्थना तथा पुरवासिनी स्त्रियोंका शिवके रूपका दर्शन करके जन्म और जीवनको सफल मानना ४६. नगरमें बरातियोंका प्रवेश, द्वाराचार तथा पार्वतीद्वारा कुलदेवताका पूजन ४७. पाणिग्रहणके लिये हिमालयके घर शिवके गमनोत्सवका वर्णन ४८. शिव-पार्वतीके विवाहका प्रारम्भ, हिमालयद्वारा शिवके गोत्रके विषयमें प्रश्न होनेपर नारदजीके द्वारा उत्तरके रूपमें शिवमाहात्म्य प्रतिपादित करना, हर्षयुक्त हिमालयद्वारा कन्यादानकर विविध	६४१ ६४६ ६४९ ६५३ ६५७ ६६२ ६६६ ६७१ ६७३ ६७८ ६८७ ६९१ ६९४
२४.	देवताओंका भगवान् शिवसे पार्वतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, भगवान्का विवाहके दोष बताकर अस्वीकार करना तथा उनके पुनः प्रार्थना करनेपर स्वीकार कर लेना ५९१				
२५.	भगवान् शंकरकी आज्ञासे सप्तर्षियोंद्वारा पार्वतीके शिवविषयक अनुरागकी परीक्षा करना और वह वृत्तान्त भगवान् शिवको बताकर स्वर्गलोक जाना ५९८				
२६.	पार्वतीकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शिवका जटाधारी ब्राह्मणका वेष धारणकर पार्वतीके समीप जाना, शिव-पार्वती-संवाद ६०४				
२७.	जटाधारी ब्राह्मणद्वारा पार्वतीके समक्ष शिवजीके स्वरूपकी निन्दा करना ६०८				
२८.	पार्वतीद्वारा परमेश्वर शिवकी महत्ता प्रतिपादित करना और रोषपूर्वक जटाधारी ब्राह्मणको फटकारना, शिवका पार्वतीके समक्ष प्रकट होना ६११				
२९.	शिव और पार्वतीका संवाद, विवाहविषयक पार्वतीके अनुरोधको शिवद्वारा स्वीकार करना ६१५				
३०.	पार्वतीके पिताके घरमें आनेपर महामहोत्सवका होना, महादेवजीका नटरूप धारणकर वहाँ उपस्थित होना तथा अनेक लीलाएँ दिखाना, शिवद्वारा पार्वतीकी याचना, किंतु माता-पिताके द्वारा मना करनेपर अन्तर्धान हो जाना ६१९				
३१.	देवताओंके कहनेपर शिवका ब्राह्मण-वेषमें हिमालयके यहाँ जाना और शिवकी निन्दा करना ६२३				
३२.	ब्राह्मण-वेषधारी शिवद्वारा शिवस्वरूपकी निन्दा सुनकर मेनाका कोपभवनमें गमन, शिवद्वारा सप्तर्षियोंका स्मरण और उन्हें हिमालयके घर भेजना, हिमालयकी शोभाका वर्णन तथा हिमालयद्वारा सप्तर्षियोंका स्वागत ६२७				
३३.	वसिष्ठपत्नी अरुन्धतीद्वारा मेनाको समझाना तथा सप्तर्षियोंद्वारा हिमालयको शिवमाहात्म्य बताना ६३२				
३४.	सप्तर्षियोंद्वारा हिमालयको राजा अनरण्यका आख्यान सुनाकर पार्वतीका विवाह शिवसे करनेकी प्रेरणा देना ६३८				
३५.	धर्मराजद्वारा मुनि पिप्पलादकी भार्या सती पद्माके पतित्रत्यकी परीक्षा, पद्माद्वारा धर्मराजको शाप प्रदान करना तथा पुनः चारों युगोंमें शापकी व्यवस्था करना, पतित्रत्यसे प्रसन्न हो धर्मराजद्वारा पद्माको अनेक वर प्रदान करना, महर्षि वसिष्ठद्वारा हिमवान्से पद्माके दृष्ट्यान्तद्वारा अपनी पुत्री				

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	उपहार प्रदान करना	६९८	८.	देवराज इन्द्र, विष्णु तथा वीरक आदिके साथ तारकासुरका युद्ध	७६७
४९.	अग्निपरिक्रमा करते समय पार्वतीके पदनखको देखकर ब्रह्माका मोहग्रस्त होना, बालखिल्योंकी उत्पत्ति, शिवका कुपित होना, देवताओंद्वारा शिवस्तुति	७०३	९.	ब्रह्माजीका कार्तिकेयको तारकके वधके लिये प्रेरित करना, तारकासुरद्वारा विष्णु तथा इन्द्रकी भर्त्सना, पुनः इन्द्रादिके साथ तारकासुरका युद्ध	७७१
५०.	शिवा-शिवके विवाहकृत्यसम्पादनके अनन्तर देवियोंका शिवसे मधुर वार्तालाप	७०६	१०.	कुमार कार्तिकेय और तारकासुरका भीषण संग्राम, कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध, देवताओंद्वारा दैत्य-सेनापर विजय प्राप्त करना, सर्वत्र विजयोल्लास, देवताओंद्वारा शिवा-शिव तथा कुमारकी स्तुति	७७६
५१.	रतिके अनुरोधपर श्रीशंकरका कामदेवको जीवित करना, देवताओंद्वारा शिवस्तुति	७१०	११.	कार्तिकेयद्वारा बाण तथा प्रलम्ब आदि असुरोंका वध, कार्तिकेयचरितके श्रवणका माहात्म्य	७८०
५२.	हिमालयद्वारा सभी बरातियोंको भोजन करना, शिवका विश्वकर्माद्वारा निर्मित वासगृहमें शयन करके प्रातःकाल जनवासेमें आगमन	७१४	१२.	विष्णु आदि देवताओं तथा पर्वतोंद्वारा कार्तिकेयकी स्तुति और वरप्राप्ति, देवताओंके साथ कुमारका कैलासगमन, कुमारको देखकर शिव-पार्वतीका आनन्दित होना, देवोंद्वारा शिवस्तुति	७८३
५३.	चतुर्थीकर्म, बरातका कई दिनोंतक ठहरना, सत्तर्षियोंके समझानेसे हिमालयका बरातको विदा करनेके लिये राजी होना, मेनाका शिवको अपनी कन्या सौंपना तथा बरातका पुरीके बाहर जाकर ठहरना	७१८	१३.	गणेशोत्पत्तिका आख्यान, पार्वतीका अपने पुत्र गणेशको अपने द्वारपर नियुक्त करना, शिव और गणेशका वार्तालाप	७८७
५४.	मेनाकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मणपत्नीका पार्वतीको पातिव्रतधर्मका उपदेश देना	७२१	१४.	द्वाररक्षक गणेश तथा शिवगणोंका परस्पर विवाद	७९०
५५.	शिव-पार्वती तथा बरातकी विदाई, भगवान् शिवका समस्त देवताओंको विदा करके कैलासपर रहना और शिव-विवाहोपाख्यानके श्रवणकी महिमा	७२८	१५.	गणेश तथा शिवगणोंका भयंकर युद्ध, पार्वतीद्वारा दो शक्तियोंका प्राकट्य, शक्तियोंका अद्भुत पराक्रम और शिवका कुपित होना	७९६
४-कुमारखण्ड					
१.	कैलासपर भगवान् शिव एवं पार्वतीका विहार	७३३	१६.	विष्णु तथा गणेशका युद्ध, शिवद्वारा त्रिशूलसे गणेशका सिर काटा जाना	८०१
२.	भगवान् शिवके तेजसे स्कन्दका प्रादुर्भाव और सर्वत्र महान् आनन्दोत्सवका होना	७३८	१७.	पुत्रके वधसे कुपित जगदम्बाका अनेक शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मचाया जाना, देवताओं और ऋषियोंका स्तवनद्वारा पार्वतीको प्रसन्न करना, शिवजीके आज्ञानुसार हाथीका सिर लाया जाना और उसे गणेशके धड़से जोड़कर उन्हें जीवित करना	८०४
३.	महर्षि विश्वमित्रद्वारा बालक स्कन्दका संस्कार सम्पन्न करना, बालक स्कन्दद्वारा क्रौंचपर्वतका भेदन, इन्द्रद्वारा बालकपर वज्रप्रहार, शाख-विशाख आदिका उत्पन्न होना, कार्तिकेयका षण्मुख होकर छः कृत्तिकाओंका दुर्घटपान करना....	७४५	१८.	पार्वतीद्वारा गणेशको वरदान, देवोंद्वारा उन्हें अग्रपूज्य माना जाना, शिवजीद्वारा गणेशको सर्वाध्यक्षपद प्रदान करना, गणेशचतुर्थीव्रतविधान तथा उसका माहात्म्य, देवताओंका स्वलोक-गमन	८०९
४.	पार्वतीके कहनेपर शिवद्वारा देवताओं तथा कर्मसाक्षी धर्मादिकोंसे कार्तिकेयके विषयमें जिज्ञासा करना और अपने गणोंको कृत्तिकाओंके पास भेजना, नन्दिकेश्वर तथा कार्तिकेयका वार्तालाप, कार्तिकेयका कैलासके लिये प्रस्थान	७४८	१९.	स्वामिकार्तिकेय और गणेशकी बाल-लीला, विवाहके विषयमें दोनोंका परस्पर विवाद, शिवजीद्वारा पृथ्वी-परिक्रमाका आदेश, कार्तिकेयका प्रस्थान, बुद्धिमान् गणेशजीका पृथ्वीरूप माता-पिताकी परिक्रमा और प्रसन्न शिवा-शिवद्वारा गणेशके प्रथम विवाहकी स्वीकृति	८१५
५.	पार्वतीके द्वारा प्रेषित रथपर आस्तृ हो कार्तिकेयका कैलासगमन, कैलासपर महान् उत्सव होना, कार्तिकेयका महाभिषेक तथा देवताओंद्वारा विविध अस्त्र-शस्त्र तथा रत्नभूषण प्रदान करना, कार्तिकेयका ब्रह्माण्डका अधिपतित्व प्राप्त करना	७५४	२०.	प्रजापति विश्वरूपकी सिद्धि तथा बुद्धि नामक दो कन्याओंके साथ गणेशजीका विवाह तथा	
६.	कुमार कार्तिकेयकी ऐश्वर्यमयी बाललीला	७६०			
७.	तारकासुरसे सम्बद्ध देवासुर-संग्राम	७६३			

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	उनसे 'क्षेम' तथा 'लाभ' नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति, कुमार कार्तिकेयका पृथ्वीकी परिक्रमाकर लौटना और क्षुब्ध होकर क्रौंचपर्वतपर चले जाना, कुमारखण्डके श्रवणकी महिमा	८१९		भक्तिका वरदान प्राप्त करना	८६६
	५-युद्धखण्ड		१२.	त्रिपुरदाहके अनन्तर शिवभक्त मयदानवका भगवान् शिवकी शरणमें आना, शिवद्वारा उसे अपनी भक्ति प्रदानकर वितललोकमें निवास करनेकी आज्ञा देना, देवकार्य सम्पन्नकर शिवजीका अपने लोकमें जाना	८६९
१.	तारकासुरके पुत्र तारकाक्ष, विद्युम्माली एवं कमलाक्षकी तपस्यासे प्रसन्न ब्रह्मद्वारा उन्हें वरकी प्राप्ति, तीनों पुरोंकी शोभाका वर्णन ..	८२३	१३.	बृहस्पति तथा इन्द्रका शिवदर्शनके लिये कैलासकी ओर प्रस्थान, सर्वज्ञ शिवका उनकी परीक्षा लेनेके लिये दिगम्बर जटाधारी रूप धारणकर मार्ग रोकना, क्रुद्ध इन्द्रद्वारा उनपर वज्रप्रहारकी चेष्टा, शंकरद्वारा उनकी भुजाको स्तम्भित कर देना, बृहस्पतिद्वारा उनकी स्तुति, शिवका प्रसन्न होना और अपनी नेत्राग्निको क्षार-समुद्रमें फेंकना	८७१
२.	तारकपुत्रोंसे पीड़ित देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाना और उनके परामर्शके अनुसार असुर-वधके लिये भगवान् शंकरकी स्तुति करना	८२९	१४.	क्षारसमुद्रमें प्रक्षिप्त भगवान् शंकरकी नेत्राग्निसे समुद्रके पुत्रके रूपमें जलन्धरका प्राकट्य, कालनेमिकी पुत्री वृन्दाके साथ उसका विवाह	८७७
३.	त्रिपुरके विनाशके लिये देवताओंका विष्णुसे निवेदन करना, विष्णुद्वारा त्रिपुरविनाशके लिये यज्ञकुण्डसे भूतसमुदायको प्रकट करना, त्रिपुरके भयसे भूतोंका पलायित होना, पुनः विष्णुद्वारा देवकार्यकी सिद्धिके लिये उपाय सोचना	८३४	१५.	राहुके शिरश्छेद तथा समुद्रमन्थनके समयके देवताओंके छलको जानकर जलन्धरद्वारा क्रुद्ध होकर स्वर्गपर आक्रमण, इन्द्रादि देवोंकी पराजय, अमरावतीपर जलन्धरका आधिपत्य, भयभीत देवताओंका सुमेरुकी गुफामें छिपना	८८०
४.	त्रिपुरवासी दैत्योंको मोहित करनेके लिये भगवान् विष्णुद्वारा एक मुनिरूप पुरुषकी उत्पत्ति, उसकी सहायताके लिये नारदजीका त्रिपुरमें गमन, त्रिपुराधिपका दीक्षा ग्रहण करना	८३८	१६.	जलन्धरसे भयभीत देवताओंका विष्णुके समीप जाकर स्तुति करना, विष्णुसहित देवताओंका जलन्धरकी सेनाके साथ भयंकर युद्ध	८८६
५.	मायावी यतिद्वारा अपने धर्मका उपदेश, त्रिपुरवासियोंका उसे स्वीकार करना, वेदधर्मके नष्ट हो जानेसे त्रिपुरमें अधर्माचरणकी प्रवृत्ति	८४३	१७.	विष्णु और जलन्धरके युद्धमें जलन्धरके पराक्रमसे सन्तुष्ट विष्णुका देवों एवं लक्ष्मीसहित उसके नगरमें निवास करना	८८९
६.	त्रिपुरध्वंसके लिये देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति	८४८	१८.	जलन्धरके आधिपत्यमें रहनेवाले दुखी देवताओंद्वारा शंकरकी स्तुति, शंकरजीका देवर्षि नारदको जलन्धरके पास भेजना, वहाँ देवोंको आश्वस्त करके नारदजीका जलन्धरकी सभामें जाना, उसके ऐश्वर्यको देखना तथा पार्वतीके सौन्दर्यका वर्णनकर उसे प्राप्त करनेके लिये जलन्धरको परामर्श देना	८९३
७.	भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये देवताओंद्वारा मन्त्र-जप, शिवका प्राकट्य तथा त्रिपुरविनाशके लिये दिव्य रथ आदिके निर्माणके लिये विष्णुजीसे कहना	८५२	१९.	पार्वतीको प्राप्त करनेके लिये जलन्धरका शंकरके पास दूतप्रेषण, उसके वचनसे उत्पन्न क्रोधसे शम्भुके भ्रूमध्यसे एक भयंकर पुरुषकी उत्पत्ति, उससे भयभीत जलन्धरके दूतका पलायन, उस पुरुषका कीर्तिमुख नामसे शिवगणोंमें प्रतिष्ठित होना तथा शिवद्वारपर स्थित रहना	८९७
८.	विश्वकर्माद्वारा निर्मित सर्वदेवमय दिव्य रथका वर्णन	८५६	२०.	दूतके द्वारा कैलासका वृत्तान्त जानकर जलन्धरका अपनी सेनाको युद्धका आदेश देना, भयभीत देवोंका शिवकी शरणमें जाना, शिवगणों तथा जलन्धरकी सेनाका युद्ध, शिवद्वारा कृत्याको उत्पन्न	
९.	ब्रह्माजीको सारथी बनाकर भगवान् शंकरका दिव्य रथमें आरूढ़ होकर अपने गणों तथा देवसेनाके साथ त्रिपुर-वधके लिये प्रस्थान, शिवका पशुपति नाम पड़नेका कारण	८५९			
१०.	भगवान् शिवका त्रिपुरपर सन्धान करना, गणेशजीका विष्णु उपस्थित करना, आकाशवाणीद्वारा बोधित होनेपर शिवद्वारा विष्णुनाशक गणेशका पूजन, अभिजित् मुहूर्तमें तीनों पुरोंका एकत्र होना और शिवद्वारा बाणाग्निसे सम्पूर्ण त्रिपुरको भस्म करना, मयदानवका बचा रहना	८६२			
११.	त्रिपुरदाहके अनन्तर भगवान् शिवके रौद्ररूपसे भयभीत देवताओंद्वारा उनकी स्तुति और उनसे				

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	करना, कृत्याद्वारा शुक्राचार्यको छिपा लेना	१०२		युद्ध करनेका अपना निश्चय बताना, पुष्पदन्तका वापस आकर सारा वृत्तान्त शिवसे निवेदित करना	१५२
२१.	नन्दी, गणेश, कर्तिकेय आदि शिवगणोंका कालनेमि, शुभ्म तथा निशुभ्मके साथ घोर संग्राम, वीरभद्र तथा जलन्धरका युद्ध, भयाकुल शिवगणोंका शिवजीको सारा वृत्तान्त बताना ..	१०७	३३.	शंखचूडसे युद्धके लिये अपने गणोंके साथ भगवान् शिवका प्रस्थान	१५५
२२.	श्रीशिव और जलन्धरका युद्ध, जलन्धरद्वारा गान्धर्वी मायासे शिवको मोहितकर शीघ्र ही पार्वतीके पास पहुँचना, उसकी मायाको जानकर पार्वतीका अदृश्य हो जाना और भगवान् विष्णुको जलन्धरपत्नी वृन्दाके पास जानेके लिये कहना ..	१११	३४.	तुलसीसे विदा लेकर शंखचूडका युद्धके लिये ससैन्य पुष्पभद्रा नदीके टटपर पहुँचना ..	१५८
२३.	विष्णुद्वारा माया उत्पन्नकर वृन्दाको स्वजनके माध्यमसे मोहित करना और स्वयं जलन्धरका रूप धारणकर वृन्दाके पातिव्रतका हरण करना, वृन्दाद्वारा विष्णुको शाप देना तथा वृन्दाके तेजका पार्वतीमें विलीन होना	११५	३५.	शंखचूडका अपने एक बुद्धिमान् दूतको शंकरके पास भेजना, दूत तथा शिवकी वार्ता, शंकरका सन्देश लेकर दूतका वापस शंखचूडके पास आना ..	१६०
२४.	दैत्यराज जलन्धर तथा भगवान् शिवका घोर संग्राम, भगवान् शिवद्वारा चक्रसे जलन्धरका शिरश्छेदन, जलन्धरका तेज शिवमें प्रविष्ट होना, जलन्धरवधसे जगत्में सर्वत्र शान्तिका विस्तार	१२०	३६.	शंखचूडको उद्देश्यकर देवताओंका दानवोंके साथ महासंग्राम	१६४
२५.	जलन्धरवधसे प्रसन्न देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति	१२५	३७.	शंखचूडके साथ कर्तिकेय आदि महावीरोंका युद्ध	१६७
२६.	विष्णुजीके मोहभंगके लिये शंकरजीकी प्रेरणासे देवोंद्वारा मूलप्रकृतिकी स्तुति, मूलप्रकृतिद्वारा आकाशवाणीके रूपमें देवोंको आश्वासन, देवताओंद्वारा त्रिगुणात्मिका देवियोंका स्तवन, विष्णुका मोहनाश, धात्री (आँवला), मालती तथा तुलसीकी उत्पत्तिका आख्यान	१२८	३८.	श्रीकालीका शंखचूडके साथ महान् युद्ध, आकाशवाणीद्वारा आकर युद्धका वृत्तान्त बताना	१७०
२७.	शंखचूडकी उत्पत्तिकी कथा	१३३	३९.	शिव और शंखचूडके महाभयंकर युद्धमें शंखचूडके सैनिकोंके संहारका वर्णन	१७३
२८.	शंखचूडकी पुष्कर-क्षेत्रमें तपस्या, ब्रह्माद्वारा उसे वरकी प्राप्ति, ब्रह्माकी प्रेरणासे शंखचूडका तुलसीसे विवाह	१३६	४०.	शिव और शंखचूडका युद्ध, आकाशवाणीद्वारा शंकरको युद्धसे विरत करना, विष्णुका ब्राह्मणरूप धारणकर शंखचूडका कवच माँगना, कवचहीन शंखचूडका भगवान् शिवद्वारा वध, सर्वत्र हर्षोल्लास १७७	
२९.	शंखचूडका राज्यपदपर अभिषेक, उसके द्वारा देवोंपर विजय, दुखी देवोंका ब्रह्माजीके साथ वैकुण्ठगमन, विष्णुद्वारा शंखचूडके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना और विष्णु तथा ब्रह्माका शिवलोक-गमन	१४०	४१.	शंखचूडका रूप धारणकर भगवान् विष्णुद्वारा तुलसीके शीलका हरण, तुलसीद्वारा विष्णुको पाषाण होनेका शाप देना, शंकरजीद्वारा तुलसीको सान्त्वना, शंख, तुलसी, गण्डकी एवं शालग्रामकी उत्पत्ति तथा माहात्म्यकी कथा	१८०
३०.	ब्रह्मा तथा विष्णुका शिवलोक पहुँचना, शिवलोककी तथा शिवसभाकी शोभाका वर्णन, शिवसभाके मध्य उन्हें अम्बासहित भगवान् शिवके दिव्य-स्वरूपका दर्शन और शंखचूडसे प्राप्त कष्टोंसे मुक्तिके लिये प्रार्थना	१४५	४२.	अन्धकासुरकी उत्पत्तिकी कथा, शिवके वरदानसे हिरण्याक्षद्वारा अन्धकको पुत्ररूपमें प्राप्त करना, हिरण्याक्षद्वारा पृथ्वीको पाताललोकमें ले जाना, भगवान् विष्णुद्वारा वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वधकर पृथ्वीको यथास्थान स्थापित करना....	१८६
३१.	शिवद्वारा ब्रह्मा-विष्णुको शंखचूडका पूर्ववृत्तान्त बताना और देवोंको शंखचूडवधका आश्वासन देना .	१४८	४३.	हिरण्यकशिपुकी तपस्या, ब्रह्मासे वरदान पाकर उसका अत्याचार, भगवान् नृसिंहद्वारा उसका वध और प्रह्लादको राज्यप्राप्ति	१९१
३२.	भगवान् शिवके द्वारा शंखचूडको समझानेके लिये भेजना, शंखचूडद्वारा सन्देशकी अवहेलना और		४४.	अन्धकासुरकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा उसे अनेक वरोंकी प्राप्ति, त्रिलोकीको जीतकर उसका स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त होना, मन्त्रियोंद्वारा पार्वतीके सौन्दर्यको सुनकर मुग्ध हो शिवके पास सन्देश भेजना और शिवका उत्तर सुनकर क्रुद्ध हो युद्धके लिये उद्योग करना	१९६
			४५.	अन्धकासुरका शिवकी सेनाके साथ युद्ध.....	१००४
			४६.	भगवान् शिव और अन्धकासुरका युद्ध, अन्धककी मायासे उसके रक्तसे अनेक अन्धकगणोंकी उत्पत्ति, शिवकी प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धारणकर दानवोंके रक्तका पान करना, शिवद्वारा अन्धकको	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
	अपने त्रिशूलमें लटका लेना, अन्धककी स्तुतिसे प्रसन्न हो शिवद्वारा उसे गणपत्य पद प्रदान करना १०१०			समाचार बाणासुरको बताना.....	१०३९
४७.	शुक्राचार्यद्वारा युद्धमें मरे हुए दैत्योंको संजीवनी-विद्यासे जीवित करना, दैत्योंका युद्धके लिये पुनः उद्योग, नन्दीश्वरद्वारा शिवको यह वृत्तान्त बतलाना, शिवकी आज्ञासे नन्दीद्वारा युद्धस्थलसे शुक्राचार्यको शिवके पास लाना, शिवद्वारा शुक्राचार्यको निगलना १०१६		५३.	क्रुद्ध बाणासुरका अपनी सेनाके साथ अनिरुद्धपर आक्रमण और उसे नागपाशमें बाँधना, दुर्गके स्तवनद्वारा अनिरुद्धका बन्धनमुक्त होना	१०४४
४८.	शुक्राचार्यकी अनुपस्थितिसे अन्धकादि दैत्योंका दुखी होना, शिवके उदरमें शुक्राचार्यद्वारा सभी लोकों तथा अन्धकासुरके युद्धको देखना और फिर शिवके शुक्ररूपमें बाहर निकलना, शिव-पार्वतीका उन्हें पुत्ररूपमें स्वीकारकर विदा करना	१०२१	५४.	नारदजीद्वारा अनिरुद्धके बन्धनका समाचार पाकर श्रीकृष्णकी शोणितपुरपर चढ़ाई, शिवके साथ उनका घोर युद्ध, शिवकी आज्ञासे श्रीकृष्णका उन्हें जृम्भणास्त्रसे मोहित करके बाणासुरकी सेनाका संहार करना.....	१०४८
४९.	शुक्राचार्यद्वारा शिवके उदरमें जपे गये मन्त्रका वर्णन, अन्धकद्वारा भगवान् शिवकी नामरूपी स्तुति-प्रार्थना, भगवान् शिवद्वारा अन्धकासुरको जीवनदानपूर्वक गाणपत्य पद प्रदान करना.... १०२५		५५.	भगवान् कृष्ण तथा बाणासुरका संग्राम, श्रीकृष्णद्वारा बाणकी भुजाओंका काटा जाना, सिर काटनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको शिवका रोकना और उन्हें समझाना, बाणका गर्वापहरण, श्रीकृष्ण और बाणासुरकी मित्रता, ऊषा-अनिरुद्धको लेकर श्रीकृष्णका द्वारका आना	१०५३
५०.	शुक्राचार्यद्वारा काशीमें शुक्रेश्वर लिंगकी स्थापनाकर उनकी आराधना करना, मूर्त्यष्टक स्तोत्रसे उनका स्तवन, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसंजीवनी-विद्या प्रदान करना और ग्रहोंके मध्य प्रतिष्ठित करना १०२९		५६.	बाणासुरका ताण्डवनृत्यद्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न करना, शिवद्वारा उसे अनेक मनोऽभिलिष्ट वरदानोंकी प्राप्ति, बाणासुरकृत शिवस्तुति	१०५८
५१.	प्रह्लदकी वंशपरम्परामें बलिपुत्र बाणासुरकी उत्पत्तिकी कथा, शिवभक्त बाणासुरद्वारा ताण्डव नृत्यके प्रदर्शनसे शंकरको प्रसन्न करना, वरदानके रूपमें शंकरका बाणासुरकी नगरीमें निवास करना, शिव-पार्वतीका विहार, पार्वतीद्वारा बाणपुत्री ऊषाको वरदान.. १०३४		५७.	महिषासुरके पुत्र गजासुरकी तपस्या तथा ब्रह्माद्वारा वरप्राप्ति, उन्मत्त गजासुरद्वारा अत्याचार, उसका काशीमें आना, देवताओंद्वारा भगवान् शिवसे उसके वधकी प्रार्थना, शिवद्वारा उसका वध और उसकी प्रार्थनासे उसका चर्म धारणकर 'कृत्तिवासा' नामसे विख्यात होना एवं कृत्तिवासेश्वर लिंगकी स्थापना करना	१०६०
५२.	अभिमानी बाणासुरद्वारा भगवान् शिवसे युद्धकी याचना, बाणपुत्री ऊषाका रात्रिके समय स्वप्नमें अनिरुद्धके साथ मिलन, चित्रलेखाद्वारा योगबलसे अनिरुद्धका द्वारकासे अपहरण, अन्तःपुरमें अनिरुद्ध और ऊषाका मिलन तथा द्वारपालोंद्वारा यह		५८.	काशीके व्याघ्रेश्वर लिंग-माहात्म्यके सन्दर्भमें दैत्य दुन्दुभिनिहार्दिके वधकी कथा	१०६५
			५९.	काशीके कन्दुकेश्वर शिवलिंगके प्रादुर्भावमें पार्वतीद्वारा विदल एवं उत्पल दैत्योंके वधकी कथा, रुद्रसंहिताका उपसंहार तथा इसका माहात्म्य . १०६९	

श्रीशिवमहापुराणनवाहपारायणक्रमः

दिवसः	विश्रामस्थलानि	अध्याययोगसंख्या
प्रथमेऽहनि	रुद्रसंहितायाः सतीखण्डस्य सप्तमाध्यायपर्यन्तम्	५१
द्वितीयेऽहनि	रुद्रसंहितायाः पार्वतीखण्डस्य पञ्चदशाध्यायपर्यन्तम्	५१
तृतीयेऽहनि	रुद्रसंहितायाः कुमारखण्डस्य दशमाध्यायपर्यन्तम्	५०
चतुर्थेऽहनि	रुद्रसंहितायाः युद्धखण्डस्य एकचत्वारिंशदध्यायपर्यन्तम्	५१
पञ्चमेऽहनि	शतरुद्रसंहितायाः त्रयस्त्रिंशदध्यायपर्यन्तम्	५१
षष्ठेऽहनि	कोटिरुद्रसंहितायाः त्रिचत्वारिंशदध्यायपर्यन्तम्	५२
सप्तमेऽहनि	सम्पूर्णा उमासंहिता	५१
अष्टमेऽहनि	वायवीयसंहितायाः पूर्वखण्डस्य अष्टाविंशदध्यायपर्यन्तम्	५१
नवमेऽहनि	अवशिष्टा वायवीयसंहिता	४८
		४६४

३० नमः शिवाय

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

माहात्म्य

अथ प्रथमोऽध्यायः

शौनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सूतजीका उन्हें शिवमहापुराणकी महिमा सुनाना

शौनक उवाच

हे हे सूत महाप्राज्ञ सर्वसिद्धान्तवित् प्रभो ।
आख्याहि मे कथासारं पुराणानां विशेषतः ॥ १ ॥

सदाचारश्च सद्भक्तिर्विवेको वर्धते कथम् ।
स्वविकारनिरासश्च सज्जनैः क्रियते कथम् ॥ २ ॥

जीवाश्चासुरतां प्राप्ताः प्रायो धोरे कलाविह ।
तस्य संशोधने किं हि विद्यते परमायनम् ॥ ३ ॥

यदस्ति वस्तु परमं श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ।
पावनं पावनानां च साधनं तद्वदाधुना ॥ ४ ॥

येन तत्साधनेनाशु शुद्ध्यत्यात्मा विशेषतः ।
शिवप्राप्तिर्भवेत्तात् सदा निर्मलचेतसः ॥ ५ ॥

सूत उवाच

धन्यस्त्वं मुनिशार्दूलं श्रवणप्रीतिलालसः ।
अतो विचार्य सुधिया वच्चि शास्त्रं महोत्तमम् ॥ ६ ॥

सर्वसिद्धान्तनिष्ठनं भक्त्यादिकविवर्धनम् ।
शिवतोषकरं दिव्यं शृणु वत्स रसायनम् ॥ ७ ॥

कालव्यालमहात्रासविध्वंसकरमुत्तमम् ।
शैवं पुराणं परमं शिवेनोक्तं पुरा मुने ॥ ८ ॥

श्रीशौनकजी बोले—हे महाज्ञानी सूतजी ! सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके ज्ञाता हे प्रभो ! मुझसे पुराणोंकी कथाओंके सारतत्त्वका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सदाचार, भगवद्भक्ति और विवेककी वृद्धि कैसे होती है तथा साधुपुरुष किस प्रकार अपने काम-क्रोध आदि मानसिक विकारोंका निवारण करते हैं ? ॥ २ ॥

इस घोर कलियुगमें जीव प्रायः आसुर स्वभावके हो गये हैं, उस जीवसमुदायको शुद्ध (दैवी सम्पत्तिसे युक्त) बनानेके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है ? ॥ ३ ॥

आप इस समय मुझे ऐसा कोई शाश्वत साधन बताइये, जो कल्याणकारी वस्तुओंमें भी सबसे उत्कृष्ट एवं परम मंगलकारी हो तथा पवित्र करनेवाले उपायोंमें भी सर्वोत्तम पवित्रकारक उपाय हो ॥ ४ ॥

तात ! वह साधन ऐसा हो, जिसके अनुष्ठानसे शीघ्र ही अन्तःकरणकी विशेष शुद्धि हो जाय तथा उससे निर्मल चित्तवाले पुरुषको सदाके लिये शिवकी प्राप्ति हो जाय ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—मुनिश्रेष्ठ शौनक ! आप धन्य हैं; आपके हृदयमें पुराण-कथा सुननेके प्रति विशेष प्रेम एवं लालसा है, इसलिये मैं शुद्ध बुद्धिसे विचारकर परम उत्तम शास्त्रका वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥

वत्स ! सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तसे सम्पन्न, भक्ति आदिको बढ़ानेवाले, भगवान् शिवको सन्तुष्ट करनेवाले तथा कानोंके लिये रसायनस्वरूप दिव्य पुराणका श्रवण कीजिये ॥ ७ ॥

यह उत्तम शिवपुराण कालरूपी सर्पसे प्राप्त होनेवाले महान् त्रास का विनाश करनेवाला है। हे मुने ! पूर्वकालमें शिवजीने इसे कहा था। गुरुदेव

सनत्कुमारस्य मुनेरुपदेशात् परादरात् ।
व्यासेनोक्तं तु संक्षेपात् कलिजानां हिताय च ॥ ९

एतस्मादपरं किञ्चित्पुराणाच्छैवतो मुने ।
न विद्यते मनःशुद्ध्यै कलिजानां विशेषतः ॥ १०

जन्मान्तरे भवेत् पुण्यं महद्यस्य सुधीमतः ।
तस्य प्रीतिर्भवेत्तत्र महाभाग्यवतो मुने ॥ ११

एतच्छैवपुराणं हि परमं शास्त्रमुत्तमम् ।
शिवरूपं क्षितौ ज्ञेयं सेवनीयं च सर्वथा ॥ १२

पठनाच्छैवणादस्य भक्तिमान्नरसत्तमः ।
सद्यः शिवपदप्राप्तिं लभते सर्वसाधनात् ॥ १३

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन काङ्क्षितं पठनं नृभिः ।
तथास्य श्रवणं प्रेम्णा सर्वकामफलप्रदम् ॥ १४

पुराणश्रवणाच्छम्भोर्निष्पापो जायते नरः ।
भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् शिवलोकमवाज्यात् ॥ १५

राजसूयेन यत्पुण्यमग्निष्टोमशतेन च ।
तत् पुण्यं लभते शाम्भोः कथाश्रवणमात्रतः ॥ १६

ये शृण्वन्ति मुने शैवं पुराणं शास्त्रमुत्तमम् ।
ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः ॥ १७

शृण्वतां तत् पुराणं हि तथा कीर्तयतां च तत् ।
पादाम्बुजरजांस्येव तीर्थानि मुनयो विदुः ॥ १८

गन्तुं निःश्रेयसं स्थानं येऽभिवाञ्छन्ति देहिनः ।
शैवं पुराणममलं भक्त्या शृण्वन्तु ते सदा ॥ १९

सदा श्रोतुं यद्यशक्तो भवेत् स मुनिसत्तम ।
नियतात्मा प्रतिदिनं शृणुयाद्वा मुहूर्तकम् ॥ २०

यदि प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो मानवो भवेत् ।
पुण्यमासादिषु मुने शृणुयाच्छैवपुराणकम् ॥ २१

व्यासजीने सनत्कुमार मुनिका उपदेश पाकर कलियुगके प्राणियोंके कल्याणके लिये बड़े आदरसे संक्षेपमें इस पुराणका प्रतिपादन किया है ॥ ८-९ ॥

हे मुने! विशेष रूपसे कलियुगके प्राणियोंकी चित्तशुद्धिके लिये इस शिवपुराणके अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है ॥ १० ॥

हे मुने! जिस बुद्धिमान् मनुष्यके पूर्वजन्मके बड़े पुण्य होते हैं, उसी महाभाग्यशाली व्यक्तिकी इस पुराणमें प्रीति होती है ॥ ११ ॥

यह शिवपुराण परम उत्तम शास्त्र है । इसे इस भूतलपर भगवान् शिवका वाङ्मय स्वरूप समझना चाहिये और सब प्रकारसे इसका सेवन करना चाहिये ॥ १२ ॥

इसके पठन और श्रवणसे शिवभक्ति पाकर श्रेष्ठतम स्थितिमें पहुँचा हुआ मनुष्य शीघ्र ही शिवपदको प्राप्त कर लेता है । इसलिये सम्पूर्ण यत्न करके मनुष्योंने इस पुराणके अध्ययनको अभीष्ट साधन माना है और इसका प्रेमपूर्वक श्रवण भी सम्पूर्ण वांछित फलोंको देनेवाला है ॥ १३-१४ ॥

भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा बड़े-बड़े उत्कृष्ट भोगोंका उपभोग करके [अन्तमें] शिवलोकको प्राप्त कर लेता है ॥ १५ ॥

राजसूययज्ञ और सैकड़ों अग्निष्टोमयज्ञोंसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह भगवान् शिवकी कथाके सुननेमात्रसे प्राप्त हो जाता है ॥ १६ ॥

हे मुने! जो लोग इस श्रेष्ठ शास्त्र शिवपुराणका श्रवण करते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिये; वे रुद्रस्वरूप ही हैं; इसमें सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥

इस पुराणका श्रवण और कीर्तन करनेवालोंके चरण-कमलकी धूलिको मुनिगण तीर्थ ही समझते हैं ॥ १८ ॥

जो प्राणी परमपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सदा भक्तिपूर्वक इस निर्मल शिवपुराणका श्रवण करना चाहिये ॥ १९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यदि मनुष्य सदा इसे सुननेमें समर्थ न हो, तो उसे प्रतिदिन स्थिर चित्तसे एक मुहूर्त भी इसको सुनना चाहिये । हे मुने! यदि मनुष्य प्रतिदिन सुननेमें भी अशक्त हो, तो उसे किसी पवित्र महीनेमें इस शिवपुराणका श्रवण करना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

मुहूर्त वा तदर्थ वा तदर्थ वा क्षणं च वा ।
ये शृणवन्ति पुराणं तन्न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ॥ २२

तत्पुराणं च शृणवानः पुरुषो यो मुनीश्वर ।
स निस्तरति संसारं दग्धवा कर्ममहाटवीम् ॥ २३

यत्पुण्यं सर्वदानेषु सर्वयज्ञेषु वा मुने ।
शम्भोः पुराणश्रवणात्तत्फलं निश्चलं भवेत् ॥ २४

विशेषतः कलौ शैवपुराणश्रवणादृते ।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिसाधनकृन्मुने ॥ २५

पुराणश्रवणं शम्भोर्नामसङ्कीर्तनं तथा ।
कल्पद्रुमफलं सम्यद् मनुष्याणां न संशयः ॥ २६

कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्मचारोऽज्ञितात्मनाम् ।
हिताय विदधे शम्भुः पुराणाख्यं सुधारसम् ॥ २७

एकोऽजरामरः स्याद्वै पिबन्नेवामृतं पुमान् ।
शम्भोः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम् ॥ २८

सदा सेव्या सदा सेव्या सदा सेव्या विशेषतः ।
एतच्छिवपुराणस्य कथा परमपावनी ॥ २९

एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणमात्रतः ।
किं ब्रवीमि फलं तस्य शिवशिच्चतं समाश्रयेत् ॥ ३०

चतुर्विंशतिसाहस्रो ग्रन्थोऽयं सप्तसंहितः ।
भक्तित्रिकसुसम्पूर्णः शृणुयात्तं परादरात् ॥ ३१

विद्येश्वरसंहिताद्या द्वितीया रुद्रसंहिता ।
तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका ॥ ३२

पञ्चम्युमासंहितोक्ता षष्ठी कैलाससंहिता ।
सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहिता इह ॥ ३३

जो लोग एक मुहूर्त, उसका आधा, उसका भी आधा अथवा क्षणमात्र भी इस पुराणका श्रवण करते हैं, उनकी दुर्गति नहीं होती ॥ २२ ॥

हे मुनीश्वर! जो पुरुष इस शिवपुराणकी कथाको सुनता है, वह सुननेवाला पुरुष कर्मरूपी महावनको जलाकर संसारके पार हो जाता है ॥ २३ ॥

हे मुने! सभी दानों और सभी यज्ञोंसे जो पुण्य मिलता है, वह फल भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे निश्चल हो जाता है ॥ २४ ॥

हे मुने! विशेषकर इस कलिकालमें तो शिवपुराणके श्रवणके अतिरिक्त मनुष्योंके लिये मुक्तिदायक कोई अन्य श्रेष्ठ साधन नहीं है ॥ २५ ॥

शिवपुराणका श्रवण और भगवान् शंकरके नामका संकीर्तन—दोनों ही मनुष्योंको कल्पवृक्षके समान सम्प्रकृ फल देनेवाले हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥

कलियुगमें धर्माचरणसे शून्य चित्तवाले दुर्बुद्धि मनुष्योंके उद्धारके लिये भगवान् शिवने अमृतरसस्वरूप शिवपुराणकी उद्घावना की है ॥ २७ ॥

अमृतपान करनेसे तो केवल अमृतपान करनेवाला ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवान् शिवका यह कथामृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर कर देता है ॥ २८ ॥

इस शिवपुराणकी परम पवित्र कथाका विशेष रूपसे सदा ही सेवन करना चाहिये, करना ही चाहिये, करना ही चाहिये। इस शिवपुराणकी कथाके श्रवणका क्या फल कहूँ? इसके श्रवणमात्रसे भगवान् सदाशिव उस प्राणीके हृदयमें विराजमान हो जाते हैं ॥ २९-३० ॥

यह [शिवपुराण नामक] ग्रन्थ चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त है। इसमें सात संहिताएँ हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे भली-भाँति सम्पन्न हो बड़े आदरसे इसका श्रवण करे ॥ ३१ ॥

पहली विद्येश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रसंहिता, चौथी कोटिरुद्रसंहिता और पाँचवीं उमासंहिता कही गयी है; छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायवीय-संहिता—इस प्रकार इसमें सात संहिताएँ हैं ॥ ३२-३३ ॥

सप्तसंहितं दिव्यं पुराणं शिवसंज्ञकम्।
वरीवर्ति ब्रह्मतुल्यं सर्वोपरि गतिप्रदम्॥ ३४

एतच्छिवपुराणं हि सप्तसंहितमादरात्।
परिपूर्णं पठेद्यस्तु स जीवन्मुक्त उच्यते॥ ३५

पुमानज्ञानतस्तावद् भ्रमतेऽस्मिन्भवे मुने।
यावत्कर्णगतं नास्ति पुराणं शैवमुत्तमम्॥ ३६

किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः।
शैवं पुराणमेकं हि मुक्तिदानेन गर्जति॥ ३७

एतच्छिवपुराणस्य कथा भवति यद्गृहे।
तीर्थभूतं हि तद् गेहं वसतां पापनाशनम्॥ ३८

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
कलां शिवपुराणस्य नार्हन्ति खलु षोडशीम्॥ ३९

तावत् स प्रोच्यते पापी पापकृन्मुनिसत्तम्।
यावच्छिवपुराणं हि न शृणोति सुभक्तिः॥ ४०

गङ्गाद्याः पुण्यनद्यश्च सप्तपुर्यो गया तथा।
एतच्छिवपुराणस्य समतां यान्ति न क्वचित्॥ ४१

नित्यं शिवपुराणस्य श्लोकं श्लोकार्थमेव च।
स्वमुखेन पठेद्दक्त्या यदीच्छेत् परमां गतिम्॥ ४२

एतच्छिवपुराणं यो वाचयेदर्थतोऽनिशम्।
पठेद्वा प्रीतितो नित्यं स पुण्यात्मा न संशयः॥ ४३

अन्तकाले हि यश्चैनं शृणुयाद्वक्तिः सुधीः।
सुप्रसन्नो महेशानस्तस्मै यच्छति स्वं पदम्॥ ४४

एतच्छिवपुराणं यः पूजयेनित्यमादरात्।
स भुक्त्वेहाखिलान् कामानन्ते शिवपदं लभेत्॥ ४५

सात संहिताओंसे युक्त यह दिव्य शिवपुराण परब्रह्म परमात्माके समान विराजमान है और सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है॥ ३४॥

जो मनुष्य सात संहिताओंवाले इस शिवपुराणको आदरपूर्वक पूरा पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ ३५॥

हे मुने! जबतक इस उत्तम शिवपुराणको सुननेका सुअवसर नहीं प्राप्त होता, तबतक अज्ञानवश प्राणी इस संसार-चक्रमें भटकता रहता है॥ ३६॥

भ्रमित कर देनेवाले अनेक शास्त्रों और पुराणोंके श्रवणसे क्या लाभ है, जबकि एक शिवपुराण ही मुक्ति प्रदान करनेके लिये गर्जन कर रहा है॥ ३७॥

जिस घरमें इस शिवपुराणकी कथा होती है, वह घर तीर्थस्वरूप ही है और उसमें निवास करनेवालोंके पाप यह नष्ट कर देता है॥ ३८॥

हजारों अश्वमेधयज्ञ और सैकड़ों वाजपेययज्ञ शिवपुराणकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते॥ ३९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! कोई अधम प्राणी जबतक भक्तिपूर्वक शिवपुराणका श्रवण नहीं करता, तभीतक उसे पापी कहा जा सकता है॥ ४०॥

गंगा आदि पवित्र नदियाँ, [मुक्तिदायिनी] सप्त पुरियाँ तथा गयादि तीर्थ इस शिवपुराणकी समता कभी नहीं कर सकते॥ ४१॥

जिसे परमगतिकी कामना हो, उसे नित्य शिवपुराणके एक श्लोक अथवा आधे श्लोकका ही स्वयं भक्तिपूर्वक पाठ करना चाहिये॥ ४२॥

जो निरन्तर अर्थानुसन्धानपूर्वक इस शिवपुराणको बाँचता है अथवा नित्य प्रेमपूर्वक इसका पाठमात्र करता है, वह पुण्यात्मा है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३॥

जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष अन्तकालमें भक्तिपूर्वक इस पुराणको सुनता है, उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् महेश्वर उसे अपना पद (धाम) प्रदान करते हैं॥ ४४॥

जो प्रतिदिन आदरपूर्वक इस शिवपुराणका पूजन करता है, वह इस संसारमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके पदको प्राप्त कर लेता है॥ ४५॥

एतच्छिवपुराणस्य कुर्वन्नित्यमतन्द्रितः।
पद्मवस्त्रादिना सम्यक् सत्कारं स सुखी सदा ॥ ४६

शैवं पुराणममलं शैवसर्वस्वमादरात्।
सेवनीयं प्रयत्नेन परत्रेह सुखेष्मुना ॥ ४७

चतुर्वर्गप्रदं शैवं पुराणममलं परम्।
श्रोतव्यं सर्वदा प्रीत्या पठितव्यं विशेषतः ॥ ४८

वेदेतिहासशास्त्रेषु परं श्रेयस्करं महत्।
शैवं पुराणं विज्ञेयं सर्वथा हि मुमुक्षुभिः ॥ ४९

शैवं पुराणमिदमात्मविदां वरिष्ठं
सेव्यं सदा परमवस्तु सता समर्च्यम्।
तापत्रयाभिशमनं सुखदं सदैव
प्राणप्रियं विधिहरीशमुखामराणाम् ॥ ५०

वन्दे शिवपुराणं हि सर्वदाहं प्रसन्नधीः।
शिवः प्रसन्नतां यायाद् दद्यात्स्वपदयो रतिम् ॥ ५१

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये तन्महिमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें उसकी महिमावर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति

शौनक उवाच
सूत सूत महाभाग धन्यस्त्वं परमार्थवित्।
अद्भुतेयं कथा दिव्या श्राविता कृपया हि नः ॥ १

अघौघविध्वंसकरी मनःशुद्धिविधायिनी।
शिवसन्तोषजननी कथेयं नः श्रुताद्भुता ॥ २

एतत्कथासमानं न भुवि किञ्चित् परात्परम्।
निश्चयेनेति विज्ञातमस्माभिः कृपया तव ॥ ३

जो प्रतिदिन आलस्यरहित हो रेशमी वस्त्र आदिके वेष्टनसे इस शिवपुराणका सत्कार करता है, वह सदा सुखी होता है ॥ ४६ ॥

यह शिवपुराण निर्मल तथा शैवोंका सर्वस्व है; इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवालेको आदरके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका सेवन करना चाहिये ॥ ४७ ॥

यह निर्मल एवं उत्तम शिवपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है, अतः सदा प्रेमपूर्वक इसका श्रवण एवं विशेष रूपसे पाठ करना चाहिये ॥ ४८ ॥

वेद, इतिहास तथा अन्य शास्त्रोंमें यह शिवपुराण विशेष कल्याणकारी है—ऐसा मुमुक्षुजनोंको समझना चाहिये ॥ ४९ ॥

यह शिवपुराण आत्मतत्त्वज्ञोंके लिये सदा सेवनीय है, सत्युरुषोंके लिये पूजनीय है, तीनों प्रकारके तापोंका शमन करनेवाला है, सुख प्रदान करनेवाला है तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि देवताओंको प्राणोंके समान प्रिय है ॥ ५० ॥

ऐसे शिवपुराणको मैं प्रसन्नचित्तसे सदा वन्दन करता हूँ। भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों और अपने चरणकमलोंकी भक्ति मुझे प्रदान करें ॥ ५१ ॥

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी! आप धन्य हैं, परमार्थतत्त्वके ज्ञाता हैं, आपने कृपा करके हमलोगोंको यह बड़ी अद्भुत एवं दिव्य कथा सुनायी है ॥ १ ॥

हमने यह पापनाशिनी, मनको पवित्र करनेवाली और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेवाली अद्भुत कथा सुनी ॥ २ ॥

भूतलपर इस कथाके समान कल्याणका सर्वश्रेष्ठ साधन दूसरा कोई नहीं है, यह बात हमने आज आपकी कृपासे निश्चयपूर्वक समझ ली। हे सूतजी!

के के विशुद्ध्यन्त्यनया कथया पापिनः कलौ ।
वद तान् कृपया सूत कृतार्थं भुवनं कुरु ॥ ४

सूत उवाच

ये मानवाः पापकृतो दुराचाररताः खलाः ।
कामादिनिरता नित्यं तेऽपि शुद्ध्यन्त्यनेन वै ॥ ५
ज्ञानयज्ञः परोऽयं वै भुक्तिमुक्तिप्रदः सदा ।
शोधनः सर्वपापानां शिवसन्तोषकारकः ॥ ६

तृष्णाकुलाः सत्यहीनाः पितृमातृविदूषकाः ।
दाम्भिका हिंसका ये च तेऽपि शुद्ध्यन्त्यनेन वै ॥ ७

स्वर्णाश्रिमधर्मेभ्यो वर्जिता मत्सरान्विताः ।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुन्निति कलावपि ॥ ८

छलच्छद्यकरा ये च ये च कूराः सुनिर्दयाः ।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुन्निति कलावपि ॥ ९

ब्रह्मस्वपुष्टाः सततं व्यभिचाररताश्च ये ।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुन्निति कलावपि ॥ १०

सदा पापरता ये च ये शठाश्च दुराशयाः ।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुन्निति कलावपि ॥ ११

मलिना दुर्धियोऽशान्ता देवताद्रव्यभोजिनः ।
ज्ञानयज्ञेन तेऽनेन सम्पुन्निति कलावपि ॥ १२

पुराणस्यास्य पुण्यं सन्महापातकनाशनम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव शिवसन्तोषहेतुकम् ॥ १३

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिर्भवत्यलम् ॥ १४

आसीत् किरातनगरे ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
दरिद्रो रसविक्रेता वेदर्थमपराङ्मुखः ॥ १५

सन्ध्यास्नानपरिभ्रष्टो वैश्यवृत्तिपरायणः ।
देवराज इति ख्यातो विश्वस्तजनवञ्चकः ॥ १६

कलियुगमें इस कथाके द्वारा कौन-कौन-से पापी शुद्ध होते हैं? उन्हें कृपापूर्वक बताइये और इस जगत्को कृतार्थ कीजिये ॥ ३-४ ॥

सूतजी बोले—हे मुने! जो मनुष्य पापी, दुराचारी, खल तथा काम-क्रोध आदिमें निरन्तर ढूबे रहनेवाले हैं, वे भी इस पुराणसे अवश्य शुद्ध हो जाते हैं ॥ ५ ॥

यह कथा वास्तवमें उत्तम ज्ञानयज्ञ है, जो सदा सांसारिक भोग और मोक्षको देनेवाला है, सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेवाला है। जो अत्यन्त लालची, सत्यविहीन, अपने माता-पितासे द्वेष करनेवाले, पाखण्डी तथा हिंसक वृत्तिके हैं; वे भी इस ज्ञानयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं। अपने वर्णाश्रिमधर्मका पालन न करनेवाले और ईर्ष्याग्रस्त लोग भी कलिकालमें इस ज्ञानयज्ञके द्वारा पवित्र हो जाते हैं ॥ ६—८ ॥

जो लोग छल-कपट करनेवाले, क्रूर स्वभाववाले और अत्यन्त निर्दयी हैं, कलियुगमें वे भी इस ज्ञानयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं। ब्राह्मणके धनसे पलनेवाले तथा निरन्तर व्यभिचारपरायण जो लोग हैं, वे भी इस ज्ञानयज्ञसे इस कलिकालमें भी पवित्र हो जाते हैं। जो मनुष्य सदा पापकर्मोंमें लिप्त रहते हैं, शठ हैं और अत्यन्त दूषित विचारवाले हैं, वे कलियुगमें भी इस ज्ञानयज्ञसे निर्मल हो जाते हैं। दुश्चरित्र, दुर्बुद्धि, उद्विग्न चित्तवाले और देवताओंके द्रव्यका उपभोग करनेवाले पापीजन भी कलिकालमें भी इस ज्ञानयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ ९—१२ ॥

इस पुराणके श्रवणका पुण्य बड़े-बड़े पापोंको नष्ट करता है, सांसारिक भोग तथा मोक्ष प्रदान करता है और भगवान् शंकरको प्रसन्न करता है ॥ १३ ॥

इस सम्बन्धमें मुनिगण इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है ॥ १४ ॥

पहलेकी बात है—किरातनगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो अज्ञानी, दरिद्र, रस बेचनेवाला तथा वैदिक धर्मसे विमुख था। वह स्नान-सन्ध्या आदि कर्मोंसे भ्रष्ट हो गया था और वैश्यवृत्तिमें तत्पर रहता था। उसका नाम था देवराज। वह अपने ऊपर

स विप्रान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्चापि तथापरान् ।
हत्वा नानामिषेणैव तत्तद्धनमपाहरत् ॥ १७

अधर्माद् बहुवित्तानि पश्चात्तेनार्जितानि वै ।
न धर्माय धनं तस्य स्वल्पञ्चापीह पापिनः ॥ १८

एकदैकतडागे स स्नातुं यातो महीसुरः ।
वेश्यां शोभावतीं नाम दृष्ट्वा तत्रातिविह्वलः ॥ १९

स्ववशं धनिनं विप्रं ज्ञात्वा हष्टाथ सुन्दरी ।
वार्तालापेन तच्चित्तं प्रीतिमत्समजायत ॥ २०

स्त्रियं कर्तुं स तां मेने पतिं कर्तुं च सा तथा ।
एवं कामवशौ भूत्वा बहुकालं विजहृतुः ॥ २१

आसने शयने पाने भोजने क्रीडने तथा ।
दम्पतीव सदा द्वौ तु ववृताते परस्परम् ॥ २२

मात्रा पित्रा तथा पत्न्या वासितोऽपि पुनः पुनः ।
नामन्यत वचस्तेषां पापवृत्तिपरायणः ॥ २३

एकदेष्यावशाद् रात्रौ मातरं पितरं वधूम् ।
प्रसुप्तान् न्यवधीद् दुष्टो धनं तेषां तथाहरत् ॥ २४

आत्मनीनं धनं यच्च पित्रादीनां तथा धनम् ।
वेश्यायै दत्तवान् सर्वं कामी तदगतमानसः ॥ २५

सोऽभक्ष्यभक्षकः पापी मदिरापानलालसः ।
एकपात्रे सदाभौक्षीत् सवेश्यो ब्राह्मणाधमः ॥ २६

कदाचिद्दैवयोगेन प्रतिष्ठानमुपागतः ।
शिवालयं ददर्शसौ तत्र साधुजनावृतम् ॥ २७

स्थित्वा तत्र च विप्रोऽसौ ज्वरेणातिप्रीडितः ।
शुश्राव सततं शैवीं कथां विप्रमुखोदगताम् ॥ २८

विश्वास करनेवाले लोगोंको ठगा करता था। उसने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरोंको भी अनेक बहानोंसे मारकर उनका धन हड़प लिया था। बादमें उसने अधर्मसे बहुत सारा धन अर्जित कर लिया, परंतु उस पापीका थोड़ा-सा भी धन कभी धर्मके काममें नहीं लगा ॥ १५—१८ ॥

एक दिन वह ब्राह्मण एक तालाबपर नहाने गया। वहाँ शोभावती नामकी एक वेश्याको देखकर वह अत्यन्त मोहित हो गया। वह सुन्दरी भी उस धनी ब्राह्मणको अपने वशीभूत हुआ जानकर प्रसन्न हुई। आपसमें वार्तालापसे उनमें प्रीति उत्पन्न हो गयी। उस ब्राह्मणने उस वेश्याको पली बनाना तथा उस वेश्याने उसे पति बनाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार कामवश होकर वे दोनों बहुत समयतक विहार करते रहे ॥ १९—२१ ॥

बैठने, सोने, खाने-पीने तथा क्रीड़ामें वे दोनों निरन्तर पति-पलीकी तरह व्यवहार करने लगे। अपने माता-पिता तथा पलीके बार-बार रोकनेपर भी पापकृत्यमें संलग्न वह ब्राह्मण उनकी बात नहीं मानता था ॥ २२-२३ ॥

एक दिन रात्रिमें उस दुष्टने ईर्ष्यावश अपने सोये हुए माता-पिता और पलीको मार डाला और उनका सारा धन हर लिया। वेश्यामें आसक्त चित्तवाले उस कामीने अपना और पिता आदिका सारा धन उस वेश्याको दे दिया। वह पापी अभक्ष्य-भक्षण तथा मद्यपान करने लगा और वह नीच ब्राह्मण उस वेश्याके साथ एक ही पात्रमें सदा जूठा भोजन करने लगा ॥ २४—२६ ॥

एक दिन घूमता-घामता वह दैवयोगसे प्रतिष्ठानपुर (झूँसी-प्रयाग)-में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक शिवालय देखा, जहाँ बहुतसे साधु-महात्मा एकत्र हुए थे ॥ २७ ॥

देवराज उस शिवालयमें ठहर गया और वहाँ उस ब्राह्मणको ज्वर आ गया। उस ज्वरसे उसको बड़ी पीड़ा होने लगी। वहाँ एक ब्राह्मणदेवता शिवपुराणकी कथा सुना रहे थे। ज्वरमें पड़ा हुआ देवराज ब्राह्मणके मुखारविन्दसे निकली हुई उस शिवकथाको निरन्तर सुनता रहा ॥ २८ ॥

देवराजश्च मासान्ते ज्वरेणापीडितो मृतः ।
बद्धो यमभटैः पाशैर्नीतो यमपुरं बलात् ॥ २९

तावच्छिवगणाः शुभ्रास्त्रिशूलाञ्छितपाणयः ।
भस्मभासितसर्वाङ्गा रुद्राक्षाञ्छितविग्रहाः ॥ ३०

शिवलोकात् समागत्य कुद्धा यमपुरीं ययुः ।
ताडयित्वा तु तददूतांस्तर्जयित्वा पुनः पुनः ॥ ३१

देवराजं समामोच्य विमाने परमाद्भुते ।
उपवेश्य यदा दूताः कैलासं गन्तुमुत्सुकाः ॥ ३२

तदा यमपुरीमध्ये महाकोलाहलोऽभवत् ।

धर्मराजस्तु तं श्रुत्वा स्वालयाद् बहिरागमत् ॥ ३३

दृष्ट्वाथ चतुरो दूतान् साक्षाद् रुद्रानिवापरान् ।
पूजयामास धर्मज्ञो धर्मराजो यथाविधि ॥ ३४

ज्ञानेन चक्षुषा सर्वं वृत्तान्तं ज्ञातवान् यमः ।
न भयात् पृष्ठवान् किञ्चिच्छम्भोर्दूतान् महात्मनः ॥ ३५

पूजिताः प्रार्थितास्ते वै कैलासमगमस्तदा ।
ददुः शिवाय साम्बाय तं दयावारिराशये ॥ ३६

धन्या शिवपुराणस्य कथा परमपावनी ।
यस्याः श्रवणमात्रेण पापीयानपि मुक्तिभाक् ॥ ३७

सदाशिवमहास्थानं परं धाम परं पदम् ।
यदाहुवेदविद्वान्सः सर्वलोकोपरि स्थितम् ॥ ३८

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा अन्येऽपि प्राणिनः ।
हिंसिता धनलोभेन बहवो येन पापिना ॥ ३९

मातृपितृवधूहन्ता वेश्यागामी च मद्यपः ।
देवराजो द्विजस्तत्र गत्वा मुक्तोऽभवत् क्षणात् ॥ ४०

एक मासके बाद वह ज्वरसे अत्यन्त पीड़ित होकर चल बसा। यमराजके दूत आये और उसे पाशोंसे बाँधकर बलपूर्वक यमपुरीमें ले गये ॥ २९ ॥

इतनेमें ही शिवलोकसे भगवान् शिवके पार्षदगण आ गये। उनके गौर अंग कर्पूरके समान उज्ज्वल थे, हाथ त्रिशूलसे सुशोभित हो रहे थे, उनके सम्पूर्ण अंग भस्मसे उद्धासित थे और रुद्राक्षकी मालाएँ उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रही थीं। वे सब-के-सब क्रोध करते हुए यमपुरीमें गये और यमराजके दूतोंको मार-पीटकर, बारम्बार धमकाकर उन्होंने देवराजको उनके चंगुलसे छुड़ा लिया और अत्यन्त अद्भुत विमानपर बिठाकर जब वे शिवदूत कैलास जानेको उद्यत हुए, उस समय यमपुरीमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया ॥ ३०—३२ ॥

उस कोलाहलको सुनकर धर्मराज अपने भवनसे बाहर आये। साक्षात् दूसरे रुद्रोंके समान प्रतीत होनेवाले उन चारों दूतोंको देखकर धर्मज्ञ धर्मराजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया ॥ ३३-३४ ॥

यमने ज्ञानदृष्टिसे देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया, उन्होंने भयके कारण भगवान् शिवके उन महात्मा दूतोंसे कोई बात नहीं पूछी ॥ ३५ ॥

यमराजसे पूजित तथा प्रार्थित होकर वे शिवदूत कैलासको चले गये और उन्होंने उस ब्राह्मणको दयासागर साम्ब शिवको दे दिया ॥ ३६ ॥

शिवपुराणकी यह परम पवित्र कथा धन्य है, जिसके सुननेसे पापीजन भी मुक्तिके योग्य बन जाते हैं। भगवान् सदाशिवके परमधामको वेदज्ञ सभी लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य प्राणी; यहाँतक कि जिस पापीने धनके लोभसे अनेक लोगोंकी हत्या की तथा अपने माता-पिता और पत्नीको भी मार डाला; वह वेश्यागामी, शराबी ब्राह्मण देवराज भी इस कथाके प्रभावसे भगवान् शिवके परमधामको प्राप्तकर तत्क्षण मुक्त हो गया ॥ ३७—४० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये देवराजमुक्तिवर्णनं

नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें देवराजमुक्तिवर्णन
नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

चंचुलाका पापसे भय एवं संसारसे वैराग्य

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग सर्वज्ञोऽसि महामते ।
त्वत्प्रसादात् कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं पुनः पुनः ॥ १

इतिहासमिमं श्रुत्वा मनो मेऽतीव मोदते ।
अन्यामपि कथां शम्भोर्वदं प्रेमविवर्धिनीम् ॥ २

नामृतं पिबतां लोके मुक्तिः क्वापि सभाज्यते ।
शम्भोः कथासुधापानं प्रत्यक्षं मुक्तिदायकम् ॥ ३

धन्या धन्या कथा शम्भोस्त्वं धन्यो धन्य एव च ।
यदाकर्णनमात्रेण शिवलोकं ब्रजेन्नरः ॥ ४

सूत उवाच

शृणु शौनक वक्ष्यामि त्वदग्रे गुह्यमप्युत ।
यतस्त्वं शिवभक्तानामग्रणीर्वेदवित्तमः ॥ ५

समुद्रनिकटे देशे ग्रामो बाष्टलसंज्ञकः ।
वसन्ति यत्र पापिष्ठा वेदधर्मोऽज्ञिता जनाः ॥ ६

दुष्टा दुर्विषयात्मानो निर्देवा जिह्ववृत्तयः ।
कृषीवलाः शस्त्रधराः परस्त्रीभोगिनः खलाः ॥ ७

ज्ञानवैराग्यसद्धर्मं न जानन्ति परं हि ते ।
कुकथाश्रवणाद्येषु निरताः पशुबुद्धयः ॥ ८

अन्ये वर्णाश्च कुधियः स्वधर्मविमुखाः खलाः ।
कुकर्मनिरता नित्यं सदा विषयिणश्च ते ॥ ९

स्त्रियः सर्वाश्च कुटिलाः स्वैरिण्यः पापलालसाः ।
कुधियो व्यभिचारिण्यः सदवृत्ताचारवर्जिताः ॥ १०

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी! आप सर्वज्ञ हैं। हे महामते! आपके कृपाप्रसादसे मैं बारम्बार कृतार्थ हुआ। इस इतिहासको सुनकर मेरा मन अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो रहा है। अतः अब भगवान् शिवमें प्रेम बढ़ानेवाली शिवसम्बन्धिनी दूसरी कथाको भी कहिये ॥ १-२ ॥

अमृत पीनेवालोंको लोकमें कहीं मुक्ति नहीं प्राप्त होती है, किंतु भगवान् शंकरके कथामृतका पान तो प्रत्यक्ष ही मुक्ति देनेवाला है। सदाशिवकी जिस कथाके सुननेमात्रसे मनुष्य शिवलोक प्राप्त कर लेता है, वह कथा धन्य है, धन्य है और कथाका श्रवण करानेवाले आप भी धन्य हैं, धन्य हैं ॥ ३-४ ॥

सूतजी बोले—हे शौनक! सुनिये, मैं आपके सामने गोपनीय कथावस्तुका भी वर्णन करूँगा; क्योंकि आप शिवभक्तोंमें अग्रगण्य तथा वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशमें एक बाष्टल नामक ग्राम है, जहाँ वैदिक धर्मसे विमुख महापापी द्विज निवास करते हैं। वे सब-के-सब बड़े दुष्ट हैं, उनका मन दूषित विषयभोगोंमें ही लगा रहता है। वे न देवताओंपर विश्वास करते हैं न भाग्यपर; वे सभी कुटिल वृत्तिवाले हैं। किसानी करते और भाँति-भाँतिके घातक अस्त्र-शस्त्र रखते हैं। वे परस्त्रीगमन करनेवाले और खल हैं। ज्ञान, वैराग्य तथा सद्धर्मको वे बिलकुल नहीं जानते हैं। वे सभी पशुबुद्धिवाले हैं और सदा दूषित बातोंको सुननेमें संलग्न रहते हैं ॥ ५-८ ॥

(जहाँके द्विज ऐसे हों, वहाँके अन्य वर्णोंके विषयमें क्या कहा जाय!) अन्य वर्णोंके लोग भी उन्हींकी भाँति कुत्सित विचार रखनेवाले, स्वधर्मविमुख एवं खल हैं; वे सदा कुकर्ममें लगे रहते हैं और नित्य विषयभोगोंमें ही डूबे रहते हैं ॥ ९ ॥

वहाँकी सब स्त्रियाँ भी कुटिल स्वभावकी, स्वेच्छाचारिणी, पापासक, कुत्सित विचारवाली और व्यभिचारिणी हैं। वे सदव्यवहार तथा सदाचारसे सर्वथा शून्य हैं ॥ १० ॥

एवं कुजनसंवासे ग्रामे बाष्कलसंज्ञिते।
तत्रैको बिन्दुगो नाम विप्र आसीन्महाथमः ॥ ११

स दुरात्मा महापापी सुदारोऽपि कुमार्गणः।
वेश्यापतिर्बभूवाथ कामाकुलितमानसः ॥ १२

स्वपत्नीं चञ्चुलां नाम हित्वा नित्यं सुधर्मिणीम्।
रेमे स वेश्यया दुष्टः स्मरबाणप्रपीडितः ॥ १३

एवं कालो व्यतीयाय महांस्तस्य कुकर्मिणः।
सा स्वधर्मभयात् क्लेशात् स्मरात्तापि च चञ्चुला ॥ १४

अथ तस्याङ्गना सापि प्रसूढनवयौवना।
अविष्वह्यस्मरावेशा स्वधर्माद्विराम ह ॥ १५

जारेण सङ्गता रात्रौ रेमे पापेन गुप्ततः।
पतिदृष्टिं वञ्चयित्वा भ्रष्टसत्त्वा कुमार्गणा ॥ १६

कदाचित्तां दुराचारां स्वपत्नीं चञ्चुलां मुने।
जारेण सङ्गतां रात्रौ दर्दर्श स्मरविह्वलाम् ॥ १७

दृष्ट्वा तां दूषितां पत्नीं कुकर्मसक्तमानसाम्।
जारेण सङ्गतां रात्रौ क्रोधाद् दुद्राव वेगतः ॥ १८

तमागतं गृहे दुष्टमाज्ञाय बिन्दुगं खलः।
पलायितो द्रुतं जारो वेगतश्छद्यवान् स वै ॥ १९

अथ स बिन्दुगः पत्नीं गृहीत्वा सुदुराशयः।
मुष्टिबन्धेन सन्तर्ज्य पुनः पुनरताडयत् ॥ २०

सा नारी ताडिता भर्त्रा चञ्चुला स्वैरिणी खला।
कुपिता निर्भया प्राह स्वपतिं बिन्दुगं खलम् ॥ २१

चञ्चुलोवाच

भवान् प्रतिदिनं कामं रमते वेश्यया कुधीः।
मां विहाय स्वपत्नीं च युवतीं पतिसेविनीम् ॥ २२

कुजनोंके निवासस्थान उस बाष्कल नामक ग्राममें किसी समय एक बिन्दुग नामधारी ब्राह्मण रहता था, वह बड़ा अधम था ॥ ११ ॥

वह दुरात्मा और महापापी था। यद्यपि उसकी स्त्री बड़ी सुन्दर थी, तो भी वह कुमार्गणपर ही चलता था। कामवासनासे कलुषितचित्त वह वेश्यागामी था ॥ १२ ॥

उसकी पत्नीका नाम चंचुला था, वह सदा उत्तम धर्मके पालनमें लगी रहती थी, तो भी उसे छोड़कर वह दुष्ट ब्राह्मण कामासक्त होकर वेश्यागामी हो गया था ॥ १३ ॥

इस तरह कुकर्ममें लगे हुए उस बिन्दुगके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। उसकी स्त्री चंचुला कामसे पीड़ित होनेपर भी स्वधर्मनाशके भयसे क्लेश सहकर भी दीर्घकालतक धर्मसे भ्रष्ट नहीं हुई। परंतु दुराचारी पतिके आचरणसे प्रभावित होनेके कारण कामपीड़ित हो आगे चलकर वह स्त्री भी दुराचारिणी हो गयी ॥ १४-१५ ॥

भ्रष्ट चरित्रवाली वह कुमार्गणामिनी अपने पतिकी दृष्टि बचाकर रात्रिमें चोरी-छिपे अन्य पापी जार पुरुषके साथ रमण करने लगी ॥ १६ ॥

हे मुने! एक बार उस ब्राह्मणने अपनी उस दुराचारिणी पत्नी चंचुलाको कामासक्त हो परपुरुषके साथ रात्रिमें संसर्गरत देख लिया ॥ १७ ॥

उस दुष्ट तथा दुराचारमें आसक्त मनवाली पत्नीको रातमें परपुरुषके साथ व्यभिचाररत देखकर वह क्रोधपूर्वक वेगसे दौड़ा ॥ १८ ॥

उस दुष्ट बिन्दुगको घरमें आया जानकर वह कपटी व्यभिचारी तेजीसे भाग गया ॥ १९ ॥

तब वह दुष्टात्मा बिन्दुग अपनी पत्नीको पकड़कर उसे डाँटता हुआ मुक्कोंसे बार-बार पीटने लगा ॥ २० ॥

वह व्यभिचारिणी दुष्टा नारी चंचुला पीटी जानेपर कुपित होकर निर्भयतापूर्वक अपने दुष्ट पति बिन्दुगसे कहने लगी ॥ २१ ॥

चंचुला बोली—मुझ पतिपरायणा युवती पत्नीको छोड़कर आप कुबुद्धिवश प्रतिदिन वेश्याके साथ इच्छानुसार रमण करते हैं। आप ही बतायें कि रूपवती तथा कामासक्त चित्तवाली मुझ युवतीकी

रूपवत्या युवत्याश्च कामाकुलितचेतसः ।
विना पतिविहारं स्यात् का गतिर्में भवान् वदेत् ॥ २३
अहं महारूपवती नवयौवनविह्वला ।
कथं सहे कामदुःखं तव सङ्गं विनार्तधीः ॥ २४

सूत उवाच

इत्युक्तः स तया मूर्खोँ मूढधीर्ब्राह्मणोऽधमः ।
प्रोवाच बिन्दुगः पापी स्वधर्मविमुखः खलः ॥ २५

बिन्दुग उवाच

सत्यमेतत्त्वयोक्तं हि कामव्याकुलचेतसा ।
हितं वक्ष्यामि तस्मात्ते शृणु कान्ते भयं त्यज ॥ २६
जारैर्विहर नित्यं त्वं चेतसा निर्भयेन वै ।
धनमाकर्षं तेभ्यो हि दत्त्वा तेभ्यः परां रतिम् ॥ २७
तद्धनं देहि सर्वं मे वेश्यासंसक्तचेतसः ।
महत्स्वार्थं भवेन्नूनं तवापि च ममापि च ॥ २८

सूत उवाच

इति भर्तृवचः श्रुत्वा चञ्चुला तद्वधूश्च सा ।
तथेति भर्तृवचनं प्रतिजग्राह हृष्टधीः ॥ २९
कृत्वैवं समयं तौ वै दम्पती दुष्टमानसौ ।
कुकर्मनिरतौ जातौ निर्भयेन कुचेतसा ॥ ३०
एवं तयोस्तु दम्पत्योर्दुराचारप्रवृत्तयोः ।
महान् कालो व्यतीयाय निष्फलो मूढचेतसोः ॥ ३१
अथ विप्रः स कुमतिर्बिन्दुगो वृषलीपतिः ।
कालेन निधनं प्राप्तो जगाम नरकं खलः ॥ ३२
भुक्त्वा नरकदुःखानि बह्वहानि स मूढधीः ।
विन्ध्येऽभवत् पिशाचो हि गिरौ पापी भयङ्करः ॥ ३३
मृते भर्तरि तस्मिन्वै दुराचारेऽथ बिन्दुगे ।
उवास स्वगृहे पुत्रैश्चरकालं विमूढधीः ॥ ३४

एवं विहरती जारैः सा नारी चञ्चुलाह्वया ।
आसीत् कामरता प्रीता किञ्चिदुल्कान्तयौवना ॥ ३५
एकदा दैवयोगेन सम्प्राप्ते पुण्यपर्वणि ।
सा नारी बन्धुभिः सार्थं गोकर्णं क्षेत्रमाययौ ॥ ३६
प्रसङ्गात् सा तदा गत्वा कस्मिंश्चत् तीर्थपाथसि ।
सस्नौ सामान्यतो यत्र तत्र बभ्राम बन्धुभिः ॥ ३७

पतिसंसर्गके बिना क्या गति होती होगी ? मैं अत्यन्त सुन्दर हूँ तथा नवयौवनसे उन्मत्त हूँ। आपके संसर्गके बिना व्यथितचित्तवाली मैं कामजन्य दुःखको कैसे सह सकती हूँ ? ॥ २२—२४ ॥

सूतजी बोले—उस स्त्रीके इस प्रकार कहनेपर वह मूढबुद्धि मूर्ख ब्राह्मणाधम स्वधर्मविमुख दुष्ट पापी बिन्दुग कहने लगा— ॥ २५ ॥

बिन्दुग बोला—कामसे व्याकुलचित्त होकर तुमने यह सत्य ही कहा है। हे प्रिये ! तुम भय त्याग दो और मैं जो तुमसे हितकी बात कहता हूँ उसे सुनो। तुम निर्भय होकर नित्य परपुरुषोंके साथ संसर्ग करो। उन्हें सन्तुष्ट करके उनसे धन खींचो। वह सारा धन वेश्याके प्रति आसक्त मनवाले मुझको दे दिया करो। इससे तुम्हारा और मेरा दोनोंका ही स्वार्थ सिद्ध हो जायगा ॥ २६—२८ ॥

सूतजी बोले—पतिका यह वचन सुनकर उसकी पत्नी चंचुलाने प्रसन्न होकर उसकी कही बात मान ली। उन दोनों दुराचारी पति-पत्नीने इस प्रकार समझौता कर लिया तथा वे दोनों निर्भय चित्तसे कुकर्ममें लीन हो गये ॥ २९-३० ॥

इस तरह दुराचारमें ढूबे हुए उन मूढ़ चित्तवाले पति-पत्नीका बहुत-सा समय व्यर्थ बीत गया ॥ ३१ ॥

तदनन्तर शूद्रजातीय वेश्याका पति बना हुआ वह दूषित बुद्धिवाला दुष्ट ब्राह्मण बिन्दुग समयानुसार मृत्युको प्राप्त हो नरकमें जा पड़ा। बहुत दिनोंतक नरकके दुःख भोगकर वह मूढबुद्धि पापी विन्ध्यपर्वतपर भयंकर पिशाच हुआ ॥ ३२-३३ ॥

इधर, उस दुराचारी पति बिन्दुगके मर जानेपर वह मूढहृदया चंचुला बहुत समयतक पुत्रोंके साथ अपने घरमें ही रही ॥ ३४ ॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक कामासक्त होकर जारोंके साथ विहार करती हुई उस चंचुला नामक स्त्रीका कुछ-कुछ यौवन समयके साथ ढलने लगा ॥ ३५ ॥

एक दिन दैवयोगसे किसी पुण्य पर्वके आनेपर वह स्त्री भाई-बन्धुओंके साथ गोकर्ण-क्षेत्रमें गयी। तीर्थयात्रियोंके संगसे उसने भी उस समय जाकर किसी तीर्थके जलमें स्नान किया। फिर वह साधारणतया

देवालयेऽथ कस्मिंश्चैवज्ञमुखतः शुभाम् ।
शुश्राव सत्कथां शम्भोः पुण्यां पौराणिकीं च सा ॥ ३८

योषितां जारसक्तानां नरके यमकिङ्कराः ।
सन्तप्तलोहपरिघं क्षिपत्ति स्मरमन्दिरे ॥ ३९

इति पौराणिकेनोक्तां श्रुत्वा वैराग्यवर्धिनीम् ।
कथामासीद्वयोद्विग्रा चकम्ये तत्र सा च वै ॥ ४०

कथा समाप्तौ सा नारी निर्गतेषु जनेषु च ।
भीता रहसि तं प्राह शैवं संवाचकं द्विजम् ॥ ४१

चञ्चुलोवाच

ब्रह्मन् त्वं शृण्वसद्वृत्तमजानन्त्या स्वधर्मकम् ।
श्रुत्वा मामुद्धर स्वामिन् कृपां कृत्वातुलामपि ॥ ४२

चरितं सूल्बणं पापं मया मूढधिया प्रभो ।
नीतं पाँश्चल्यतः सर्वं यौवनं मदनान्धया ॥ ४३

श्रुत्वेदं वचनं तेऽद्य वैराग्यरसजृभितम् ।
जाता महाभया साहं सकम्पात्तवियोगिका ॥ ४४

धिङ् मां मूढधियं पापां काममोहितचेतसम् ।
निन्द्यां दुर्विषयासक्तां विमुखीं हि स्वधर्मतः ॥ ४५

यदल्पस्य सुखस्यार्थे स्वकार्यस्य विनाशिनम् ।
महापापं कृतं घोरमजानन्त्यातिकष्टदम् ॥ ४६

यास्यामि दुर्गतिं कां कां घोरां हा कष्टदायिनीम् ।
को ज्ञो यास्यति मां तत्र कुमार्गरतमानसाम् ॥ ४७

मरणे यमदूतांस्तान् कथं द्रक्ष्ये भयङ्करान् ।
कथं पाशैर्बलात् कण्ठे बध्यमाना धृतिं लभे ॥ ४८

(मेला देखनेकी दृष्टिसे) बन्धुजनोंके साथ यत्र-तत्र घूमने लगी। [घूमती-घामती] किसी देवमन्दिरमें उसने एक दैवज्ञ ब्राह्मणके मुखसे भगवान् शिवकी परम पवित्र एवं मंगलकारिणी उत्तम पौराणिक कथा सुनी ॥ ३६—३८ ॥

[कथावाचक ब्राह्मण कह रहे थे कि] ‘जो स्त्रियाँ परपुरुषोंके साथ व्यभिचार करती हैं, वे मरनेके बाद जब यमलोकमें जाती हैं, तब यमराजके दूत उनकी योनिमें तपे हुए लोहेका परिघ डालते हैं।’ पौराणिक ब्राह्मणके मुखसे यह वैराग्य बढ़ानेवाली कथा सुनकर चंचुला भयसे व्याकुल हो वहाँ काँपने लगी ॥ ३९-४० ॥

जब कथा समाप्त हुई और लोग वहाँसे बाहर चले गये, तब वह भयभीत नारी एकान्तमें शिवपुराणकी कथा बाँचनेवाले उन ब्राह्मणसे कहने लगी ॥ ४१ ॥

चंचुलाने कहा—ब्रह्मन्! मैं अपने धर्मको नहीं जानती थी। इसलिये मेरे द्वारा बड़ा दुराचार हुआ है। स्वामिन्! इसे सुनकर मेरे ऊपर अनुपम कृपा करके आप मेरा उद्धार कीजिये ॥ ४२ ॥

हे प्रभो! मैंने मूढ़बुद्धिके कारण घोर पाप किया है। मैंने कामान्ध होकर अपनी सम्पूर्ण युवावस्था व्यभिचारमें बितायी है ॥ ४३ ॥

आज वैराग्य-रससे ओतप्रोत आपके इस प्रवचनको सुनकर मुझे बड़ा भय लग रहा है। मैं काँप उठी हूँ और मुझे इस संसारसे वैराग्य हो गया है। मुझ मूढ़ चित्तवाली पापिनीको धिक्कार है। मैं सर्वथा निन्दाके योग्य हूँ। मैं कुत्सित विषयोंमें फँसी हुई हूँ और अपने धर्मसे विमुख हो गयी हूँ ॥ ४४-४५ ॥

थोड़ेसे सुखके लिये अपने हितका नाश करनेवाले तथा भयंकर कष्ट देनेवाले घोर पाप मैंने अनजानेमें ही कर डाले ॥ ४६ ॥

हाय! न जाने किस-किस घोर कष्टदायक दुर्गतिमें मुझे पड़ना पड़ेगा और वहाँ कौन बुद्धिमान् पुरुष कुमार्गमें मन लगानेवाली मुझ पापिनीका साथ देगा? मृत्युकालमें उन भयंकर यमदूतोंको मैं कैसे देखूँगी? जब वे बलपूर्वक मेरे गलेमें फँदे डालकर

कथं सहिष्ये नरके खण्डशो देहकृत्तनम्।
यातनां तत्र महतीं दुःखदां च विशेषतः ॥ ४९

दिवा चेष्टामिन्द्रियाणां कथं प्राप्स्यामि शोचती ।
रात्रौ कथं लभिष्येऽहं निद्रां दुःखपरिप्लुता ॥ ५०

हा हतास्मि च दग्धास्मि विदीर्णहृदयास्मि च ।
सर्वथाहं विनष्टास्मि पापिनी सर्वथाप्यहम् ॥ ५१

हा विधे मां महापापे दत्त्वा दुश्शेमुषीं हठात् ।
अपैति यत् स्वधर्मद्वै सर्वसौख्यकरादहो ॥ ५२

शूलप्रोतस्य शैलाग्रात्पततस्तुङ्गतो द्विज ।
यद्युःखं देहिनो घोरं तस्मात् कोटिगुणं मम ॥ ५३

अथैमेधशतं कृत्वा गङ्गां स्नात्वा शतं समाः ।
न शुद्धिर्जायिते प्रायो मत्यापस्य गरीयसः ॥ ५४

किं करोमि क्व गच्छामि कं वा शरणमाश्रये ।
कस्त्रायते मां लोकेऽस्मिन् पतन्तीं नरकार्णवे ॥ ५५

त्वमेव मे गुरुब्रह्मस्त्वं माता त्वं पितासि च ।
उद्धरोद्धर मां दीनां त्वमेव शरणं गताम् ॥ ५६

सूत उवाच

इति सञ्जातनिर्वेदां पतितां चरणद्वये ।
उत्थाप्य कृपया धीमान् बभाषे ब्राह्मणः सहि ॥ ५७

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये चञ्चुलावैराग्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥
॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें चञ्चुलावैराग्यवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

चञ्चुलाकी प्रार्थनासे ब्राह्मणका उसे पूरा शिवपुराण सुनाना और समयानुसार शरीर
छोड़कर शिवलोकमें जा चञ्चुलाका पार्वतीजीकी सखी होना

ब्राह्मण उवाच

दिष्ट्या काले प्रबुद्धासि शिवानुग्रहतो वराम् ।
इमां शिवपुराणस्य श्रुत्वा वैराग्यवत्कथाम् ॥ १
मा भैषीद्विजपत्रि त्वं शिवस्य शरणं व्रज ।

मुझे बाँधेंगे, तब मैं कैसे धीरज धारण कर सकूँगी ?
नरकमें जब मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े किये जायेंगे,
उस समय विशेष दुःख देनेवाली उस महायातनाको
मैं वहाँ कैसे सहूँगी ? ॥ ४७—४९ ॥

दुःख और शोकसे ग्रस्त होकर मैं दिनमें सहज
इन्द्रियव्यापार और रात्रिमें नींद कैसे प्राप्त कर सकूँगी ?
हाय ! मैं मारी गयी ! मैं जल गयी ! मेरा हृदय विदीर्ण हो
गया और मैं सब प्रकारसे नष्ट हो गयी; क्योंकि मैं हर
तरहसे पापमें ही डूबी रही हूँ ॥ ५०-५१ ॥

हाय विधाता ! मुझ पापिनीको आपने हठात्
ऐसी दुर्बुद्धि क्यों दे दी, जो सभी प्रकारका सुख
देनेवाले स्वधर्मसे दूर कर देती है ! हे द्विज ! शूलसे
बिंधा हुआ व्यक्ति ऊँचे पर्वत-शिखरसे गिरनेपर जैसा
घोर कष्ट पाता है, उससे भी करोड़ गुना कष्ट मुझे
है । सैकड़ों अश्वमेधयज्ञ करके अथवा सैकड़ों वर्षोंतक
गंगास्नान करनेपर भी मेरे घोर पापोंकी शुद्धि सम्भव
नहीं दीखती । मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किसका
आश्रय लूँ ? मुझ नरकगामिनीकी इस संसारमें कौन
रक्षा करेगा ? ॥ ५२—५५ ॥

हे ब्रह्मन् ! आप ही मेरे गुरु हैं, आप ही माता और
आप ही पिता हैं । आपकी शरणमें आयी हुई मुझ दीन
अबलाका उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये ॥ ५६ ॥

सूतजी बोले—हे शौनक ! इस प्रकार खेद
और वैराग्यसे युक्त हुई चंचुला उस ब्राह्मणके चरणोंमें
गिर पड़ी । तब उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने कृपापूर्वक उसे
उठाकर इस प्रकार कहा ॥ ५७ ॥

ब्राह्मण बोले—सौभाग्यकी बात है कि भगवान्
शंकरकी कृपासे शिवपुराणकी इस वैराग्ययुक्त तथा
श्रेष्ठ कथाको सुनकर तुम्हें समयपर चेत हो गया है ।
हे ब्राह्मणपत्नी ! तुम डरो मत, भगवान् शिवकी शरणमें

शिवानुग्रहतः सर्वं पापं सद्यो विनश्यति ॥ २

वक्ष्यामि ते परं वस्तु शिवकीर्तिसमन्वितम् ।

भविष्यति गतिर्येन सर्वदा ते सुखावहा ॥ ३

सत्कथाश्रवणादेव जाता ते मतिरीदृशी ।

पश्चात्तापान्विता शुद्धा वैराग्यं विषयेषु च ॥ ४

पश्चात्तापः पापकृतां पापानां निष्कृतिः परा ।

सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपापविशोधनम् ॥ ५

पश्चात्तापेनैव शुद्धिः प्रायश्चित्तं करोति सः ।

यथोपदिष्टं सद्भिर्हि सर्वपापविशोधनम् ॥ ६

प्रायश्चित्तमधीकृत्य विधिवन्निर्भयः पुमान् ।
न याति सुगतिं प्रायः पश्चात्तापी न संशयः ॥ ७

एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणतो यथा ।
जायते चित्तशुद्धिर्हि न तथान्यैरुपायतः ॥ ८

शोध्यमानं दर्पणं हि यथा भवति निर्मलम् ।
तथैतत्कथया चेतो विशुद्धिं यात्यसंशयम् ॥ ९

विशुद्धे चेतसि शिवो नृणां तिष्ठति साम्बिकः ।
ततो याति विशुद्धात्मा साम्बशाम्भोः परं पदम् ॥ १०

अतः सर्वस्य वर्गस्यैतत्कथासाधनं मतम् ।
एतदर्थं महादेवो निर्ममे त्वाग्रहादिमाम् ॥ ११

कथया सिद्ध्यति ध्यानमनया गिरिजापतेः ।
ध्यानाज्ञानं परं तस्मात् कैवल्यं भवति ध्रुवम् ॥ १२

असिद्धशङ्करध्यानः कथामेव शृणोति यः ।
स प्राप्यान्यभवे ध्यानं शाम्भोर्याति परां गतिम् ॥ १३

एतत्कथाश्रवणतः कृत्वा ध्यानमुमापतेः ।
ते पश्चात्तापिनः पापा बहवः सिद्धिमागताः ॥ १४

जाओ। शिवकी कृपासे सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। मैं तुमसे भगवान् शिवकी कीर्तिकथासे युक्त उस परम वस्तुका वर्णन करूँगा, जिससे तुम्हें सदा सुख देनेवाली उत्तम गति प्राप्त होगी ॥ १—३ ॥

शिवकी उत्तम कथा सुननेसे ही तुम्हारी बुद्धि इस तरह पश्चात्तापसे युक्त एवं शुद्ध हो गयी है; साथ ही तुम्हारे मनमें विषयोंके प्रति वैराग्य हो गया है। पश्चात्ताप ही पाप करनेवाले पापियोंके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। सत्पुरुषोंने सबके लिये पश्चात्तापको ही समस्त पापोंका शोधक बताया है। पश्चात्तापसे ही पापोंकी शुद्धि होती है। जो पश्चात्ताप करता है, वही वास्तवमें पापोंका प्रायश्चित्त करता है; क्योंकि सत्पुरुषोंने समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये जैसे प्रायश्चित्तका उपदेश किया है, वह सब पश्चात्तापसे सम्पन्न हो जाता है ॥ ४—६ ॥

जो पुरुष विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करके निर्भय हो जाता है, पर अपने कुकर्मके लिये पश्चात्ताप नहीं करता, उसे प्रायः उत्तम गति नहीं प्राप्त होती। परंतु जिसे अपने कुकृत्यपर हार्दिक पश्चात्ताप होता है, वह अवश्य उत्तम गतिका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है। इस शिवपुराणकी कथा सुननेसे जैसी चित्तशुद्धि होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती ॥ ७-८ ॥

जैसे दर्पण साफ करनेपर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार इस शिवपुराणकी कथासे चित्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। मनुष्योंके शुद्ध चित्तमें जगदम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। इससे वह विशुद्धात्मा पुरुष श्रीसाम्बसदाशिवके परम पदको प्राप्त होता है ॥ ९-१० ॥

इस प्रकार यह कथारूपी साधन सभी प्राणियोंके लिये उपकारी है और इसी कारण महादेवजीने इसको आग्रहपूर्वक प्रकट किया है। इस कथासे भगवान् उमापतिका ध्यान सिद्ध हो जाता है। उस ध्यानसे परम ज्ञान और उससे मोक्षकी प्राप्ति निश्चय ही होती है। भगवान् शंकरके ध्यानमें मग्न हुए बिना भी यदि कोई इस कथाको मात्र सुनता है, वह दूसरे जन्ममें भगवान्के ध्यानको सिद्धकर परमपदको पा लेता है। इस कथाके श्रवणसे भगवान् शंकरके ध्यानको प्राप्तकर पश्चात्ताप करनेवाले पापी पुरुष सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं ॥ ११—१४ ॥

सर्वेषां श्रेयसां बीजं सत्कथाश्रवणं नृणाम् ।
यथावर्त्म समाराध्यं भवबन्धगदापहम् ॥ १५

कथाश्रवणतः शम्भोर्मननाच्च ततो हृदा ।
निदिध्यासनतश्चैव चित्तशुद्धिर्भवत्यलम् ॥ १६

अतो भक्तिमहेशस्य पुत्राभ्यां भवति ध्रुवम् ।
तदनुग्रहतो दिव्या ततो मुक्तिर्न संशयः ॥ १७

तद्विहीनः पशुज्ञेयो मायाबन्धनसक्तधीः ।
संसारबन्धनान्नैव मुक्तो भवति स ध्रुवम् ॥ १८

अतो हि द्विजपतिं त्वं विषयेभ्यो निवृत्तधीः ।
शृणु शम्भोः कथां चैतां भक्त्या परमपावनीम् ॥ १९

शृणवन्त्याः सत्कथामेतां शङ्करस्य परात्मनः ।
शुद्धिमेष्यति चेतस्ते ततो मुक्तिमवाप्यसि ॥ २०

ध्यायतः शिवपादाब्जं चेतसा निर्मलेन वै ।
एकेन जन्मना मुक्तिः सत्यं सत्यं वदाप्यहम् ॥ २१

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स द्विजवरो वरः शैवः कृपार्द्धधीः ।
तूष्णीं बभूव शुद्धात्मा शिवध्यानपरायणः ॥ २२

अथ बिन्दुगपली सा चञ्चुलाह्वा प्रसन्नधीः ।
इत्युक्ता तेन विप्रेण समासीद्बाष्पलोचना ॥ २३

पपातारं द्विजेन्द्रस्य पादयोस्तस्य हृष्टधीः ।
चञ्चुला साञ्जलिः सा च कृतार्थास्मीत्यभाषत ॥ २४

अथ सोत्थाय सातङ्गा साञ्जलिर्गद्दाक्षरम् ।
तमुवाच महाशैवं द्विजं वैराग्ययुक्तं सुधीः ॥ २५

इस उत्तम कथाका श्रवण समस्त मनुष्योंके लिये कल्याणका बीज है। अतः यथोचित (शास्त्रोक्त) मार्गसे इसकी आराधना अथवा सेवा करनी चाहिये। यह कथा-श्रवण भव-बन्धनरूपी रोगका नाश करनेवाला है। भगवान् शिवकी कथाको सुनकर फिर अपने हृदयमें उसका मनन एवं निदिध्यासन करनेसे पूर्णतया चित्तशुद्धि हो जाती है। चित्तशुद्धि होनेसे महेश्वरकी भक्ति अपने दोनों पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य)-के साथ निश्चय ही प्रकट होती है। तत्पश्चात् महेश्वरके अनुग्रहसे दिव्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। जो शिवभक्तिसे वंचित है, उसे पशु समझना चाहिये; क्योंकि उसका चित्त मायाके बन्धनमें आसक्त है। वह निश्चय ही संसारबन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता ॥ १५—१८ ॥

हे ब्राह्मणपत्नी! इसलिये तुम विषयोंसे मनको हटा लो और भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी इस परम पावन कथाको सुनो। परमात्मा शंकरकी इस कथाको सुननेसे तुम्हारे चित्तकी शुद्धि होगी और उससे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। निर्मल चित्तसे भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करनेवालेकी एक ही जन्ममें मुक्ति हो जाती है—यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ ॥ १९—२१ ॥

सूतजी बोले—शौनक! इतना कहकर वे श्रेष्ठ शिवभक्त ब्राह्मण मौन हो गये। उनका हृदय करुणासे आर्द्र हो गया था। वे शुद्धचित्त महात्मा भगवान् शिवके ध्यानमें मग्न हो गये ॥ २२ ॥

तदनन्तर बिन्दुगकी पत्नी चंचुला मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। ब्राह्मणका उक्त उपदेश सुनकर उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये थे। वह ब्राह्मणपत्नी चंचुला हर्षित हृदयसे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़ी और हाथ जोड़कर बोली—‘मैं कृतार्थ हो गयी’ ॥ २३-२४ ॥

तत्पश्चात् उठकर वैराग्ययुक्त तथा उत्तम बुद्धिवाली वह स्त्री, जो अपने पापोंके कारण आतंकित थी, उन महान् शिवभक्त ब्राह्मणसे हाथ जोड़कर गदगद वाणीमें कहने लगी ॥ २५ ॥

चञ्चुलोवाच

ब्रह्मन् शैववर स्वामिन् धन्यस्त्वं परमार्थदृक् ।
परोपकारनिरतो वर्णनीयः सुसाधुषु ॥ २६

उद्धरोद्धर मां साधो पतन्तीं नरकार्णवे ।
श्रुत्वा यां सुकथां शैवीं पुराणार्थविजृभिताम् ॥ २७

विरक्तधीरहं जाता विषयेभ्यश्च सर्वतः ।
सुश्रद्धा महती ह्येतत्पुराणश्रवणेऽधुना ॥ २८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा साञ्जलिः सा वै सम्प्राप्य तदनुग्रहम् ।
तत्पुराणं श्रोतुकामातिष्ठत्तसेवने रता ॥ २९

अथ शैववरो विप्रस्तस्मिन्नेव स्थले सुधीः ।
सत्कथां श्रावयामास तत्पुराणस्य तां स्त्रियम् ॥ ३०

इत्थं तस्मिन् महाक्षेत्रे तस्मादेव द्विजोत्तमात् ।
कथां शिवपुराणस्य सा शुश्राव महोत्तमाम् ॥ ३१
भक्तिज्ञानविरागाणां वर्धिनीं मुक्तिदायिनीम् ।
बभूव सुकृतार्था सा श्रुत्वा तां सत्कथां पराम् ॥ ३२
सदगुरोस्तस्य कृपया शुद्धचित्ता च सा द्रुतम् ।
शिवानुग्रहतः शम्भोः रूपध्यानमवाप ह ॥ ३३

इत्थं सदगुरुमाश्रित्य सा प्राप्तशिवसन्मतिः ।
दध्यौ मुहुर्मुहुः शम्भोश्चिदानन्दमयं वपुः ॥ ३४

स्नात्वा तीर्थजले नित्यं जटावल्कलधारिणी ।
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गी रुद्राक्षकृतभूषणा ॥ ३५

शिवनामजपासक्ता वाग्यता मितभोजना ।
गुरुपदिष्टमार्गेण सा शिवं समतोषयत् ॥ ३६

एवं तस्याश्चञ्चुलायाः कुर्वन्त्या ध्यानमुत्तमम् ।
बहुकालो व्यतीयाय शम्भोस्तत्रैव शौनक ॥ ३७

चञ्चुला बोली—हे ब्रह्मन्! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे स्वामिन्! आप धन्य हैं, परमार्थदर्शी हैं और सदा परोपकारमें लगे रहते हैं, इसलिये आप श्रेष्ठ साधु पुरुषोंमें प्रशंसाके योग्य हैं। हे साधो! मैं नरकके समुद्रमें गिर रही हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। पौराणिक अर्थतत्त्वसे सम्पन्न जिस सुन्दर शिवपुराणकी कथाको सुनकर मेरे मनमें सम्पूर्ण विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, उसी इस शिवपुराणको सुननेके लिये इस समय मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा हो रही है ॥ २६—२८ ॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर हाथ जोड़ उनका अनुग्रह पाकर चञ्चुला उस शिवपुराणकी कथाको सुननेकी इच्छा मनमें लिये उन ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तत्पर हो वहाँ रहने लगी ॥ २९ ॥

तदनन्तर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और शुद्ध बुद्धिवाले उन ब्राह्मणदेवताने उसी स्थानपर उस स्त्रीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनायी ॥ ३० ॥

इस प्रकार उस [गोकर्ण नामक] महाक्षेत्रमें उन्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मणसे उसने शिवपुराणकी वह परम उत्तम कथा सुनी, जो भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बढ़ानेवाली तथा मुक्ति देनेवाली है। उस परम उत्तम कथाको सुनकर वह ब्राह्मणपत्नी अत्यन्त कृतार्थ हो गयी ॥ ३१-३२ ॥

उन सदगुरुकी कृपासे उसका चित्त शीघ्र ही शुद्ध हो गया, भगवान् शिवके अनुग्रहसे उसके हृदयमें शिवके सगुणरूपका चिन्तन होने लगा ॥ ३३ ॥

इस प्रकार सदगुरुका आश्रय लेकर उसने भगवान् शिवमें लगी रहनेवाली उत्तम बुद्धि पाकर शिवके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका बारंबार चिन्तन आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

वह प्रतिदिन तीर्थके जलमें स्नान करके जटा और वल्कल धारण करने लगी तथा समूची देहमें भस्म लगाकर रुद्राक्षके आभूषण धारण करने लगी। वह भगवान् शिवके नामजपमें लगी रहती थी, संयमित वाणी और अल्पाहार करते हुए गुरुके बताये मार्गसे वह शिवजीको प्रसन्न करने लगी। हे शौनक! इस प्रकार शम्भुका उत्तम ध्यान करते हुए उस चञ्चुलाका बहुत-सा समय बीत गया ॥ ३५—३७ ॥

अथ कालेन पूर्णे भक्तित्रिकसमन्विता ।
समुत्सर्ज देहं स्वमनायासेन चञ्चुला ॥ ३८

विमानं द्रुतमायान्तं प्रेषितं त्रिपुरारिणा ।
दिव्यं स्वगणसंयुक्तं नानाशोभासमन्वितम् ॥ ३९

अथ तत्र समारूढा महेशानुचरैर्वरैः ।
नीता शिवपुरीं सद्यो ध्वस्तसर्वमला च सा ॥ ४०

दिव्यरूपधरा दिव्या दिव्यावयवशालिनी ।
चन्द्रार्थशेखरा गौरी विलसदिव्यभूषणा ॥ ४१

गत्वा तत्र महादेवं सा ददर्श त्रिलोचनम् ।
विष्णुब्रह्मादिभिर्देवैः सेव्यमानं सनातनम् ॥ ४२

गणेशभृङ्गिनन्दीशवीरभद्रेश्वरादिभिः ।
उपास्यमानं सद्ब्रक्त्या कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ ४३

नीलग्रीवं पञ्चवक्त्रं त्र्यम्बकं चन्द्रशेखरम् ।
वामाङ्गे बिभ्रतं गौरीं विद्युत्पुञ्जसमप्रभाम् ॥ ४४

कर्पूरगौरं गौरीशं सर्वालङ्कारधारिणम् ।
सितभस्मलसद्देहं सितवस्त्रं महोज्ज्वलम् ॥ ४५

दृष्ट्वैवं शङ्करं नारी सा मुमोदाति चञ्चुला ।
सुसम्प्रमान्महाप्रीता प्रणनाम पुनः पुनः ॥ ४६

सञ्चलिः सा मुदा प्रेम्णा सन्तुष्टा च विनीतका ।
आनन्दाश्रुजलैर्युक्ता रोमहर्षसमन्विता ॥ ४७

अथ सा वै करुणया पार्वत्या शङ्करेण च ।
समानीतोपकण्ठं हि सुदृष्ट्या च विलोकिता ॥ ४८

तत्पश्चात् समयके पूर्ण होनेपर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हुई चंचुलाने अपने शरीरको बिना किसी कष्टके त्याग दिया ॥ ३८ ॥

इतनेमें ही त्रिपुरशत्रु भगवान् शिवका भेजा हुआ एक दिव्य विमान द्रुत गतिसे वहाँ पहुँचा, जो उनके अपने गणोंसे संयुक्त और भाँति-भाँतिके शोभा साधनोंसे सम्पन्न था। चंचुला उस विमानपर आरूढ़ हुई और भगवान् शिवके श्रेष्ठ पार्षदोंने उसे तत्काल शिवपुरीमें पहुँचा दिया। उसके सारे मल धुल गये थे। वह दिव्यरूपधारिणी दिव्यांगना हो गयी थी। उसके दिव्य अवयव उसकी शोभा बढ़ाते थे। मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण किये वह गौरांगी देवी शोभाशाली दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थी ॥ ३९—४१ ॥

वहाँ पहुँचकर उसने त्रिनेत्रधारी महादेवजीको देखा। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता उन सनातन शिवकी सेवा कर रहे थे। गणेश, भृंगी, नन्दीश, वीरभद्रेश्वर आदि गण उत्तम भक्तिके साथ उनकी उपासना कर रहे थे। उनकी अंगकान्ति करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी। कण्ठमें नील चिह्न शोभा पाता था। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। मस्तकपर अर्धचन्द्राकार मुकुट शोभा देता था। उन्होंने अपने वामांगमें गौरी देवीको बिठा रखा था, जो विद्युत्-पुंजके समान प्रकाशित थीं। गौरीपति महादेवजीकी कान्ति कपूरके समान गौर थी। उन्होंने सभी अलंकार धारण कर रखे थे, उनका सारा शरीर श्वेत भस्मसे भासित था। शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। वे अत्यन्त उज्ज्वल वर्णके थे ॥ ४२—४५ ॥

इस प्रकार परम उज्ज्वल भगवान् शंकरका दर्शन करके वह ब्राह्मणपत्नी चंचुला बहुत प्रसन्न हुई। अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर उसने बड़ी उतावलीके साथ भगवान् को बारंबार प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर वह बड़े प्रेम, आनन्द और सन्तोषसे युक्त हो विनीतभावसे खड़ी हो गयी। उसके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुओंकी अविरल धारा बहने लगी तथा सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो गया। उस समय भगवती पार्वती और भगवान् शंकरने उसे बड़ी करुणाके साथ अपने पास बुलाया और सौम्य दृष्टिसे उसकी ओर देखा। पार्वतीजीने तो

पार्वत्या सा कृता प्रीत्या स्वसखी दिव्यरूपिणी ।
दिव्यसौख्यान्विता तत्र चञ्चुला बिन्दुग्रिया ॥ ४९

तस्मिल्लोके परानन्दधनज्योतिषि शाश्वते ।
लब्ध्वा निवासमचलं लेभे सुखमनाहतम् ॥ ५०

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये चञ्चुलासद्गतिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें चञ्चुलासद्गतिवर्णनं नामक चाँथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

चंचुलाके प्रयत्नसे पार्वतीजीकी आज्ञा पाकर तुम्बुरुका विन्ध्यपर्वतपर शिवपुराणकी
कथा सुनाकर बिन्दुगका पिशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन
दोनों दम्पतीका शिवधाममें सुखी होना

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग धन्यस्त्वं शिवसक्तधीः ।
श्रावितेयं कथास्माकमद्भुता भक्तिवर्धिनी ॥ १

तत्र गत्वा किं चकार चञ्चुला प्राप्तसद्गतिः ।
तत् त्वं वद विशेषेण तत्पतेश्च महामते ॥ २

सूत उवाच

सा कदाचिदुमां देवीमुपगम्य प्रणम्य च ।
सुतुष्टाव करौ बद्ध्वा परमानन्दसम्प्लुता ॥ ३

चञ्चुलोवाच

गिरिजे स्कन्दमातस्त्वं सेविता सर्वदा नरैः ।
सर्वसौख्यप्रदे शम्भुप्रिये ब्रह्मस्वरूपिणि ॥ ४

विष्णुब्रह्मादिभिस्सेव्या सगुणा निर्गुणापि च ।
त्वमाद्या प्रकृतिस्मूक्षमा सच्चिदानन्दरूपिणी ॥ ५

सृष्टिस्थितिलयकरी त्रिगुणा त्रिसुरालया ।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां सुप्रतिष्ठाकरा परा ॥ ६

सूत उवाच

इति स्तुत्वा महेशीं तां चञ्चुला प्राप्तसद्गतिः ।
विरराम नतस्कन्धा प्रेमपूर्णश्रुलोचना ॥ ७

दिव्यरूपधारिणी बिन्दुग्रिया चंचुलाको प्रेमपूर्वक
अपनी सखी बना लिया । वह उस परमानन्दधन
ज्योतिःस्वरूप सनातनधाममें अविचल निवास पाकर
दिव्य सौख्यसे सम्पन्न हो अक्षय सुखका अनुभव
करने लगी ॥ ४६—५० ॥

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी ! आप धन्य हैं, आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है । आपने कृपापूर्वक यह शिवभक्तिको बढ़ानेवाली अद्भुत कथा हमें सुनायी । हे महामते ! सद्गति प्राप्त करनेके बाद वहाँ जाकर चंचुलाने क्या किया और उसके पतिका क्या हुआ; यह सब वृत्तान्त विस्तारसे हमें बताइये ॥ १-२ ॥

सूतजी बोले—हे शौनक ! एक दिन परमानन्दमें निमग्न हुई चंचुलाने उमादेवीके पास जाकर प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर वह उनकी स्तुति करने लगी ॥ ३ ॥

चंचुला बोली—हे गिरिराजनन्दिनी ! हे स्कन्दमाता ! मनुष्योंने सदा आपकी सेवा की है । समस्त सुखोंको देनेवाली हे शम्भुप्रिये ! हे ब्रह्मस्वरूपिणि ! आप विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा सेव्य हैं । आप ही सगुणा और निर्गुणा भी हैं तथा आप ही सूक्ष्मा सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी आद्या प्रकृति हैं । आप ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली हैं । तीनों गुणोंका आश्रय भी आप ही हैं । ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीनों देवताओंका आवास-स्थान तथा उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करनेवाली पराशक्ति आप ही हैं ॥ ४—६ ॥

सूतजी बोले—हे शौनक ! जिसे सद्गति प्राप्त हो चुकी थी, वह चंचुला इस प्रकार महेश्वरपत्नी उमाकी स्तुति करके सिर झुकाये चुप हो गयी । उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये थे ॥ ७ ॥

ततः सा करुणाविष्टा पार्वती शङ्करप्रिया ।
तामुवाच महाप्रीत्या चञ्चुलां भक्तवत्सला ॥ ८

पार्वत्युवाच

चञ्चुले सखि सुप्रीतानया स्तुत्यास्मि सुन्दरि ।
किं याचसे वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव ॥ ९

सूत उवाच

इत्युक्ता सा गिरिजया चञ्चुला सुप्रणम्य ताम् ।
पर्यपृच्छत सुप्रीत्या साञ्चलिन्तमस्तका ॥ १०

चञ्चुलोवाच

मम भर्ताधुना क्वास्ते नैव जानामि तद्गतिम् ।
तेन युक्ता यथाहं वै भवामि गिरिजेऽनघे ॥ ११

तथैव कुरु कल्याणि कृपया दीनवत्सले ।
महादेवि महेशानि भर्ता मे वृषलीपतिः ।
मत्तः पूर्वं मृतः पापी न जाने कां गतिं गतः ॥ १२

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याशचञ्चुलाया हि पार्वती ।
प्रत्युवाच सुसम्प्रीत्या गिरिजा नयवत्सला ॥ १३

गिरिजोवाच

सुते भर्ता बिन्दुगाहो महापापी दुराशयः ।
वेश्याभोगी महामूढो मृत्वा स नरकं गतः ॥ १४

भुक्त्वा नरकदुःखानि विविधान्यमिताः समाः ।
पापशेषेण पापात्मा विन्ध्ये जातः पिशाचकः ॥ १५

इदानीं स पिशाचोऽस्ति नानाक्लेशसमन्वितः ।
तत्रैव वातभुगदुष्टः सर्वकष्टवहः सदा ॥ १६

सूत उवाच

इति गौर्या वचः श्रुत्वा चञ्चुला सा शुभव्रता ।
पतिदुःखेन महता दुःखितासीत्तदा किल ॥ १७

समाधाय ततश्चित्तं सुप्रणम्य महेश्वरीम् ।
पुनः पप्रच्छ सा नारी हृदयेन विदूयता ॥ १८

तब करुणासे भरी हुई शंकरप्रिया भक्तवत्सला पार्वतीदेवी चंचुलाको सम्बोधित करके बड़े प्रेमसे इस प्रकार कहने लगीं— ॥ ८ ॥

पार्वती बोलीं

हे सखी चंचुले ! हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारी की हुई इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ । बोलो, क्या वर माँगती हो ? तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है ॥ ९ ॥

सूतजी बोले

पार्वतीके इस प्रकार कहनेपर चंचुला उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर नतमस्तक हो प्रेमपूर्वक पूछने लगी— ॥ १० ॥

चंचुला बोली

हे निष्ठाप गिरिराजकुमारी ! मेरे पति बिन्दुग इस समय कहाँ हैं, उनकी कैसी गति हुई है—यह मैं नहीं जानती ! कल्याणमयी दीनवत्सले ! मैं अपने उन पतिदेवसे जिस प्रकार संयुक्त हो सकूँ, कृपा करके वैसा ही उपाय कीजिये । हे महेश्वरि ! हे महादेवि ! मेरे पति एक शूद्रजातीय वेश्याके प्रति आसक्त थे और पापमें ही डूबे रहते थे । उनकी मृत्यु मुझसे पहले ही हो गयी थी । वे न जाने किस गतिको प्राप्त हुए हैं ॥ ११-१२ ॥

सूतजी बोले

चंचुलाका यह वचन सुनकर नीतिवत्सला हिमालयपुत्री देवी पार्वतीने अत्यन्त प्रेमपूर्वक यह उत्तर दिया— ॥ १३ ॥

गिरिजा बोलीं

हे सुते ! तुम्हारा बिन्दुग नामवाला पति बड़ा पापी था । उसका अन्तःकरण बड़ा ही दूषित था । वेश्याका उपभोग करनेवाला वह महामूढ़ मरनेके बाद नरकमें पड़ा; अगणित वर्षोंतक नरकमें नाना प्रकारके दुःख भोगकर वह पापात्मा अपने शेष पापको भोगनेके लिये विन्ध्यपर्वतपर पिशाच हुआ है । इस समय वह पिशाचकी अवस्थामें ही है और नाना प्रकारके क्लेश उठा रहा है । वह दुष्ट वहीं वायु पीकर रहता है और सदा सब प्रकारके कष्ट सहता है ॥ १४-१६ ॥

सूतजी बोले

हे शौनक ! गौरीदेवीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली वह चंचुला उस समय पतिके महान् दुःखसे दुखी हो गयी । फिर मनको स्थिर करके उस ब्राह्मणपत्नीने व्यथित हृदयसे महेश्वरीको प्रणाम करके पुनः पूछा— ॥ १७-१८ ॥

चञ्चुलोवाच

महेश्वरि महादेवि कृपां कुरु ममोपरि।
समुद्धर पतिं मेऽद्य दुष्टकर्मकरं खलम्॥ १९

केनोपायेन मे भर्ता पापात्मा स कुबुद्धिमान्।
सद्गतिं प्राज्ञयादेवि तद्वदाशु नमोऽस्तु ते॥ २०

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः पार्वती भक्तवत्सला।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा चञ्चुलां स्वसखीं च ताम्॥ २१

पार्वत्युवाच

शृणुयाद्यदि ते भर्ता पुण्यां शिवकथां पराम्।
निस्तीर्थं दुर्गतिं सर्वा सद्गतिं प्राज्ञयादिति॥ २२

इति गौर्या वचः श्रुत्वामृताक्षरमथादरात्।
कृताञ्जलिनंतस्कन्था प्रणनाम पुनः पुनः॥ २३

तत्कथाश्रवणं भर्तुः सर्वपापविशुद्धये।
सद्गतिप्राप्तये चैव प्रार्थयामास तां तदा॥ २४

सूत उवाच

तया मुहुर्मुहुर्नार्या प्रार्थ्यमाना शिवप्रिया।
गौरी कृपान्वितासीत् सा महेशी भक्तवत्सला॥ २५

अथ तुम्बुरुमाहूय शिवसत्कीर्तिगायकम्।
प्रीत्या गन्धर्वराजं हि गिरिकन्येदमब्रवीत्॥ २६

गिरिजोवाच

हे तुम्बुरो शिवप्रीत मम मानसकारक।
सहानया विन्ध्यशैलं भद्रं ते गच्छ सत्वरम्॥ २७

आस्ते तत्र महाघोरः पिशाचोऽतिभयङ्करः।
तदवृत्तं शृणु सुप्रीत्यादितः सर्वं ब्रवीमि ते॥ २८

पुराभवे पिशाचः स बिन्दुगाहोऽभवद् द्विजः।
अस्या नार्याः पतिर्दुष्टो मत्सख्या वृषलीपतिः॥ २९

स्नानसन्ध्याक्रियाहीनोऽशौचः क्रोधविमूढधीः।
दुर्भक्षी सज्जनद्वेषी दुष्परिग्रहकारकः॥ ३०

चंचुला बोली—हे महेश्वरि! हे महादेवि!

मुझपर कृपा कीजिये और दूषित कर्म करनेवाले मेरे उस दुष्ट पतिका अब उद्धार कर दीजिये। हे देवि! कुत्सित बुद्धिवाले मेरे उस पापात्मा पतिको किस उपायसे उत्तम गति प्राप्त हो सकती है, यह शीघ्र बताइये। आपको नमस्कार है॥ १९-२०॥

सूतजी बोले—उसकी यह बात सुनकर भक्तवत्सला पार्वतीजी अपनी सखी चंचुलासे प्रसन्न होकर ऐसा कहने लगी॥ २१॥

पार्वतीजी बोली—तुम्हारा पति यदि शिवपुराणकी पुण्यमयी उत्तम कथा सुने तो सारी दुर्गतिको पार करके वह उत्तम गतिका भागी हो सकता है॥ २२॥

अमृतके समान मधुर अक्षरोंसे युक्त गौरीदेवीका यह वचन आदरपूर्वक सुनकर चंचुलाने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अपने पतिके समस्त पापोंकी शुद्धि तथा उत्तम गतिकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीसे यह प्रार्थना की कि मेरे पतिको शिवपुराण सुनानेकी व्यवस्था होनी चाहिये॥ २३-२४॥

सूतजी बोले—उस ब्राह्मणपत्नीके बारंबार प्रार्थना करनेपर शिवप्रिया गौरीदेवीको बड़ी दया आयी। उन भक्तवत्सला महेश्वरी गिरिराजकुमारीने भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले गन्धर्वराज तुम्बुरुको बुलाकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार कहा—॥ २५-२६॥

गिरिजा बोली—मेरे मनकी बातोंको जानकर मेरे अभीष्ट कार्योंको सिद्ध करनेवाले तथा शिवमें प्रीति रखनेवाले हे तुम्बुरो! [मैं तुमसे एक बात कहती हूँ।] तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी इस सखीके साथ शीघ्र ही विन्ध्यपर्वतपर जाओ। वहाँ एक महाघोर और भयंकर पिशाच रहता है। उसका वृत्तान्त तुम आरम्भसे ही सुनो। मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताती हूँ॥ २७-२८॥

पूर्वजन्ममें वह पिशाच बिन्दुग नामक ब्राह्मण था। वह मेरी इस सखी चंचुलाका पति था। परंतु वह दुष्ट वेश्यागामी हो गया। स्नान-सन्ध्या आदि नित्यकर्म छोड़कर वह अपवित्र रहने लगा। क्रोधके कारण उसकी बुद्धिपर मूढ़ता छा गयी थी। वह कर्तव्याकर्तव्यका विवेक नहीं



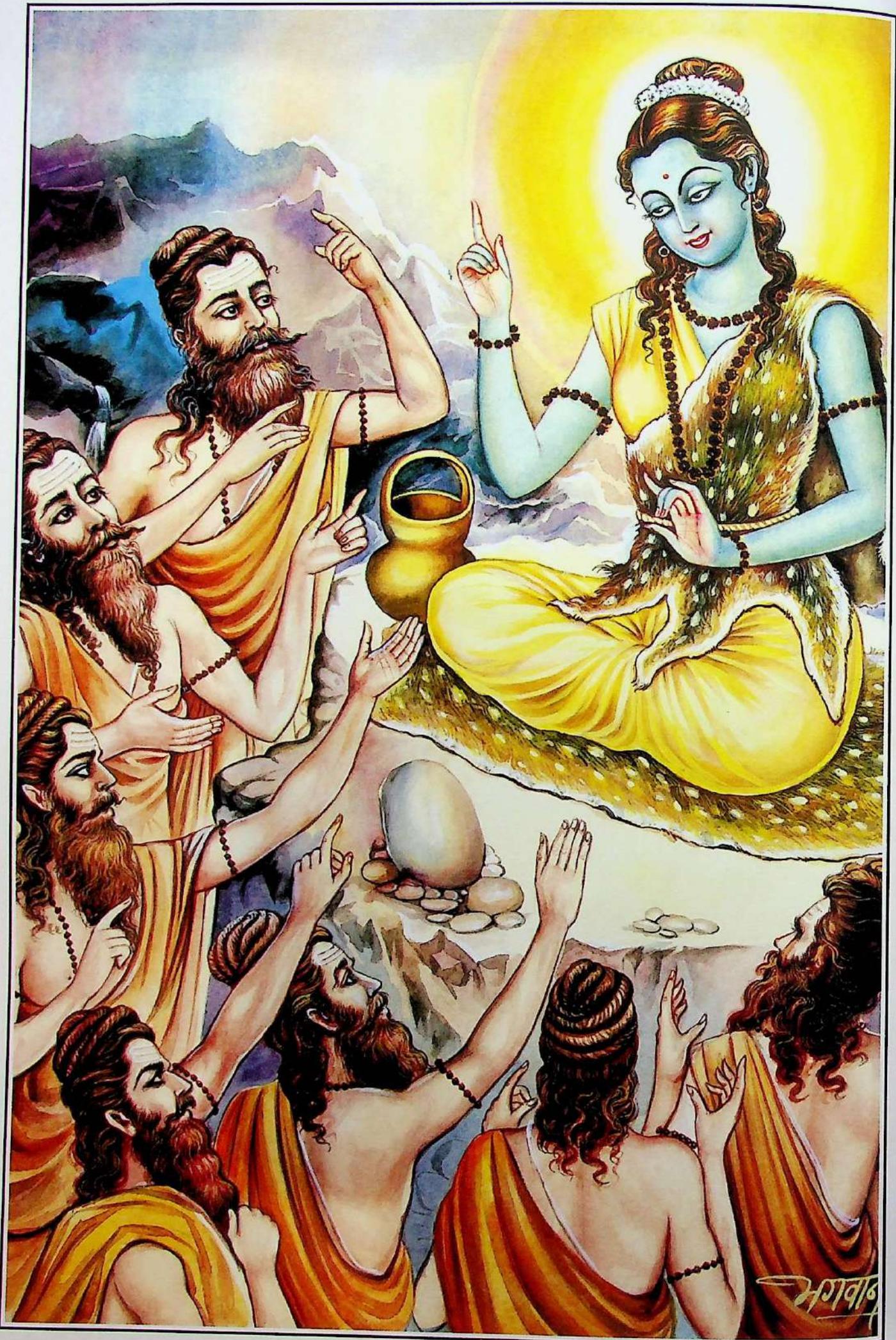
देवताओं और मुनियोंद्वारा शिवस्तुति

सती जीका आश्चर्य

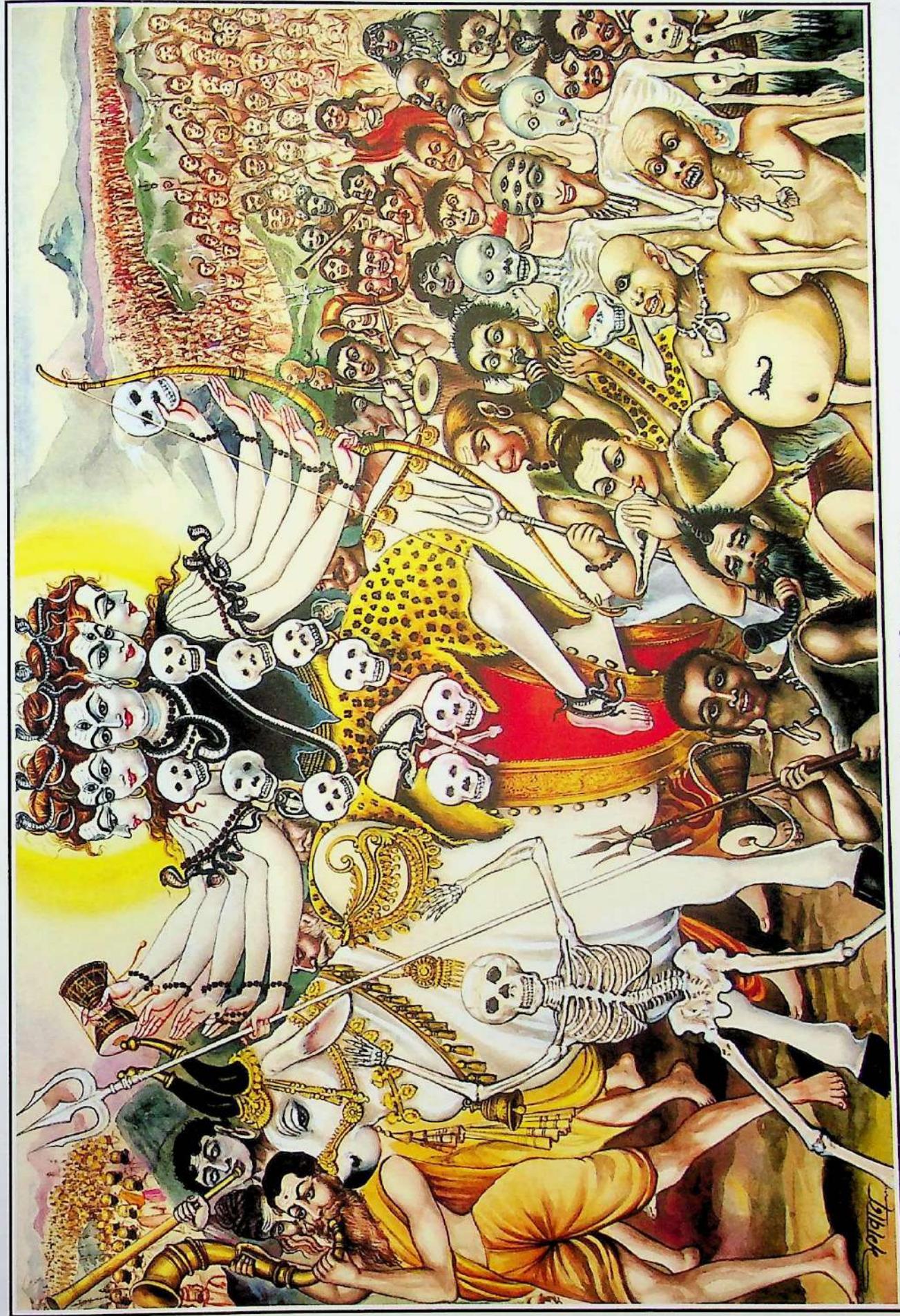


गुफामें गौरी-शंकर





पार्वतीजी और सप्तर्षि



श्रीशिवजीकी विकट बरात



मयूरवाहन भगवान् कार्तिकेय

B.K. Mitali



श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्राकट्य

वर्धुवेषमें भगवती पार्वती



वर्धुवेषमें भगवान् शिव



हिंसकः शस्त्रधारी च सव्यहस्तेन भोजनी।
दीनानां पीडकः क्रूरः परवेशमप्रदीपकः ॥ ३१

चाण्डालाभिरतो नित्यं वेश्याभोगी महाखलः।
स्वपत्नीत्यागकृत् पापी दुष्टसङ्गरतस्तदा ॥ ३२

तेन वेश्याकुसङ्गेन सुकृतं नाशितं महत्।
विज्ञलोभेन महिषी निर्भया जारिणी कृता ॥ ३३

आमृत्योः स दुराचारी कालेन निधनं गतः।
यथौ यमपुरं घोरं भोगस्थानं हि पापिनाम् ॥ ३४

तत्र भुक्त्वा स दुष्टात्मा नरकानि बहूनि च।
इदानीं स पिशाचोऽस्ति विन्ध्येऽद्रौ पापभुक् खलः ॥ ३५

तस्याग्रे परमां पुण्यां सर्वपापविनाशिनीम्।
दिव्यां शिवपुराणस्य कथां कथय यत्ततः ॥ ३६

द्रुतं शिवपुराणस्य कथाश्रवणतः परात्।
सर्वपापविशुद्धात्मा हास्यति प्रेततां च सः ॥ ३७

मुक्तं च दुर्गतेस्तं वै बिन्दुगं त्वं पिशाचकम्।
मदाज्ञया विमानेन समानय शिवान्तिकम् ॥ ३८

सूत उवाच

इत्यादिष्टो महेशान्या गन्धर्वेन्द्रश्च तुम्बुरुः।
मुमुदेऽतीव मनसि भाग्यं निजमर्वण्यत् ॥ ३९

आरुह्य सुविमानं स सत्या तत्प्रियया सह।
यथौ विन्ध्याचले सोऽरं यत्रास्ते नारदप्रियः ॥ ४०

तत्रापश्यत् पिशाचं तं महाकायं महाहनुम्।
प्रहसन्तं रुदन्तं च वल्लान्तं विकटाकृतिम् ॥ ४१

बलाज्जग्राह तं पाशैः पिशाचं चातिभीकरम्।
तुम्बुरुशिवसत्कीर्तिगायकश्च महाबली ॥ ४२

कर पाता था। अभक्ष्यभक्षण, सज्जनोंसे द्वेष और दूषित वस्तुओंका दान लेना—यही उसका स्वाभाविक कर्म बन गया था। वह अस्त्र-शस्त्र लेकर हिंसा करता, बायें हाथसे खाता, दीनोंको सताता और क्रूरतापूर्वक पराये घरोंमें आग लगा देता था। वह चाण्डालोंसे प्रेम करता और प्रतिदिन वेश्याके सम्पर्कमें रहता था। वह बड़ा दुष्ट था। उस पापीने अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया था और वह दुष्टोंके संगमें निरत रहता था ॥ २९—३२ ॥

उसने वेश्याके कुसंगसे अपने सारे पुण्य नष्ट कर लिये और धनके लोभसे अपनी पत्नीको निर्भय करके व्यभिचारिणी बना डाला ॥ ३३ ॥

वह मृत्युपर्यन्त दुराचारमें ही फँसा रहा। फिर समय आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी। वह पापियोंके भोगस्थान घोर यमपुरमें गया और वहाँ बहुत-से नरकोंको भोगकर वह दुष्टात्मा इस समय विन्ध्यपर्वतपर पिशाच बना हुआ है। वहाँपर वह दुष्ट पिशाच अपने पापोंका फल भोग रहा है ॥ ३४-३५ ॥

तुम उसके आगे यत्नपूर्वक शिवपुराणकी उस दिव्य कथाका प्रवचन करो, जो परम पुण्यमयी तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। उत्तम शिवपुराणकी कथाके श्रवणसे उसका हृदय शीघ्र ही समस्त पापोंसे शुद्ध हो जायगा और वह प्रेतयोनिका परित्याग कर देगा। दुर्गतिसे मुक्त होनेपर उस बिन्दुग नामक पिशाचको मेरी आज्ञासे विमानपर बिठाकर तुम भगवान् शिवके समीप ले आओ ॥ ३६—३८ ॥

सूतजी बोले—[हे शौनक!] महेश्वरी उमाके इस प्रकार आदेश देनेपर गन्धर्वराज तुम्बुरु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने भाग्यकी सराहना की। तत्पश्चात् उस पिशाचकी सती-साध्वी पत्नी चंचुलाके साथ विमानपर बैठकर नारदके प्रिय मित्र तुम्बुरु वेगपूर्वक विन्ध्याचल पर्वतपर गये, जहाँ वह पिशाच रहता था ॥ ३९-४० ॥

वहाँ उन्होंने उस पिशाचको देखा। उसका शरीर विशाल था और उसकी ठोड़ी बहुत बड़ी थी। वह कभी हँसता, कभी रोता और कभी उछलता था। उसकी आकृति बड़ी विकराल थी। भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले महाबली तुम्बुरुने उस अत्यन्त भयंकर पिशाचको बलपूर्वक पाशोंद्वारा बाँध लिया ॥ ४१-४२ ॥

अथो शिवपुराणस्य वाचनार्थं स तुम्बुरुः।
 निश्चित्य रचनां चक्रे महोत्सवसमन्विताम्॥ ४३
 पिशाचं तारितुं देव्याः शासनात्तुम्बुरुर्गतः।
 विन्ध्यं शिवपुराणं स हृद्रिं श्रावयितुं परम्॥ ४४
 इति कोलाहलो जातः सर्वलोकेषु वै महान्।
 तत्र तच्छ्रवणार्थाय ययुर्देवर्षयो द्रुतम्॥ ४५
 समाजस्तत्र परमोऽद्भुतश्चासीच्छुभावहः।
 तेषां शिवपुराणस्यागतानां श्रोतुमादरात्॥ ४६
 पिशाचमथ तं पाशैर्बद्ध्वा समुपवेश्य च।
 तुम्बुरुर्वल्लकीहस्तो जगौ गौरीपतेः कथाम्॥ ४७
 आरभ्य संहितामाद्यां सप्तमीसंहितावधि।
 स्पष्टं शिवपुराणं हि समाहात्म्यं समावदत्॥ ४८
 श्रुत्वा शिवपुराणं तु सप्तसंहितमादरात्।
 बभूवुः सुकृतार्थस्ते सर्वे श्रोतार एव हि॥ ४९
 स पिशाचो महापुण्यं श्रुत्वा शिवपुराणकम्।
 विधूय कलुषं सर्वं जहौ पैशाचिकं वपुः॥ ५०
 दिव्यरूपो बभूवाशु गौरवर्णः सितांशुकः।
 सर्वालङ्कारदीप्ताङ्गस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ॥ ५१
 दिव्यं दिव्यवपुर्भूत्वा तया स निजकान्तया।
 जगौ स्वयमपि श्रीमांश्चरितं पार्वतीपतेः॥ ५२
 तद्वधूमिति सन्दृष्ट्वा सर्वे देवर्षयश्च ते।
 बभूवुर्विस्मिताश्चित्ते परमानन्दसंयुताः॥ ५३
 सुकृतार्थं महेशस्य श्रुत्वा चरितमद्भुतम्।
 स्वं स्वं धाम ययुः प्रीत्या शंसन्तः शाङ्करं यशः॥ ५४
 बिन्दुगः सोऽपि दिव्यात्मा सुविमानस्थितः सुखी।
 स्वकान्तापाश्वर्गः श्रीमाञ्छुशुभेजतीव खस्थितः॥ ५५

तदनन्तर तुम्बुरुने शिवपुराणकी कथा बाँचनेके निश्चय करके महोत्सवयुक्त स्थान और मण्डा आदिकी रचना की। इतनेमें ही सम्पूर्ण लोकोंमें बड़े वेगसे यह प्रचार हो गया कि देवी पार्वतीकी आज्ञामें एक पिशाचका उद्धार करनेके उद्देश्यसे शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनानेके लिये तुम्बुरु विन्ध्यपर्वतपर गये हैं। तब तो उस कथाको सुननेके लोभसे बहुत-से देवता और ऋषि भी शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचे। आदरपूर्वक शिवपुराण सुननेके लिये आये हुए लोगोंका उस पर्वतपर बड़ा अद्भुत और कल्याणकारी समाज जुट गया ॥ ४३—४६ ॥

तत्पश्चात् तुम्बुरुने उस पिशाचको पाशोंसे बाँधकर आसनपर बिठाया और हाथमें वीणा लेकर गौरीपतिकी कथाका गान आरम्भ किया। माहात्म्यसहित पहली अर्थात् प्रथम संहितासे लेका सातवीं संहितातक शिवपुराणकी कथाका उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया ॥ ४७-४८ ॥

सात संहितावाले शिवपुराणका आदरपूर्वक श्रवण करके वे सभी श्रोता पूर्णतः कृतार्थ हो गये। उस परम पुण्यमय शिवपुराणको सुनकर उस पिशाचने अपने सारे पापोंको धोकर उस पैशाचिक शरीरको त्याग दिया। शीघ्र ही उसका रूप दिव्य हो गया। अंगकान्ति गौरवर्णकी हो गयी। शरीरपर श्वेत वस्त्र तथा सब प्रकारके पुरुषोचित आभूषण उसके अंगोंको उद्घासित करने लगे। वह त्रिनेत्रधारी चन्द्रशेखररूप हो गया ॥ ४९—५१ ॥

इस प्रकार दिव्य देहधारी होकर श्रीमान् बिन्दुग अपनी भार्या चंचुलाके साथ स्वयं भी पार्वतीपति भगवान् शिवके दिव्य चरित्रिका गुणगान करने लगा। उसकी स्त्रीको इस प्रकार दिव्य रूपसे सुशोभित देखकर वे सभी देवता और ऋषि बड़े विस्मित हुए; उनका चित्त परमानन्दसे परिपूर्ण हो गया। भगवान् महेश्वरका वह अद्भुत चरित्र सुनकर वे सभी श्रोता परम कृतार्थ हो प्रेमपूर्वक श्रीशिवका यशोगान करते हुए अपने-अपने धामको चले गये ॥ ५२—५४ ॥

दिव्यरूपधारी श्रीमान् बिन्दुग भी सुन्दर विमानपर अपनी प्रियतमाके पास बैठकर सुखपूर्वक आकाशमें स्थित हो परम शोभा पाने लगा ॥ ५५ ॥

अथ गायन् महेशस्य सुगुणान् सुप्रभोहरान्।
सतुम्बुर्जगामाशु सकान्तः शाङ्करं पदम्॥५६

सुसत्कृतो महेशेन पार्वत्या च स बिन्दुगः।
स्वगणश्च कृतः प्रीत्या साभवद्विरिजासखी॥५७

तस्मिंल्लोके परानन्दे घनज्योतिषि शाश्वते।
लब्ध्वा निवासमचलं लभेते परमं सुखम्॥५८

इत्येतत् कथितं पुण्यमितिहासमधापहम्।
शिवाशिवपरानन्दं निर्मलं भक्तिवर्धनम्॥५९

य इदं शृणुयाद्वक्त्या कीर्तयेद्वा समाहितः।
स भुक्त्वा विपुलान् भोगानन्ते मुक्तिमवाप्नुयात्॥६०

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये बिन्दुगसदगतिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥
॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें बिन्दुगसदगतिवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

शिवपुराणके श्रवणकी विधि

शौनक उवाच

सूत सूत महाप्राज्ञ व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते।
धन्यस्त्वं शैववर्योऽसि वर्णनीयमहद्गुणः॥ १
श्रीमच्छिवपुराणस्य श्रवणस्य विधिं वद।
येन सर्वं लभेच्छ्रोता सम्पूर्णं फलमुत्तमम्॥ २

सूत उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि सम्पूर्णफलहेतवे।
विधिं शिवपुराणस्य शौनक श्रवणे मुने॥ ३
दैवज्ञं च समाहूय सन्तोष्य च जनान्वितः।
मुहूर्तं शोधयेच्छुद्धं निर्विघ्नेन समाप्तये॥ ४

वार्ता प्रेष्या प्रयत्नेन देशे देशे च सा शुभा।
भविष्यति कथा शैवी आगन्तव्यं शुभार्थिभिः॥ ५

तदनन्तर महेश्वरके सुन्दर एवं मनोहर गुणोंका गान करता हुआ वह अपनी प्रियतमा तथा तुम्बुरुके साथ शीघ्र ही शिवधाममें जा पहुँचा। वहाँ भगवान् महेश्वर तथा पार्वती देवीने प्रसन्नतापूर्वक बिन्दुगका बड़ा सत्कार किया और उसे अपना गण बना लिया। उसकी पत्नी चंचुला पार्वतीजीकी सखी हो गयी। उस घनीभूतज्योतिःस्वरूप परमानन्दमय सनातनधाममें अविचल निवास पाकर वे दोनों दम्पती परम सुखी हो गये ॥ ५६—५८॥

यह उत्तम इतिहास मैंने आपको सुनाया, जो पापोंका नाश करनेवाला, उमा-महेश्वरको आनन्द देनेवाला, अत्यन्त पवित्र तथा उनमें भक्ति बढ़ानेवाला है। जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा एकाग्रचित्त होकर इसका पाठ करता है, वह अनेक सांसारिक सुखोंको भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ५९-६०॥

शौनकजी बोले—हे महाप्राज्ञ ! हे व्यासशिष्य ! हे सूतजी ! आपको नमस्कार है। आप धन्य हैं और शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। आपके महान् गुण वर्णन करनेयोग्य हैं। अब आप कल्याणमय शिवपुराणके श्रवणकी विधि बतलाइये, जिससे सभी श्रोताओंको सम्पूर्ण उत्तम फलकी प्राप्ति हो सके ॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे शौनक ! हे मुने ! अब मैं आपको सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये शिवपुराणके श्रवणकी विधि बता रहा हूँ ॥ ३॥

[सर्वप्रथम] किसी ज्योतिषीको बुलाकर दान-मानसे सन्तुष्ट करके अपने सहयोगी लोगोंके साथ बैठकर बिना किसी विष-बाधाके कथाकी समाप्ति होनेके उद्देश्यसे शुद्ध मुहूर्तका अनुसन्धान कराये। तदनन्तर प्रयत्नपूर्वक देश-देशमें—स्थान-स्थानपर यह शुभ सन्देश भेजे कि हमारे यहाँ शिवपुराणकी कथा होनेवाली है। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको [उसे सुननेके लिये] अवश्य पधारना चाहिये ॥ ४-५॥

दूरे हरिकथा: केचिद् दूरे शङ्करकीर्तनाः ।
स्त्रियः शूद्रादयो ये च बोधस्तेषां भवेद्यतः ॥ ६

देशे देशे शाम्भवा ये कीर्तनश्रवणोत्सुकाः ।
तेषामानयनं कार्यं तत्प्रकारार्थमादरात् ॥ ७

भविष्यति समाजोऽत्र साधूनां परमोत्सवः ।
पारायणे पुराणस्य शैवस्य परमाद्भुतः ॥ ८

श्रीमच्छिवपुराणाह्वरसपानाय चादरात् ।
आयान्त्वरं भवन्तश्च कृपया प्रेमतत्पराः ॥ ९

नावकाशो यदि प्रेम्णागन्तव्यं दिनमेककम् ।
सर्वथागमनं कार्यं दुर्लभा च क्षणस्थितिः ॥ १०

तेषामाह्वानमेवं हि कार्यं सविनयं मुदा ।
आगतानां च तेषां हि सर्वथा कार्यं आदरः ॥ ११

शिवालये च तीर्थे वा वने वापि गृहेऽथवा ।
कार्यं शिवपुराणस्य श्रवणस्थलमुत्तमम् ॥ १२

कार्यं संशोधनं भूमेलेपनं धातुमण्डनम् ।
विचित्रा रचना दिव्या महोत्सवपुरस्सरम् ॥ १३

गृहोपस्करमुदधृत्य निखिलं तदयोग्यकम् ।
एकान्ते गृहकोणे चादृश्ये यत्लान्निवेशयेत् ॥ १४

कर्तव्यो मण्डपोऽत्युच्चैः कदलीस्तम्भमण्डितः ।
फलपुष्पादिभिस्सम्यग्विष्वग्वैतानराजितः ॥ १५

चतुर्दिक्षु ध्वजारोपस्सपताकः सुशोभनः ।
सुभक्तिः सर्वथा कार्या सर्वानन्दविधायिनी ॥ १६

सङ्कल्प्यमासनं दिव्यं शङ्करस्य परात्मनः ।
वक्तुश्चापि तथा दिव्यमासनं सुखसाधनम् ॥ १७

कुछ लोग भगवान् श्रीहरिकी कथासे बहुत दूर पड़ गये हैं। कितने ही स्त्री, शूद्र आदि भगवान् शंकरके कथा-कीर्तनसे वंचित रहते हैं—उन सबके भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। देश-देशमें जो भगवान् शिवके भक्त हों तथा शिव-कथाके कीर्तन और श्रवणके लिये उत्सुक हों, उन सबके आदरपूर्वक बुलवाना चाहिये ॥ ६-७ ॥

[उन्हें कहलाना चाहिये कि] यहाँ सत्पुरुषोंके आनन्द देनेवाला समाज तथा अति अद्भुत उत्सव होगा, जिसमें शिवपुराणका पारायण होगा। श्रीशिवपुराणका रसमयी कथाका श्रवण करनेहेतु आपलोग प्रेमपूर्वक शीघ्र पधारनेकी कृपा करें। यदि समयका अभाव हो तो प्रेमपूर्वक एक दिनके लिये भी आइये। आपके निश्चय ही आना चाहिये; क्योंकि इस कथाके क्षणभरके लिये बैठनेका सौभाग्य भी दुर्लभ है। इस प्रकार विनय और प्रसन्नतापूर्वक श्रोताओंको निमन्त्रण देना चाहिये और आये हुए लोगोंका सब प्रकारसे आदर-सत्कार करना चाहिये ॥ ८—११ ॥

शिवमन्दिरमें, तीर्थमें, वनप्रान्तमें अथवा घरमें शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करना चाहिये ॥ १२ ॥

कथाभूमिको लीपकर शोधन करना चाहिये तथा धातु आदिसे उस स्थानको सुशोभित करना चाहिये। महोत्सवके साथ-साथ वहाँ अद्भुत तथा सुन्दर व्यवस्था कर लेनी चाहिये। कथाके लिये अनुपयोगी घरके साज-सामानको हटाकर घरके किसी एकान्त कोनेमें सुरक्षित रख देना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

केलेके खम्भोंसे सुशोभित एक ऊँचा कथामण्डप तैयार कराये। उसे सब ओर फल-पुष्प आदिसे तथा सुन्दर चँदोवेसे अलंकृत करे और चारों ओर ध्वजापताका लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजाकर सुन्दर शोभासम्पन्न बना दे। भगवान् शिवके प्रति सब प्रकारसे उत्तम भक्ति करनी चाहिये; क्योंकि वही सब तरहसे आनन्दका विधान करनेवाली है ॥ १५-१६ ॥

परमात्मा भगवान् शंकरके लिये दिव्य आसनका निर्माण करना चाहिये तथा कथा-वाचकके लिये भी एक ऐसा दिव्य आसन बनाना चाहिये, जो उनके लिये सुखद हो सके ॥ १७ ॥

श्रोतृणां कल्पनीयानि सुस्थलानि यथार्हतः ।
अन्येषां च स्थलान्येव साधारणतया मुने ॥ १८

विवाहे यादृशं चित्तं तादृशं कार्यभेव हि ।
अन्या चिन्ता विनिवार्या सर्वा शौनक लौकिकी ॥ १९

उदझमुखो भवेद्वक्ता श्रोता प्राग्वदनस्तथा ।
व्युत्क्रमः पादयोर्ज्ञेयो विरोधो नास्ति कश्चन ॥ २०
अथवा पूर्वदिग्ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ।
अथवा सम्मुखे वक्तुः श्रोतृणामाननं स्मृतम् ॥ २१
व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः ।
असमाप्तौ प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ २२

बालो युवाथ वृद्धो वा दरिद्रो वापि दुर्बलः ।
पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥ २३
नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ।
यस्य वक्त्रोद्भूता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ २४
गुरवः सन्ति बहवो जन्मतो गुणतश्च वै ।
परो गुरुः पुराणज्ञस्तेषां मध्ये विशेषतः ॥ २५

भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वावसीदताम् ।
यो ददाति परां मुक्तिं कोऽन्यस्तस्मात् परो गुरुः ॥ २६

पुराणज्ञः शुचिर्दक्षः शान्तो विजितमत्परः ।
साधुः कारुण्यवान् वाग्मी वदेत् पुण्यकथामिमाम् ॥ २७

आसूर्योदयमारभ्य सार्थत्रिप्रहरान्तकम् ।
कथा शिवपुराणस्य वाच्या सम्यक् सुधीमता ॥ २८

ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये चान्ये विजिगीषवः ।
तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत् कथाम् ॥ २९

हे मुने ! [नियमपूर्वक] कथा सुननेवाले श्रोताओंके लिये भी यथायोग्य सुन्दर स्थानोंकी व्यवस्था करनी चाहिये । अन्य लोगोंके लिये भी सामान्यरूपसे स्थान बनाने चाहिये ॥ १८ ॥

हे शौनकजी ! विवाहोत्सवमें जैसी उल्लासपूर्ण मनःस्थिति होती है, वैसी ही इस कथोत्सवमें रखनी चाहिये । सब प्रकारकी दूसरी लौकिक चिन्ताओंको भूल जाना चाहिये ॥ १९ ॥

वक्ता उत्तर दिशाकी ओर मुख करे तथा श्रोतागण पूर्व दिशाकी ओर मुख करके पालथी लगाकर बैठें । इस विषयमें भी कोई विरोध नहीं है कि पूज्य-पूजकके बीच पूर्व दिशा रहे अथवा वक्ताके सम्मुख श्रोताओंका मुख रहे—ऐसा कहा गया है ॥ २०-२१ ॥

पौराणिक वक्ता व्यासासनपर जबतक विराजमान रहें, तबतक प्रसंग-समाप्तिके पूर्व किसीको नमस्कार नहीं करना चाहिये । पुराणका विद्वान् वक्ता चाहे बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्र अथवा दुर्बल—जैसा भी हो, पुण्य चाहनेवालोंके लिये सदा वन्दनीय और पूज्य होता है ॥ २२-२३ ॥

जिसके मुखसे निकली हुई वाणी देहधारियोंके लिये कामधेनुके समान अभीष्ट फल देनेवाली होती है, उस पुराणवेत्ता वक्ताके प्रति तुच्छबुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये । संसारमें जन्म तथा गुणोंके कारण बहुत-से गुरु होते हैं, परंतु उन सबमें पुराणोंका जाता विद्वान् ही परम गुरु माना गया है ॥ २४-२५ ॥

करोड़ों योनियोंमें जन्म ले-लेकर दुःख भोगते हुए प्राणियोंको जो मुक्ति प्रदान करता है, उस [पुराणवक्ता]-से बड़ा दूसरा कौन गुरु हो सकता है ? ॥ २६ ॥

पुराणवेत्ता पवित्र, दक्ष, शान्त, ईर्ष्यापर विजय पानेवाला, साधु और दयालु होना चाहिये । ऐसा प्रवचनकुशल विद्वान् इस पुण्यमयी कथाको कहे । सूर्योदयसे आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् पुरुषको शिवपुराणकी कथा सम्यक् रीतिसे बाँचनी चाहिये ॥ २७-२८ ॥

जो धूर्ता, दुराचारी तथा दूसरेसे विवाद करनेवाले और प्रपञ्ची लोग हैं, उन कुटिलवृत्तिवाले लोगोंके सामने यह कथा नहीं कहनी चाहिये ।

न दुर्जनसमाकीर्णं न तु दस्युसमावृते ।
देशे न धूर्तसदने वदेत् पुण्यकथामिमाम् ॥ ३०

कथाविरामः कर्तव्यो मध्याहे हि मुहूर्तकम् ।
मलमूत्रोत्सर्जनार्थं तत्कथाकीर्तनान्नरैः ॥ ३१

वक्त्रा क्षौरं हि सङ्कार्यं दिनादर्वाग्वताप्तये ।
कार्यं संक्षेपतो नित्यकर्मं सर्वं प्रयत्नतः ॥ ३२

वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ।
पण्डितः संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥ ३३

कथाविघ्नविनाशार्थं गणनाथं प्रपूजयेत् ।
कथाधीशं शिवं भक्त्या पुस्तकं च विशेषतः ॥ ३४

कथां शिवपुराणस्य शृणुयादादरात्सुधीः ।
श्रोता सुविधिना शुद्धः शुद्धचित्तः प्रसन्नधीः ॥ ३५

अनेककर्मविभ्रान्तः कामादिषड्विकारवान् ।
स्त्रैणः पाखण्डवादी च वक्ता श्रोता न पुण्यभाक् ॥ ३६

लोकचिन्तां धनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च ।
कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत् फलमुत्तमम् ॥ ३७

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ ३८

अभक्ता ये कथां पुण्यां शृण्वन्तीमां नराधमाः ।
तेषां श्रवणं नास्ति फलं दुःखं भवे भवे ॥ ३९

असम्पूज्य पुराणं ये यथाशक्त्या हृपायनैः ।
शृण्वन्तीमां कथां मूढाः स्युर्दरिद्रा न पावनाः ॥ ४०

दुष्टोंसे भरे तथा डाकुओंसे घिरे प्रदेशमें और धूत व्यक्तिके घरमें इस पवित्र कथाको नहीं कहा चाहिये ॥ २९-३० ॥

मध्याह्नकालमें दो घड़ीतक कथा बन्द रखने चाहिये, जिससे कथा-कीर्तनसे अवकाश पाकर लोगों शौच आदिसे निवृत्त हो सकें ॥ ३१ ॥

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पहले व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये । जिन दिनों कथा हो रही हो, उन दिनों प्रयत्नपूर्वक प्रातःकालका सारा नित्यकर्म संक्षेपसे ही कर लेना चाहिये । वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये एक दूसरा वैसा ही विद्वान् स्थापित करना चाहिये, जो सब प्रकारके संशयोंको निवृत्त करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो ॥ ३२-३३ ॥

कथामें आनेवाले विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे । कथाके स्वामी भगवान् शिवकी तथा विशेषतः शिवपुराण ग्रन्थकी भक्तिभावसे पूजा करे । तत्पश्चात् उत्तम बुद्धिवाला श्रोता विधिपूर्वक तन-मनसे शुद्ध एवं प्रसन्नचित्त हो आदरपूर्वक शिवपुराणकी कथा सुने ॥ ३४-३५ ॥

जो वक्ता और श्रोता अनेक प्रकारके कर्मोंमें भटक रहे हों, काम आदि छः विकारोंसे युक्त हों, स्त्रीमें आसक्ति रखते हों और पाखण्डपूर्ण बातें कहते हों, वे पुण्यके भागी नहीं होते । जो लौकिक चिन्ता तथा धन, गृह एवं पुत्र आदिकी चिन्ताको छोड़कर कथामें मन लगाये रहता है, उस शुद्धबुद्धि पुरुषको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है । श्रद्धा और भक्तिसे युक्त, दूसरे कर्मोंमें मन नहीं लगानेवाले, मौन धारण करनेवाले, पवित्र एवं उद्देश्यान्वय श्रोता ही पुण्यके भागी होते हैं ॥ ३६—३८ ॥

जो नराधम भक्तिरहित होकर इस पुण्यमयी कथाको सुनते हैं, उन्हें श्रवणका कोई फल नहीं होता और वे जन्म-जन्मान्तरमें क्लेश भोगते ही रहते हैं । यथाशक्ति उपचारोंसे इस पुराणकी पूजा किये बिना जो मूढ़जन इस कथाको सुनते हैं, वे अपवित्र और दरिद्र होते हैं ॥ ३९-४० ॥

कथायां कथ्यमानायां गच्छन्त्यन्यत्र ये नराः ।
 भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दारादिसम्पदः ॥ ४१
 सोष्णीषमस्तका ये च शृणवन्तीमां कथां नराः ।
 तत्पुत्राश्च प्रजायन्ते पापिनः कुलदूषकाः ॥ ४२
 ताम्बूलं भक्षयन्तो ये शृणवन्तीमां कथां नराः ।
 स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिङ्कराः ॥ ४३
 ये च तुङ्गासनारूढाः शृणवन्तीमां कथां नराः ।
 भुक्त्वा ते नरकान् सर्वास्ततः काका भवन्ति हि ॥ ४४
 ये वीराद्यासनारूढाः शृणवन्तीमां कथां शुभाम् ।
 भुक्त्वा ते नरकान् सर्वान्विषवृक्षा भवन्ति वै ॥ ४५
 असम्प्रणाम्य वक्तारं कथां शृणवन्ति ये नराः ।
 भुक्त्वा ते नरकान् सर्वान् भवन्त्यर्जुनपादपाः ॥ ४६
 अनातुराः शयाना ये शृणवन्तीमां कथां नराः ।
 भुक्त्वा ते नरकान् सर्वान् भवन्त्यजगरादयः ॥ ४७
 वक्तुः समासनारूढाः ये शृणवन्ति कथामिमाम् ।
 गुरुतल्पसमं पापं प्राप्यते नारकैः सदा ॥ ४८
 ये निन्दन्ति च वक्तारं कथां चेमां सुपावनीम् ।
 भवन्ति शुनका भुक्त्वा दुःखं जन्मशतं हि ते ॥ ४९
 कथायां वर्तमानायां दुर्वादं ये वदन्ति हि ।
 भुक्त्वा ते नरकान् घोरान् भवन्ति गर्दभास्ततः ॥ ५०
 कदाचिन्नापि शृणवन्ति कथामेतां सुपावनीम् ।
 भुक्त्वा ते नरकान् घोरान् भवन्ति वनसूकराः ॥ ५१
 कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये खलाः ।
 कोट्यब्दं नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ ५२
 एवं विचार्य शुद्धात्मा श्रोता वक्तृसुभक्तिमान् ।
 कथाश्रवणहेतोर्हि भवेत् प्रीत्योद्यतः सुधीः ॥ ५३
 कथाविघ्नविनाशार्थं गणेशं पूजयेत् पुरा ।
 नित्यं सम्पाद्य सद्द्वेषेपात् प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ५४
 नवग्रहांश्च सम्पूज्य सर्वतोभद्रदैवतम् ।
 शिवपूजोक्तविधिना पुस्तकं तत्समर्चयेत् ॥ ५५

कथा कहे जाते समय बीचमें ही जो लोग उठकर अन्यत्र चले जाते हैं, जन्मान्तरमें उनकी स्त्री आदि सम्पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो पुरुष सिरपर पगड़ी आदि धारण करके इस कथाका श्रवण करते हैं, उनके पापी और कुलकलंकी पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४१-४२ ॥

जो पुरुष पान चबाते हुए इस कथाको सुनते हैं, उन्हें नरकमें यमदूत उनकी ही विष्ठा खिलाते हैं। जो लोग ऊँचे आसनपर बैठकर इस कथाका श्रवण करते हैं, वे समस्त नरकोंको भोगकर काकयोनिमें जन्म लेते हैं ॥ ४३-४४ ॥

जो लोग वीरासन आदिसे बैठकर इस शुभ कथाको सुनते हैं, वे अनेकों नरकोंको भोगकर विषवृक्षका जन्म पाते हैं। कथा सुनानेवाले पौराणिकको अच्छी प्रकार प्रणाम किये बिना जो लोग कथा सुनते हैं, वे सभी नरकोंको भोगकर अर्जुनवृक्ष बनते हैं। रोगयुक्त न होनेपर भी जो लोग लेटकर यह कथा सुनते हैं, वे सभी नरकोंको भोगकर अन्तमें अजगर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं। वक्ताके समान ऊँचाईवाले आसनपर बैठकर जो इस कथाका श्रवण करते हैं, उन नारकीय लोगोंको गुरुशय्यापर शयन करने-जैसा पाप लगता है ॥ ४५—४८ ॥

जो इस पवित्र कथा तथा वक्ताकी निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मोंतक दुःख भोगकर कुत्तेका जन्म पाते हैं। कथा होते समय बीचमें जो गन्धी बातें बोलते हैं, वे घोर नरक भोगनेके बाद गधेका जन्म पाते हैं। जो कभी भी इस परम पवित्र कथाका श्रवण नहीं करते, वे घोर नरक भोगनेके पश्चात् जंगली सूअरका जन्म लेते हैं। जो दुष्ट कथाके बीचमें विज्ञ डालते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरकयातनाओंको भोगकर गाँवके सूअरका जन्म पाते हैं ॥ ४९—५२ ॥

इसका विचार करके शुद्ध और प्रेमपूर्ण चित्तसे बुद्धिमान् श्रोताको वक्ताके प्रति भक्तिभाव रखकर कथाश्रवणका प्रयत्न करना चाहिये ॥ ५३ ॥

सबसे पहले कथाके विघ्नोंका नाश करनेहेतु गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। अपने नित्यकर्मको संक्षेपमें सम्पन्न करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। नवग्रह और सर्वतोभद्र देवताओंका पूजन करके शिवपूजाकी बतायी गयी विधिसे शिवपुराणकी पुस्तकका अर्चन करना चाहिये ॥ ५४-५५ ॥

पूजनान्ते महाभक्त्या करौ बद्ध्वा विनीतकः ।
साक्षाच्छिवस्वरूपस्य पुस्तकस्य स्तुतिं चरेत् ॥ ५६
श्रीमच्छिवपुराणाख्यः प्रत्यक्षस्त्वं महेश्वरः ।
श्रवणार्थं स्वीकृतोऽसि सन्तुष्टो भव वै मयि ॥ ५७
मनोरथो मदीयोऽयं कर्तव्यः सफलस्त्वया ।
निर्विघ्नेन सुसम्पूर्णं कथाश्रवणमस्तु मे ॥ ५८
भवाब्धिमग्रं दीनं मां समुद्धर भवार्णवात् ।
कर्मग्राहगृहीताङ्गं दासोऽहं तव शङ्कर ॥ ५९
एवं शिवपुराणं हि साक्षाच्छिवस्वरूपकम् ।
स्तुत्वा दीनवचः प्रोच्य वक्तुः पूजां समारभेत् ॥ ६०
शिवपूजोक्तविधिना वक्तारं च समर्चयेत् ।
सपुष्पवस्त्रभूषाभिर्धूपदीपादिनार्चयेत् ॥ ६१
तदग्रे शुद्धचित्तेन कर्तव्यो नियमस्तदा ।
आसमाप्ति यथाशक्त्या धारणीयः सुयततः ॥ ६२
व्यासरूप प्रबोधाग्रघ शिवशास्त्रविशारद ।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ६३
वरणं पञ्चविग्राणां कार्यं वैकस्य भक्तिः ।
शिवपञ्चार्णमन्त्रस्य जपः कार्यश्च तैः सदा ॥ ६४
इत्युक्तस्ते मुने भक्त्या कथाश्रवणसद्विधिः ।
श्रोतृणां चैव भक्तानां किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६५

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे शिवपुराणमाहात्म्ये श्रवणविधिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें श्रवणविधिवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

पूजनके अन्तमें विनम्र होकर बड़ी भक्तिके साथ दोनों हाथ जोड़कर साक्षात् शिवस्वरूपिणी पुस्तकको इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये— श्रीशिवपुराणके रूपमें आप प्रत्यक्ष सदाशिव हैं; हमने कथा सुननेके लिये आपको अंगीकार किया है। आप हमपर प्रसन्न हों। मेरा जो मनोवांछित हो, उसे आप कृपापूर्वक सम्पन्न करें। मेरा यह कथाश्रवण निर्विघ्नरूपसे सुसम्पन्न हो। कर्मरूपी ग्राहसे ग्रस्त शरीरवाले मुझ दीनका आप संसारसागरसे उद्धार कीजिये। हे शंकर! मैं आपका दास हूँ ॥ ५६—५९ ॥

इस प्रकार साक्षात् शिवस्वरूप इस शिवपुराणकी दीनतापूर्वक स्तुति करके वक्ताकी पूजा आरम्भ करनी चाहिये। शिवपूजाकी बतायी गयी विधिसे पुष्प, वस्त्र, अलंकार, धूप-दीपादिसे वक्ताकी पूजा करे। तदनन्तर शुद्धचित्तसे उनके सामने नियम ग्रहण करे और कथासमाप्तिपर्यन्त यथाशक्ति उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करे ॥ ६०—६२ ॥

[तत्पश्चात् कथावाचक व्यासकी प्रार्थना करे—] हे व्यासजीके समान ज्ञानीश्रेष्ठ, शिवशास्त्रके मर्मज्ञ ब्राह्मणदेवता ! आप इस कथाके प्रकाशसे मेरे अज्ञानान्धकारको दूर करें। भक्तिपूर्वक पाँच अथवा एक ब्राह्मणका वरण करे और उनके द्वारा शिवपंचाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय)-का जप कराये ॥ ६३-६४ ॥

हे मुने ! इस प्रकार मैंने भक्त श्रोताओंद्वारा भक्तिपूर्वक कथाश्रवणकी उत्तम विधि आपको बतादी; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ ६५ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रोताओंके पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन

शौनक उवाच

सूत सूत महाप्राज्ञ धन्यस्त्वं शैवपुङ्गव ।
श्रावितेयं कथास्माकमद्दुतेयं शुभावहा ॥ १

पुंसां शिवपुराणस्य श्रवणव्रतिनां मुने ।
सर्वलोकहितार्थाय दयया नियमं वद ॥ २

शौनकजी बोले— हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप धन्य हैं, जो कि आपने यह अद्भुत एवं कल्याणकारिणी कथा हमें सुनायी। हे मुने ! शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये व्रत धारण करनेवाले लोगोंको किन नियमोंका पालन करना चाहिये— यह भी कृपापूर्वक सबके कल्याणकी दृष्टिसे बताइये ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

नियमं शृणु सद्वक्त्या पुंसां तेषां च शौनक ।
नियमात् सत्कथां श्रुत्वा निर्विघ्नफलमुत्तमम् ॥ ३

पुंसां दीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ।
श्रोतुकामैरतो वक्तुर्दीक्षा ग्राह्णा च तैर्मुने ॥ ४

ब्रह्मचर्यमधस्सुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ।
कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्तियं कथाव्रती ॥ ५

आसमाप्तपुराणं हि समुपोष्य सुशक्तिमान् ।
शृणुयाद्वक्तिः शुद्धः पुराणं शैवमुत्तमम् ॥ ६

घृतपानं पयःपानं कृत्वा वा शृणुयात् सुखम् ।
फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तं न वा हि तत् ॥ ७

एकवारं हविष्यानं भुज्यादेतत्कथाव्रती ।
सुखसाध्यं यथा स्यात्तच्छ्रवणं कार्यमेव च ॥ ८

भोजनं सुकरं मन्ये कथासु श्रवणप्रदम् ।
नोपवासो वरश्चेत् स्यात् कथाश्रवणविघ्नकृत् ॥ ९

गरिष्ठं द्विदलं दग्धं निष्पावांश्च मसूरिकाम् ।
भावदुष्टं पर्युषितं जग्धवा नित्यं कथाव्रती ॥ १०

वार्ताकं च कलिन्दं च चिचिण्डं मूलकं तथा ।
कूष्माण्डं नालिकेरं च मूलं जग्धवा कथाव्रती ॥ ११

पलाण्डुं लशुनं हिङ्गुं गृञ्जनं मादकं हि तत् ।
वस्तून्यामिषसंज्ञानि वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ १२

कामादिषड्विकारं च द्विजानां च विनिन्दनम् ।
पतिव्रतासतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥ १३

रजस्वलां न पश्येच्च पतितान्न वदेत् कथाम् ।
द्विजद्विषो वेदवर्ज्यान्न वदेद्यः कथाव्रती ॥ १४

सूतजी बोले—हे शौनक! अब शिवपुराण सुननेका व्रत लेनेवाले पुरुषोंके लिये जो नियम हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक सुनिये। नियमपूर्वक इस श्रेष्ठ कथाको सुननेसे बिना किसी विघ्न-बाधाके उत्तम फलकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

दीक्षासे रहित लोगोंका कथाश्रवणमें अधिकार नहीं है। अतः मुने! कथा सुननेकी इच्छावाले सब लोगोंको पहले वक्तासे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। कथाव्रतीको ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना, पत्तलमें खाना और प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर ही अन्न ग्रहण करना चाहिये ॥ ४-५ ॥

जिसमें शक्ति हो, वह पुराणकी समाप्तिक उपवास करके शुद्धतापूर्वक भक्तिभावसे उत्तम शिवपुराणको सुने। घृत अथवा दुग्ध पीकर सुखपूर्वक कथाश्रवण करे अथवा फलाहार करके अथवा एक ही समय भोजन करके इसे सुनना चाहिये। इस कथाका व्रत लेनेवाले पुरुषको प्रतिदिन एक ही बार हविष्यानं भोजन करना चाहिये। जिस प्रकारसे कथाश्रवणका नियम सुखपूर्वक पालित हो सके, वैसे ही करना चाहिये ॥ ६—८ ॥

कथाश्रवणमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले उपवासकी तुलनामें तो मैं कथाश्रवणमें शक्ति प्रदान करनेवाले भोजनको ही अच्छा समझता हूँ ॥ ९ ॥

गरिष्ठ अन्न, दाल, जला अन्न, सेम, मसूर, भावदूषित तथा बासी अन्नको खाकर कथा-व्रती पुरुष कभी कथाको न सुने ॥ १० ॥

कथाव्रतीको बैंगन, तरबूज, चिचिंडा, मूली, कोहड़ा, प्याज, नारियलका मूल तथा अन्य कन्द-मूलका त्याग करना चाहिये ॥ ११ ॥

जिसने कथाका व्रत ले रखा हो, वह पुरुष प्याज, लहसुन, हींग, गाजर, मादक वस्तु तथा आमिष कही जानेवाली वस्तुओंको त्याग दे। कथाका व्रत लेनेवाला जो पुरुष हो, उसे काम, क्रोध आदि छः विकारों, ब्राह्मणोंकी निन्दा तथा पतिव्रता और साधु-संतोंकी निन्दाका त्याग कर देना चाहिये ॥ १२-१३ ॥

कथाश्रवणका व्रत धारण करनेवाला व्यक्ति रजस्वला स्त्रीको न देखे, पतित मनुष्योंको कथाकी बात न सुनाये, ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवालों और वेदबहिष्कृत मनुष्योंके साथ सम्भाषण न करे ॥ १४ ॥

सत्यं शौचं दयां मौनमार्जवं विनयं तथा ।
 औदार्यं मनसश्चैव कुर्यान्नित्यं कथावती ॥ १५
 निष्कामश्च सकामश्च नियमाच्छृणुयात् कथाम् ।
 सकामः काममाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ १६
 दरिद्रश्च क्षयी रोगी पापी निर्भाग्य एव च ।
 अनपत्योऽपि पुरुषः शृणुयात् सत्कथामिमाम् ॥ १७
 काकवन्ध्यादयः सप्तविधा अपि खलस्त्रियः ।
 स्ववद्गर्भं च या नारी ताभ्यां श्राव्या कथा परा ॥ १८
 सर्वेषां श्रवणं कार्यं स्त्रीभिः पुंभिश्च यत्तः ।
 एतच्छिवपुराणस्य विधिना च कथां मुने ॥ १९
 एतच्छिवपुराणस्य पारायणदिनानि वै ।
 अत्युत्तमानि बोध्यानि कोटियज्ञसमानि च ॥ २०
 एतेषु विधिना दत्तं यदल्प्यमपि वस्तु हि ।
 दिवसेषु वरिष्ठेषु तदक्षय्यफलं लभेत् ॥ २१
 एवं कृत्वा व्रतविधिं श्रुत्वेमां परमां कथाम् ।
 परानन्दयुतः श्रीमानुद्यापनमथाचरेत् ॥ २२
 एतदुद्यापनविधिश्चतुर्दश्याः समो मतः ।
 कार्यस्तद्वद्धनाद्यैश्च तदुक्तफलकाङ्क्षिभिः ॥ २३
 अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनग्रहः ।
 श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामाः शाभ्वा मताः ॥ २४
 एवं शिवपुराणस्य पारायणमखोत्सवे ।
 समाप्ते श्रोतृभिर्भक्त्या पूजा कार्यं प्रयत्नतः ॥ २५
 शिवपूजनवत् सम्यक् पुस्तकस्य पुरो मुने ।
 पूजा कार्या सुविधिना वक्तुश्च तदनन्तरम् ॥ २६
 पुस्तकाच्छादनार्थं हि नवीनं चासनं शुभम् ।
 समर्चयेद दृढं दिव्यं बन्धनार्थं च सूत्रकम् ॥ २७
 पुराणार्थं प्रयच्छन्ति ये सूत्रं वसनं नवम् ।
 भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ॥ २८
 वक्त्रे दद्यान्महार्हाणि वस्तूनि विविधानि च ।
 वस्त्रभूषणपात्राणि दिव्यं बहु विशेषतः ॥ २९

कथावती पुरुष प्रतिदिन सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा मनकी उदारता—इन सद्गुणोंको सब अपनाये रहे । श्रोता निष्काम हो या सकाम, वह नियमपूर्वक कथा सुने । सकाम पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाको प्राप्त करता है और निष्काम पुरुष मोक्ष पा लेता है । दरिद्र क्षयका रोगी, पापी, भाग्यहीन तथा सन्तानरहित पुरुष भी इस उत्तम कथाको सुने ॥ १५—१७ ॥

काकवन्ध्या आदि जो सात प्रकारकी दुष्टा स्त्रियाँ हैं तथा जिस स्त्रीका गर्भ गिर जाता हो—इन सभीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये । हे मुने ! स्त्री हो या पुरुष—सबको यत्पूर्वक विधि-विधान से शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये ॥ १८-१९ ॥

इस शिवपुराणके कथापारायणके दिनोंको अत्यन्त उत्तम और करोड़ों यज्ञोंके समान पवित्र मानना चाहिये । इन श्रेष्ठ दिनोंमें विधिपूर्वक ज्ञानोंसी भी वस्तु दान की जाती है, उसका अक्षय फल मिलता है ॥ २०-२१ ॥

इस प्रकार व्रतधारण करके इस परम श्रेष्ठ कथाका श्रवण करके आनन्दपूर्वक श्रीमान् पुरुषोंको इसका उद्यापन करना चाहिये । इसके उद्यापनका विधि शिवचतुर्दशीके उद्यापनके समान है । अतः यह बताये गये फलकी आकांक्षावाले धनाद्य लोगोंको उसी प्रकारसे उद्यापन करना चाहिये । अल्पवित्तवाले भक्तोंके लिये प्रायः उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है; वे तो कथाश्रवणमात्रसे पवित्र हो जाते हैं । शिवजीके निष्काम भक्त तो शिवस्वरूप ही होते हैं ॥ २२—२४ ॥

हे महर्षे ! इस प्रकार शिवपुराणकी कथाके पाठ एवं श्रवण-सम्बन्धी यज्ञोत्सवकी समाप्ति होनेपर श्रोताओंको भक्ति एवं प्रयत्नपूर्वक भगवान् शिवकी पूजाकी भाँति पुराण-पुस्तककी भी पूजा करनी चाहिये । तदनन्तर विधिपूर्वक वक्ताका भी पूजन करना चाहिये । पुस्तकको आच्छादित करनेके लिये नवीन एवं सुदृढ़ बस्ता बनाये और उसे बाँधनेके लिये दृढ़ एवं दिव्य सूत्र लगाये; फिर उसका विधिवत् पूजन करे ॥ २५—२७ ॥

पुराणके लिये जो लोग नया वस्त्र और सूत्र देते हैं, वे जन्म-जन्मान्तरमें भोग और ज्ञानसे सम्पन्न होते हैं । कथावाचकको अनेक प्रकारके बहुमूल्य पदार्थ देने चाहिये और उत्तम वस्त्र, आभूषण और सुन्दर पात्र

आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणस्य च ये नराः ।
कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकपेव च ॥ ३०
स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेष्टितान् ।
स्थित्वा ब्रह्मपदे कल्पं यान्ति शैवपदं ततः ॥ ३१

एवं कृत्वा विधानेन पुस्तकस्य प्रपूजनम् ।
बक्तुश्च मुनिशार्दूल महोत्सवपुरस्सरम् ॥ ३२
सहायार्थं स्थापितस्य पण्डितस्य प्रपूजनम् ।
कुर्यात्तदनुसारेण किञ्चिदूनं धनादिभिः ॥ ३३
समागतेभ्यो विप्रेभ्यो दद्यादनं धनादिकम् ।
महोत्सवः प्रकर्तव्यो गीतैर्वार्द्यैश्च नर्तनैः ॥ ३४
विरक्तश्च भवेच्छेता परेऽहनि विशेषतः ।
गीता वाच्या शिवेनोक्ता रामचन्द्राय या मुने ॥ ३५

गृहस्थश्चेद्वेच्छेता कर्तव्यस्तेन धीमता ।
होमः शुद्धेन हविषा कर्मणस्तस्य शान्तये ॥ ३६
रुद्रसंहितया होमः प्रतिश्लोकेन वा मुने ।
गायत्र्यास्तन्मयत्वाच्च पुराणस्यास्य तत्त्वतः ॥ ३७
अथवा मूलमन्त्रेण पञ्चवर्णेन शैवतः ।
होमाशक्तौ बुधो हौम्यं हविर्दद्याद् द्विजाय तत् ॥ ३८

दोषयोः प्रशमार्थं च न्यूनताधिकताख्ययोः ।
पठेच्च शृणुयाद्वक्त्या शिवनामसहस्रकम् ॥ ३९
तेन स्यात् सफलं सर्वं सफलं नात्र संशयः ।
यतो नास्त्यधिकं त्वस्मात् त्रैलोक्ये वस्तु किञ्चन ॥ ४०

एकादशमितान् विप्रान् भोजयेन्मधुपायसैः ।
दद्यात् तेभ्यो दक्षिणां च व्रतपूर्णत्वसिद्धये ॥ ४१

शक्तौ पलत्रयमितस्वर्णेन सुन्दरं मुने ।
सिंहं विधाय तत्रास्य पुराणस्य शुभाक्षरम् ॥ ४२

आदि विशेष रूपसे देने चाहिये । पुराणके आसनरूपमें जो लोग कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, चौकी, तख्ता आदि प्रदान करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करके यथेच्छ सुखोंका उपभोगकर पुनः कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें रहकर अन्तमें शिवलोक प्राप्त करते हैं ॥ २८—३१ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार महान् उत्सवके साथ पुस्तक और वक्ताकी विधिवत् पूजा करके वक्ताकी सहायताके लिये स्थापित किये गये पण्डितका भी उसीके अनुसार उससे कुछ ही कम धन आदिके द्वारा सत्कार करे । वहाँ आये हुए ब्राह्मणोंको अन्न-धन आदिका दान करे । साथ ही गीत, वाद्य और नृत्य आदिके द्वारा महान् उत्सव करे ॥ ३२—३४ ॥

हे मुने ! यदि श्रोता विरक्त हो तो उसके लिये कथा-समाप्तिके दिन विशेषरूपसे उस गीताँका पाठ करना चाहिये, जिसे श्रीरामचन्द्रजीके प्रति भगवान् शिवने कहा था ॥ ३५ ॥

यदि श्रोता गृहस्थ हो तो उस बुद्धिमान्को उस श्रवण-कर्मकी शान्तिके लिये शुद्ध हविष्यके द्वारा होम करना चाहिये । हे मुने ! रुद्रसंहिताके प्रत्येक श्लोकद्वारा होम करे अथवा गायत्री-मन्त्रसे होम करना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें यह पुराण गायत्रीमय ही है । अथवा शिवपंचाक्षर मूलमन्त्रसे हवन करना उचित है । होम करनेकी शक्ति न हो तो विद्वान् पुरुष यथाशक्ति हवनीय हविष्यका ब्राह्मणको दान करे ॥ ३६—३८ ॥

न्यूनातिरिक्ततारूप दोषोंकी शान्तिके लिये भक्तिपूर्वक शिवसहस्रनामका पाठ अथवा श्रवण करे । इससे सब कुछ सफल होता है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तीनों लोकोंमें उससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है ॥ ३९-४० ॥

कथा श्रवणसम्बन्धी व्रतकी पूर्णताकी सिद्धिके लिये ग्यारह ब्राह्मणोंको मधुमिश्रित खीर भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे ॥ ४१ ॥

मुने ! यदि शक्ति हो तो तीन पल (बारह तोला) सोनेका एक सुन्दर सिंहासन बनवाये और उसपर उत्तम अक्षरोंमें लिखी अथवा लिखायी हुई शिवपुराणकी

* पद्मपुराणोक्त शिवगीता ।

लेखितं लिखितं वापि संस्थाप्य विधिना पुमान् ।
सम्पूज्यावाहनाद्यैश्च ह्युपचारैः सदक्षिणम् ॥ ४३

वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ।
आचार्याय सुधीर्दद्याच्छिवसन्तोषहेतवे ॥ ४४

तेन दानप्रभावेण पुराणस्यास्य शौनक ।
सम्प्राप्यानुग्रहं शैवं मुक्तः स्याद्वबन्धनात् ॥ ४५
एवं कृते विधाने च श्रीमच्छिवपुराणकम् ।
सम्पूर्णफलदं स्याद्वै भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ४६

इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।
श्रीमच्छिवपुराणस्य माहात्म्यं सर्वकामदम् ॥ ४७

श्रीमच्छिवपुराणं तु पुराणतिलकं स्मृतम् ।
महच्छिवप्रियं रम्यं भवरोगनिवारणम् ॥ ४८

ते जन्मभाजः खलु जीवलोके
ये वै सदा ध्यायन्ति विश्वनाथम् ।
वाणी गुणान् स्तौति कथां शृणोति
श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति ॥ ४९

सकलगुणविभेदैर्नित्यमस्पष्टरूपं
जगति च बहिरन्तर्भासमानं महिमा ।
मनसि च बहिरन्तर्वाङ्मनोवृत्तिरूपं
परमशिवमनन्तानन्दसान्द्रं प्रपद्ये ॥ ५०

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे सनत्कुमारसंहितायां श्रीशिवपुराणश्रवणब्रतिनां
विधिनिषेधपुस्तकवक्रपूजनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणमें सनत्कुमारसंहिताके अन्तर्गत श्रीशिवपुराणके श्रवणब्रतियोंके विधि-निषेध
और ग्रन्थ तथा वक्ताके पूजनका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

पुस्तक विधिपूर्वक स्थापित करे । तत्पश्चात् पुरुष आवाहन आदि विविध उपचारोंसे उसकी पूजा करके दक्षिणा चढ़ाये । तदनन्तर जितेन्द्रिय आचार्यका वस्त्र, आभूषण एवं गन्ध आदिसे पूजन करके उत्तम बुद्धिवाला श्रोता भगवान् शिवके सन्तोषके लिये दक्षिणासहित वह पुस्तक उन्हें समर्पित कर दे ॥ ४२—४४ ॥

हे शौनक ! इस पुराणके उस दानके प्रभावसे भगवान् शिवका अनुग्रह पाकर पुरुष भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है । इस तरह विधि-विधानका पालन करनेपर श्रीसम्पन्न शिवपुराण सम्पूर्ण फलको देनेवाला तथा भोग और मोक्षका दाता होता है ॥ ४५-४६ ॥

हे मुने ! मैंने आपको शिवपुराणका यह सारा माहात्म्य, जो सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है, बता दिया । अब और क्या सुनना चाहते हैं ? श्रीसम्पन्न शिवपुराण समस्त पुराणोंका तिलकस्वरूप माना गया है । यह भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय, रमणीय तथा भवरोगका निवारण करनेवाला है ॥ ४७-४८ ॥

जो सदा भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिवके गुणोंकी स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कथा सुनते हैं, इस जीव-जगत्‌में उन्हींका जन्म लेना सफल है, वे निश्चय ही संसारसागरसे पार हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

भिन्न-भिन्न प्रकारके समस्त गुण जिनके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका कभी स्पर्श नहीं करते, जो अपनी महिमासे जगत्‌के बाहर और भीतर वाणी एवं मनोवृत्तिरूपमें प्रकाशित होते हैं, उन अनन्त आनन्दघनरूप परम शिवकी मैं शरण लेता हूँ ॥ ५० ॥

॥ श्रीशिवमहापुराणमाहात्म्य पूर्ण हुआ ॥

॥ ३० श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ३० श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

(प्रथम-खण्ड — पूर्वार्ध)

प्रथमा विद्येश्वरसंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रयागमें सूतजीसे मुनियोंका शीघ्र पापनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न
आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभाव-

मार्य तपीशमजराभरमात्मदेवम् ।

पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं

सम्भावये मनसि शङ्करमम्बिकेशम् ॥

व्यास उवाच

धर्मक्षेत्रे महाक्षेत्रे गङ्गाकालिन्दिसङ्गमे ।
प्रयागे परमे पुण्ये ब्रह्मलोकस्य वर्त्मनि ॥ १

मुनयः शंसितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः ।
महौजसो महाभागा महासत्रं वितेनिरे ॥ २

तत्र सत्रं समाकर्ण्य व्यासशिष्यो महामुनिः ।
आजगाम मुनीन् द्रष्टुं सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ ३

तं दृष्ट्वा सूतमायान्तं हर्षिता मुनयस्तदा ।
चेतसा सुप्रसन्नेन पूजां चक्रुर्थाविधिः ॥ ४

ततो विनयसंयुक्ताः प्रोचुः साञ्जलयश्च ते ।
सुप्रसन्ना महात्मानः स्तुतिं कृत्वा यथाविधिः ॥ ५

रोमहर्षण सर्वज्ञ भवान् वै भाग्यगौरवात् ।
पुराणविद्यामग्निलां व्यासात् प्रत्यर्थमीयिवान् ॥ ६

तस्मादाश्रयं भूतानां कथानां त्वं हि भाजनम् ।
रत्नानामुरुसाराणां रत्नाकर इवार्णवः ॥ ७

जो आदि और अन्तमें [तथा मध्यमें भी] नित्य मङ्गलमय हैं, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्माके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले देवता (परमात्मा) हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल-ही-खेलमें—अनायास जगत्की रचना, पालन, संहार, अनुग्रह एवं तिरोभावरूप—पाँच प्रबल कर्म करते रहते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान् शंकरका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ ।

व्यासजी बोले—जो धर्मका महान् क्षेत्र है, जहाँ गंगा-यमुनाका संगम हुआ है, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस परम पुण्यमय प्रयागमें सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले महातेजस्वी महाभाग महात्मा मुनियोंने एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया ॥ १-२ ॥

उस ज्ञानयज्ञका समाचार सुनकर पौराणिकशिरोमणि व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ मुनियोंका दर्शन करनेके लिये आये ॥ ३ ॥

सूतजीको आते देखकर वे सब मुनि उस समय हर्षसे खिल उठे और अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे उन्होंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् उन प्रसन्न महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा— ॥ ५ ॥

हे सर्वज्ञ विद्वान् रोमहर्षणजी ! आपका भाग्य बड़ा भारी है, इसीसे आपने व्यासजीसे यथार्थरूपमें सम्पूर्ण पुराण-विद्या प्राप्त की, इसलिये आप आश्चर्यस्वरूप कथाओंके भण्डार हैं—ठीक उसी तरह, जैसे रत्नाकर समुद्र बड़े-बड़े सारभूत रत्नोंका आगार है ॥ ६-७ ॥

यच्च भूतं च भव्यं च यच्चान्यद्वस्तु वर्तते ।
न त्वयाविदितं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ८

त्वं मद्विष्टवशादस्य दर्शनार्थमिहागतः ।
कुर्वन् किमपि नः श्रेयो न वृथागन्तु मर्हसि ॥ ९

तत्त्वं श्रुतं स्म नः सर्वं पूर्वमेव शुभाशुभम् ।
न तृप्तिमधिगच्छामः श्रवणेच्छा मुहुर्मुहुः ॥ १०

इदानीमेकमेवास्ति श्रोतव्यं सूतं सन्मते ।
तद्रहस्यमपि ब्रूहि यदि तेऽनुग्रहो भवेत् ॥ ११

प्राप्ते कलियुगे घोरे नराः पुण्यविवर्जिताः ।
दुराचाररताः सर्वे सत्यवार्तापराङ्गमुखाः ॥ १२
परापवादनिरताः परद्रव्याभिलाषिणः ।
परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणाः ॥ १३
देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिकाः पशुबुद्धयः ।
मातृपितृकृतद्वेषाः स्त्रीदेवाः कामकिङ्कराः ॥ १४

विप्रा लोभग्रहग्रस्ता वेदविक्रयजीविनः ।
धनार्जनार्थमध्यस्तविद्या मदविमोहिताः ॥ १५

त्यक्तस्वजातिकर्मणः प्रायशः परवञ्चकाः ।
त्रिकालसन्ध्यया हीना ब्रह्मबोधविवर्जिताः ॥ १६
अदयाः पण्डितंमन्याः स्वाचारव्रतलोपकाः ।
कृष्णुद्यमरताः क्रूरस्वभावा मलिनाशयाः ॥ १७

क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्यागशीलिनः ।
असत्सङ्गाः पापरता व्यभिचारपरायणाः ॥ १८

अशूरा अरणप्रीताः पलायनपरायणाः ।
कुचौरवृत्तयः शूद्राः कामकिङ्करचेतसः ॥ १९

तीनों लोकोंमें भूत, वर्तमान और भविष्यकी जो बात है तथा अन्य भी जो कोई वस्तु है, वह आपसे अज्ञात नहीं है ॥ ८ ॥

आप हमारे सौभाग्यसे इस यज्ञका दर्शन करनेके लिये यहाँ आ गये हैं और इसी व्याजसे हमारा कुछ कल्याण करनेवाले हैं; क्योंकि आपका आगमन निरर्थक नहीं हो सकता ॥ ९ ॥

हमने पहले भी आपसे शुभाशुभ-तत्त्वका पूरा-पूरा वर्णन सुना है, किंतु उससे तृप्ति नहीं होती, हमें उसे सुननेकी बार-बार इच्छा होती है ॥ १० ॥

उत्तम बुद्धिवाले हैं सूतजी ! इस समय हमें एक ही बात सुननी है; यदि आपका अनुग्रह हो तो गोपनीय होनेपर भी आप उस विषयका वर्णन करें ॥ ११ ॥

घोर कलियुग आनेपर मनुष्य पुण्यकर्मसे दूर रहेंगे, दुराचारमें फँस जायेंगे, सब-के-सब सत्यभाषणसे विमुख हो जायेंगे, दूसरोंकी निन्दामें तत्पर होंगे । पराये धनको हड़प लेनेकी इच्छा करेंगे, उनका मन परायी स्त्रियोंमें आसक्त होगा तथा वे दूसरे प्राणियोंकी हिंसा किया करेंगे । वे अपने शरीरको ही आत्मा समझेंगे । वे मूढ़, नास्तिक तथा पशु-बुद्धि रखनेवाले होंगे, मातृपितासे द्वेष रखेंगे तथा वे कामवश स्त्रियोंकी सेवामें लगे रहेंगे ॥ १२—१४ ॥

ब्राह्मण लोभरूपी ग्रहके ग्रास बन जायेंगे, वेद बेचकर जीविका चलायेंगे, धनका उपार्जन करनेके लिये ही विद्याका अभ्यास करेंगे, मदसे मोहित रहेंगे, अपनी जातिके कर्म छोड़ देंगे, प्रायः दूसरोंको ठगेंगे, तीनों कालकी सन्ध्योपासनासे दूर रहेंगे और ब्रह्मज्ञानसे शून्य होंगे । दयाहीन, अपनेको पण्डित माननेवाले, अपने सदाचार-व्रतसे रहित, कृषिकार्यमें तत्पर, क्रूर स्वभाववाले एवं दूषित विचारवाले होंगे ॥ १५—१७ ॥

समस्त क्षत्रिय भी अपने धर्मका त्याग करनेवाले, कुसंगी, पापी और व्यभिचारी होंगे ॥ १८ ॥

उनमें शौर्यका अभाव होगा, वे युद्धसे विरत अर्थात् रणमें प्रीति न होनेसे भागनेवाले होंगे । वे कुत्सित चौर्य-कर्मसे जीविका चलायेंगे, शूद्रोंके समान बरताव करेंगे और उनका चित्त कामका किंकर बना रहेगा ॥ १९ ॥

शस्त्रास्त्रविद्यया हीना धेनुविप्रावनोच्छिताः ।
शरण्यावनहीनाश्च कामिन्यूतिमृगाः सदा ॥ २०

प्रजापालनसद्धर्मविहीना भोगतत्पराः ।
प्रजासंहारका दुष्टा जीवहिंसाकरा मुदा ॥ २१

वैश्याः संस्कारहीनास्ते स्वधर्मत्यागशीलिनः ।
कुपथाः स्वार्जनरतास्तुलाकर्मकुवृत्तयः ॥ २२

गुरुदेवद्विजातीनां भक्तिहीनाः कुबुद्धयः ।
अभोजितद्विजाः प्रायः कृपणा बद्धमुष्टयः ॥ २३
कामिनीजारभावेषु सुरता मलिनाशयाः ।
लोभमोहविचेतस्काः पूर्तादिषु वृषोच्छिताः ॥ २४

तद्वच्छूलाश्च ये केचिद् ब्राह्मणाचारतत्पराः ।
उज्ज्वलाकृतयो मूढाः स्वधर्मत्यागशीलिनः ॥ २५

कर्तारस्तपसां भूयो द्विजतेजोऽपहारकाः ।
शिश्वल्पमृत्युकाराश्च मन्त्रोच्चारपरायणाः ॥ २६
शालग्रामशिलादीनां पूजका होमतत्पराः ।
प्रतिकूलविचाराश्च कुटिला द्विजदूषकाः ॥ २७

धनवन्तः कुकर्मणो विद्यावन्तो विवादिनः ।
आख्यानोपासनाधर्मवक्तारो धर्मलोपकाः ॥ २८

सुभूपाकृतयो दम्भाः सुदातारो महामदाः ।
विप्रादीन् सेवकान् मत्वा मन्यमाना निजं प्रभुम् ॥ २९

स्वधर्मरहिता मूढाः सङ्कराः कूरबुद्धयः ।
महाभिमानिनो नित्यं चतुर्वर्णविलोपकाः ॥ ३०

वे शस्त्रास्त्रविद्याको नहीं जाननेवाले, गौ और ब्राह्मणकी रक्षा न करनेवाले, शरणागतकी रक्षा न करनेवाले तथा सदा कामिनीको खोजनेमें तत्पर रहेंगे ॥ २० ॥

प्रजापालनरूपी सदाचारसे रहित, भोगमें तत्पर, प्रजाका संहार करनेवाले, दुष्ट और प्रसन्नतापूर्वक जीवहिंसा करनेवाले होंगे ॥ २१ ॥

वैश्य संस्कार-भ्रष्ट, स्वधर्मत्यागी, कुमारी, धनोपार्जनपरायण तथा नाप-तौलमें अपनी कुत्सित वृत्तिका परिचय देनेवाले होंगे ॥ २२ ॥

वे गुरु, देवता और द्विजातियोंके प्रति भक्तिशून्य, कुत्सित बुद्धिवाले, द्विजोंको भोजन न करानेवाले, प्रायः कृपणताके कारण मुद्दी बाँधकर रखनेवाले, परायी स्त्रियोंके साथ कामरत, मलिन विचारवाले, लोभ और मोहसे भ्रमित चित्तवाले और वापी-कूप-तड़ाग आदिके निर्माण तथा यज्ञादि सत्कर्मोंमें धर्मका त्याग करनेवाले होंगे ॥ २३-२४ ॥

इसी तरह कुछ शूद्र ब्राह्मणोंके आचारमें तत्पर होंगे, उनकी आकृति उज्ज्वल होगी अर्थात् वे अपना कर्म-धर्म छोड़कर उज्ज्वल वेश-भूषासे विभूषित हो व्यर्थ घूमेंगे, वे मूढ़ होंगे और स्वभावतः ही अपने धर्मका त्याग करनेवाले होंगे ॥ २५ ॥

वे भाँति-भाँतिके तप करनेवाले होंगे, द्विजोंको अपमानित करेंगे, छोटे बच्चोंकी अल्पमृत्यु होनेके लिये आभिचारिक कर्म करेंगे, मन्त्रोंके उच्चारण करनेमें तत्पर रहेंगे, शालग्रामकी मूर्ति आदि पूजेंगे, होम करेंगे, किसी-न-किसीके प्रतिकूल विचार सदा करते रहेंगे, कुटिल स्वभाववाले होंगे और द्विजोंसे द्वेष-भाव रखने वाले होंगे ॥ २६-२७ ॥

वे यदि धनी हुए तो कुकर्ममें लग जायेंगे, यदि विद्वान् हुए तो विवाद करनेवाले होंगे, कथा और उपासनाधर्मोंके वक्ता होंगे और धर्मका लोप करनेवाले होंगे ॥ २८ ॥

वे सुन्दर राजाओंके समान वेष-भूषा धारण करनेवाले, दम्भी, दानमानी, अतिशय अभिमानी, विप्र आदिको अपना सेवक मानकर अपनेको स्वामी माननेवाले होंगे, वे अपने धर्मसे शून्य, मूढ़, वर्णसंकर, कूरबुद्धिवाले, महाभिमानी और सदा चारों वर्णोंके धर्मका लोप करनेवाले होंगे ॥ २९-३० ॥

सुकुलीनान्निजान् मत्वा चतुर्वर्णविवर्तनाः ।
सर्ववर्णभ्रष्टकराः मूढाः सत्कर्मकारिणः ॥ ३१

स्त्रियश्च प्रायशो भ्रष्टा भर्त्रवज्ञानकारिकाः ।
श्वशुरद्रोहकारिण्यो निर्भया मलिनाशनाः ॥ ३२

कुहावभावनिरताः कुशीलाः स्मरविह्वलाः ।
जारसङ्गरता नित्यं स्वस्वामिविमुखास्तथा ॥ ३३

तनया मातृपित्रोश्च भक्तिहीना दुराशयाः ।
अविद्यापाठका नित्यं रोगग्रसितदेहकाः ॥ ३४

एतेषां नष्टबुद्धीनां स्वर्थर्मत्यागशीलिनाम् ।
परलोकेऽपीह लोके कथं सूत गतिर्भवेत् ॥ ३५

इति चिन्ताकुलं चित्तं जायते सततं हि नः ।
परोपकारसदृशो नास्ति धर्मोऽपरः खलु ॥ ३६
लघूपायेन येनैषां भवेत् सद्योऽधनाशनम् ।
सर्वसिद्धान्तवित्तं हि कृपया तद्वदाधुना ॥ ३७

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
मनसा शङ्करं स्मृत्वा सूतः प्रोवाच तान् मुनीन् ॥ ३८

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां मुनिप्रश्वर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें मुनियोंके प्रश्नका वर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

वे अपनेको श्रेष्ठ कुलवाला मानकर चारों वर्णोंसे विपरीत व्यवहार करनेवाले, सभी वर्णोंको भ्रष्ट करनेवाले, मूढ़ और [अनुचित रूपसे] सत्कर्म करनेमें तत्पर होंगे ॥ ३१ ॥

कलियुगकी स्त्रियाँ प्रायः सदाचारसे भ्रष्ट होंगी, पतिका अपमान करनेवाली होंगी, सास-ससुरसे द्रोह करेंगी। किसीसे भय नहीं मानेंगी और मलिन भोजन करेंगी ॥ ३२ ॥

वे कुत्सित हाव-भावमें तत्पर होंगी, उनका शील-स्वभाव बहुत बुरा होगा। वे काम-विह्वल, परपतिसे रति करनेवाली और अपने पतिकी सेवासे सदा विमुख रहेंगी ॥ ३३ ॥

सन्तानें माता-पिताके प्रति श्रद्धारहित, दुष्ट स्वभाववाली, असत् विद्या पढ़नेवाली और सदा रोगग्रस्त शरीरवाली होंगी ॥ ३४ ॥

हे सूतजी ! इस तरह जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है और जिन्होंने अपने धर्मका त्याग कर दिया है, ऐसे लोगोंको इहलोक और परलोकमें उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी ? ॥ ३५ ॥

इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है; परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है, अतः जिस छोटे उपायसे इन सबके पापोंका तत्काल नाश हो जाय, उसे इस समय कृपापूर्वक बताइये; क्योंकि आप समस्त सिद्धान्तोंके ज्ञाता हैं ॥ ३६-३७ ॥

व्यासजी बोले—उन भावितात्मा मुनियोंकी यह बात सुनकर सूतजी मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके उन मुनियोंसे इस प्रकार कहने लगे— ॥ ३८ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शिवपुराणका माहात्म्य एवं परिचय

सूत उवाच

साधु पृष्ठं साधवो वस्त्रेलोक्यहितकारकम् ।

गुरुं स्मृत्वा भवत्स्नेहाद्वक्ष्ये तच्छृणुतादरात् ॥ १

सूतजी बोले—हे साधु-महात्माओ ! आप सबने तीनों लोकोंका हित करनेवाली अच्छी बात पूछी है। मैं गुरुदेव व्यासजीका स्मरण करके आपलोगोंके स्नेहवश इस विषयका वर्णन करूँगा, आपलोग आदरपूर्वक सुनें ॥ १ ॥

वेदान्तसारसर्वस्वं पुराणं चैवमुत्तमम्।
सर्वाधौधोद्भारकरं परत्र परमार्थदम्॥ २

कलिकल्मषविध्वंसि यस्मिञ्छवयशः परम्।
विजृम्भते सदा विप्राश्वतुर्वर्गफलप्रदम्॥ ३

तस्याध्ययनमात्रेण पुराणस्य द्विजोत्तमाः।
सर्वोत्तमस्य शैवस्य ते यास्यन्ति सुसद्गतिम्॥ ४

तावद्विजृम्भते पापं ब्रह्महत्यापुरस्सरम्।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ५

तावत्कलिमहोत्पाताः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ६

तावत्सर्वाणि शास्त्राणि विवदन्ते परस्परम्।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ७

तावत्स्वरूपं दुर्बोधं शिवस्य महतामपि।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ८

तावद्यमभटाः क्रूराः सञ्चरिष्यन्ति निर्भयाः।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ ९

तावत्सर्वपुराणानि प्रगर्जन्ति महीतले।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो॥ १०

सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, वह वेदान्तका सार-सर्वस्व है तथा वक्ता और श्रोताका समस्त पापराशियोंसे उद्भार करनेवाला है; [इतना ही नहीं] वह परलोकमें परमार्थ वस्तुको देनेवाला है। कलिकी कल्मषराशिका वह विनाशक है। उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है। हे ब्राह्मणो! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला वह पुराण सदा ही अपने प्रभावसे विस्तारको प्राप्त हो रहा है॥ २-३॥

हे विप्रवरो! उस सर्वोत्तम शिवपुराणके अध्ययनमात्रसे वे कलियुगके पापासक जीव श्रेष्ठतम गतिको प्राप्त हो जायेंगे॥ ४॥

अहो! ब्रह्महत्या आदि महान् पाप तभीतक रहेंगे अर्थात् अपने फलको देनेमें समर्थ होंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा। [आशय यह है कि शिवपुराण सुननेके बाद अन्तःकरण शिवभक्तिपरायण होकर अतिशय स्वच्छ हो जायगा। अतः किसी भी पापकर्ममें मानवकी प्रवृत्ति ही नहीं होगी, तब ब्रह्महत्या आदि भयंकर पाप न होनेके कारण उस पापके फल-भोगकी सम्भावना ही नहीं है]॥ ५॥

कलियुगके महान् उत्पात तभीतक निर्भय होकर विचरेंगे, जबतक यहाँ जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ६॥

सभी शास्त्र परस्पर तभीतक विवाद करेंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा [अर्थात् शिवपुराणके आ जानेपर किसी प्रकारका विवाद ही नहीं रह जायगा। सभी प्रकारसे भुक्ति-मुक्तिप्रदाता यही रहेगा]॥ ७॥

अहो! महान् व्यक्तियोंके लिये भी तभीतक शिवका स्वरूप दुर्बोध्य रहेगा, जबतक इस जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ८॥

अहो! क्रूर यमदूत तभीतक निर्भय होकर पृथ्वीपर घूमेंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ९॥

सभी पुराण पृथ्वीपर गर्जन तभीतक करेंगे, जबतक शिवपुराणका जगत्में उदय नहीं होगा॥ १०॥

तावत्सर्वाणि तीर्थोनि विवदन्ते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति जगत्यहो ॥ ११

तावत्सर्वे मुदा मन्त्रा विवदन्ते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥ १२

तावत्सर्वाणि क्षेत्राणि विवदन्ते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥ १३
तावत्सर्वाणि पीठानि विवदन्ते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥ १४
तावत्सर्वाणि दानानि विवदन्ते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥ १५
तावत्सर्वे च ते देवा विवदन्ते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥ १६
तावत्सर्वे च सिद्धान्ता विवदन्ते महीतले ।
यावच्छिवपुराणं हि नोदेष्यति महीतले ॥ १७
अस्य शैवपुराणस्य कीर्तनश्रवणाद् द्विजाः ।
फलं वकुं न शक्नोमि कात्स्येन मुनिसत्तमाः ॥ १८

तथापि तस्य माहात्म्यं वक्ष्ये किञ्चित्तु वोऽनधाः ।
चित्तमाधाय शृणुत व्यासेनोक्तं पुरा मम ॥ १९

एतच्छिवपुराणं हि श्लोकं श्लोकार्थमेव च ।
यः पठेद्विक्तिसंयुक्तः स पापान्मुच्यते क्षणात् ॥ २०

एतच्छिवपुराणं हि यः प्रत्यहमतन्द्रितः ।
यथाशक्ति पठेद् भक्त्या स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ २१

एतच्छिवपुराणं हि यो भक्त्यार्चयते सदा ।
दिने दिनेऽश्रमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २२

इस पृथिवीपर तीर्थोंका विवाद तभीतक रहेगा, जबतक इस जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा । [आशय यह है कि मुक्ति-प्राप्त्यर्थ एवं पापके नाशके लिये मानव विभिन्न तीर्थोंका सेवन करेंगे, किंतु शिवपुराणके आनेके बाद सभी लोग सभी पापोंके नाशके लिये शिवपुराणका ही सेवन करेंगे] । सभी मन्त्र पृथिवीपर तभीतक आनन्दपूर्वक विवाद करेंगे, जबतक पृथिवीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा ॥ ११-१२ ॥

सभी क्षेत्र तभीतक पृथिवीपर विवाद करेंगे, जबतक पृथिवीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा ॥ १३ ॥

सभी पीठ तभीतक पृथिवीपर विवाद करेंगे, जबतक पृथिवीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा ॥ १४ ॥

सभी दान पृथिवीपर तभीतक विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथिवीपर उदय नहीं होगा ॥ १५ ॥

सभी देवगण तभीतक पृथिवीपर विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथिवीपर उदय नहीं होगा ॥ १६ ॥

सभी सिद्धान्त तभीतक पृथिवीपर विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथिवीपर उदय नहीं होगा ॥ १७ ॥

हे विप्रो ! हे श्रेष्ठ मुनिगण ! इस शिवपुराणके कीर्तन करने और सुननेसे जो-जो फल होते हैं, उन फलोंको मैं सम्पूर्ण रूपसे नहीं कह सकता हूँ, [अर्थात् शब्दोंके द्वारा इसके सभी फलोंको नहीं कहा जा सकता है] ॥ १८ ॥

हे निष्पाप मुनिगण ! तथापि शिवपुराणका कुछ माहात्म्य आप लोगोंसे कहता हूँ, जो व्यासजीने पहले मुझसे कहा था, आपलोग चित्त लगाकर ध्यानपूर्वक सुनें ॥ १९ ॥

जो भक्तिपूर्वक इस शिवपुराणका एक श्लोक या आधा श्लोक भी पढ़ता है, वह उसी क्षण पापसे छुटकारा पा जाता है ॥ २० ॥

जो आलस्यरहित होकर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस शिवपुराणका यथाशक्ति पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ २१ ॥

जो इस शिवपुराणकी सदा पूजा करता है, वह निःसन्देह प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

एतच्छिवपुराणं यः साधारणपदेच्छया ।
अन्यतः शृणुयात् सोऽपि मत्तो मुच्येत पातकात् ॥ २३

एतच्छिवपुराणं यो नमस्कुर्याददूरतः ।
सर्वदेवार्चनफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ २४

एतच्छिवपुराणं वै लिखित्वा पुस्तकं स्वयम् ।
यो दद्याच्छिवभक्तेभ्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २५
अथीतेषु च शास्त्रेषु वेदेषु व्याकृतेषु च ।
यत्फलं दुर्लभं लोके तत्फलं तस्य सम्भवेत् ॥ २६

एतच्छिवपुराणं हि चतुर्दश्यामुपोषितः ।
शिवभक्तसभायां यो व्याकरोति स उत्तमः ॥ २७
प्रत्यक्षरं तु गायत्रीपुरश्चर्याफलं लभेत् ।
इह भुक्त्वाखिलान् कामानन्ते निर्वाणतां व्रजेत् ॥ २८

उपोषितश्चतुर्दश्यां रात्रौ जागरणान्वितः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि तस्य पुण्यं वदाम्यहम् ॥ २९

कुरुक्षेत्रादिनिखिलपुण्यतीर्थेष्वनेकशः ।
आत्मतुल्यधनं सूर्यग्रहणे सर्वतोमुखे ॥ ३०
विप्रेभ्यो व्यासमुख्येभ्यो दत्त्वा यत्फलमशनुते ।
तत्फलं सम्भवेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३१
एतच्छिवपुराणं हि गायते योऽप्यहर्निशम् ।
आज्ञां तस्य प्रतीक्षेन् देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ ३२

एतच्छिवपुराणं यः पठञ्छृणवन् हि नित्यशः ।
यद्यत् करोति सत्कर्मं तत्कोटिगुणितं भवेत् ॥ ३३

समाहितः पठेद्यस्तु तत्र श्रीरुद्रसंहिताम् ।
स ब्रह्मज्ञोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत् ॥ ३४

तां रुद्रसंहितां यस्तु भैरवप्रतिमान्तिके ।
त्रिः पठेत्प्रत्यहं मौनी स कामानखिलाल्लभेत् ॥ ३५

जो व्यक्ति साधारण पदकी प्राप्तिकी इच्छासे इस शिवपुराणको मुझसे अथवा अन्य किसीसे सुनता है, वह भी पातकोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २३ ॥

जो इस शिवपुराणको समीपसे प्रणाम करता है, वह सभी देवोंकी पूजाका फल प्राप्त करता है; इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥

जो इस शिवपुराणको स्वयं लिखकर शिवभक्तोंको दान करता है, उसके पुण्यफलको सुनें ॥ २५ ॥

शास्त्रोंका अध्ययन करने और वेदोंका पाठ करनेसे जो दुर्लभ फल प्राप्त होता है, वह फल उसको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

जो चतुर्दशी तिथिके दिन उपवास करके इस शिवपुराणका शिवभक्तोंके समाजमें पाठ करता है— वह श्रेष्ठ पुरुष है। वह व्यक्ति शिवपुराणके प्रत्येक अक्षरकी संख्याके अनुरूप गायत्रीके पुरश्चरणका फल प्राप्त करता है और इस लोकमें सभी अभीष्ट सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है ॥ २७-२८ ॥

जो चतुर्दशीकी रातमें उपवासपूर्वक जागरण करके शिवपुराणका पाठ करता है या इसे सुनता है, उसका पुण्य-फल मैं कहता हूँ ॥ २९ ॥

कुरुक्षेत्र आदि सभी तीर्थोंमें, पूर्ण सूर्यग्रहणमें अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंको और मुख्य कथावाचकोंको धन देनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल उस व्यक्तिको प्राप्त होता है, यह सत्य है, सत्य है; इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ३०-३१ ॥

जो व्यक्ति इस शिवपुराणका दिन-रात गान करता है, इन्द्र आदि देवगण उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहते हैं ॥ ३२ ॥

इस शिवपुराणका पाठ करनेवाला और सुननेवाला व्यक्ति जो-जो श्रेष्ठ कर्म करता है, वह कोटिगुना हो जाता है [अर्थात् कोटिगुना फल देता है] ॥ ३३ ॥

जो भलीभाँति ध्यानपूर्वक उसमें भी श्रीरुद्रसंहिताका पाठ करता है, वह यदि ब्रह्मघाती भी हो तो तीन दिनोंमें पवित्रात्मा हो जाता है ॥ ३४ ॥

जो भैरवकी मूर्तिके पास मौन धारणकर श्रीरुद्रसंहिताका प्रतिदिन तीन बार पाठ करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥ ३५ ॥

तां रुद्रसंहितां यस्तु सम्पठेद् वटबिल्वयोः ।
प्रदक्षिणां प्रकुर्वाणो ब्रह्महत्या निवर्तते ॥ ३६

कैलाससंहिता तत्र ततोऽपि परमा स्मृता ।
ब्रह्मस्वरूपिणी साक्षात् प्रणवार्थप्रकाशिका ॥ ३७

कैलाससंहितायास्तु माहात्म्यं वेत्ति शङ्करः ।
कृत्स्नं तदर्थं व्यासश्च तदर्थं वेदम्यहं द्विजाः ॥ ३८

तत्र किञ्चित्प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते ।
यज्ञात्वा तत्क्षणाल्लोकश्चित्तशुद्धिमवाज्यात् ॥ ३९

न नाशयति यत्पापं सा रौद्री संहिता द्विजाः ।
तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि सर्वदा ॥ ४०
शिवेनोपनिषत्स्थुमन्थनोत्पादितां मुदा ।
कुमारायार्पितां तां वै सुधां पीत्वामरो भवेत् ॥ ४१

ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं कर्तुमुद्यतः ।
मासमात्रं संहितां तां पठित्वा मुच्यते ततः ॥ ४२

दुष्प्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसम्भवम् ।
पापं सकृत् कीर्तनेन संहिता सा विनाशयेत् ॥ ४३

शिवालये बिल्ववने संहितां तां पठेत् तु यः ।
स यत्फलमवाज्नोति तद्वाचोऽपि न गोचरे ॥ ४४

संहितां तां पठन् भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद् द्विजान् ।
तस्य ये पितरः सर्वे यान्ति शम्भोः परं पदम् ॥ ४५

चतुर्दश्यां निराहारो यः पठेत्संहितां च ताम् ।
बिल्वमूले शिवः साक्षात् स देवैश्च प्रपूज्यते ॥ ४६

अप्यन्याः संहितास्तत्र सर्वकामफलप्रदाः ।
उभे विशिष्टे विज्ञेये लीलाविज्ञानपूरिते ॥ ४७

जो व्यक्ति वट और बिल्ववृक्षकी प्रदक्षिणा करते हुए उस रुद्रसंहिताका पाठ करता है, वह ब्रह्महत्याके दोषसे भी छुटकारा पा जाता है ॥ ३६ ॥

प्रणवके अर्थको प्रकाशित करनेवाली ब्रह्मस्वरूपिणी साक्षात् कैलाससंहिता रुद्रसंहितासे भी श्रेष्ठ कही गयी है ॥ ३७ ॥

हे द्विजो ! कैलाससंहिताका सम्पूर्ण माहात्म्य तो शंकरजी ही जानते हैं, उससे आधा माहात्म्य व्यासजी जानते हैं और उसका भी आधा मैं जानता हूँ ॥ ३८ ॥

उसके सम्पूर्ण माहात्म्यका वर्णन तो मैं नहीं कर सकता, कुछ ही अंश कहूँगा, जिसको जानकर उसी क्षण चित्तकी शुद्धि प्राप्त हो जायगी ॥ ३९ ॥

हे द्विजो ! लोकमें दूँढ़नेपर भी मैंने ऐसे किसी पापको नहीं देखा, जिसे वह रुद्रसंहिता नष्ट न कर सके ॥ ४० ॥

उपनिषद्रूपी सागरका मन्थन करके शिवने आनन्दपूर्वक इस रुद्रसंहितारूपी अमृतको उत्पन्न किया और कुमार कार्तिकेयको समर्पित किया; जिसे पीकर मानव अमर हो जाता है ॥ ४१ ॥

ब्रह्महत्या आदि पापोंकी निष्कृति करनेके लिये तत्पर मनुष्य महीनेभर रुद्रसंहिताका पाठ करके उन पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४२ ॥

दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोज्य, दुरालापसे जो पाप होता है; वह इस रौद्रीसंहिताका एक बार कीर्तन करनेसे नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

जो व्यक्ति शिवालयमें अथवा बेलके वनमें इस संहिताका पाठ करता है, वह उससे जो फल प्राप्त करता है, उसका वर्णन वाणीसे नहीं किया जा सकता ॥ ४४ ॥

जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस संहिताका पाठ करते हुए श्राद्धके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके सभी पितर शम्भुके परम पदको प्राप्त करते हैं ॥ ४५ ॥

चतुर्दशीके दिन निराहार रहकर जो बेलके वृक्षके नीचे इस संहिताका पाठ करता है, वह साक्षात् शिव होकर सभी देवोंसे पूजित होता है ॥ ४६ ॥

उसमें अन्य संहिताएँ सभी कामनाओंके फलको पूर्ण करनेवाली हैं, किंतु लीला और विज्ञानसे परिपूर्ण इन दोनों संहिताओंको विशिष्ट समझना चाहिये ॥ ४७ ॥

तदिदं शैवमाख्यातं पुराणं वेदसम्मितम्।
निर्मितं तच्छिवेनैव प्रथमं ब्रह्मसम्मितम्॥ ४८

विद्येशं च तथा रौद्रं वैनायकमथौमिकम्।
मात्रं रुद्रैकादशकं कैलासं शतरुद्रकम्॥ ४९
कोटिरुद्रसहस्राद्यं कोटिरुद्रं तथैव च।
वायवीयं धर्मसंज्ञं पुराणमिति भेदतः॥ ५०

संहिता द्वादशमिता महापुण्यतरा मताः।
तासां सङ्ख्यां ब्रुवे विप्राः शृणुतादरतोऽखिलम्॥ ५१
विद्येशं दशसाहस्रं रुद्रं वैनायकं तथा।
औमं मातृपुराणाख्यं प्रत्येकाष्टसहस्रकम्॥ ५२

त्रयोदशसहस्रं हि रुद्रैकादशकं द्विजाः।
षट्सहस्रं च कैलासं शतरुद्रं तदर्थकम्॥ ५३
कोटिरुद्रं त्रिगुणितमेकादशसहस्रकम्।
सहस्रकोटिरुद्राख्यमुदितं ग्रन्थसङ्ख्यया॥ ५४
वायवीयं खाव्यिशतं धर्मं रविसहस्रकम्।
तदेवं लक्षसङ्ख्याकं शैवं सङ्ख्याविभेदतः॥ ५५
व्यासेन तत्तु सङ्ख्यितं चतुर्विंशत्सहस्रकम्।
शैवं तत्र चतुर्थं वै पुराणं सप्तसंहितम्॥ ५६

शिवेन कल्पितं पूर्वं पुराणं ग्रन्थसङ्ख्यया।
शतकोटिप्रमाणं हि पुरा सृष्टौ सुविस्तृतम्॥ ५७

व्यस्तेऽष्टादशधा चैव पुराणे द्वापरादिषु।
चतुर्लक्षेण सङ्ख्यिते कृते द्वैपायनादिभिः॥ ५८

प्रोक्तं शिवपुराणं हि चतुर्विंशत्सहस्रकम्।
श्लोकानां सङ्ख्यया सप्तसंहितं ब्रह्मसम्मितम्॥ ५९

इस शिवपुराणको वेदके तुल्य माना गया है। इस वेदकल्प पुराणका सबसे पहले भगवान् शिवने ही प्रणयन किया था॥ ४८॥

विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता, मातृसंहिता, एकादशरुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता तथा धर्मसंहिता—इस प्रकार इस पुराणके बारह भेद हैं॥ ४९-५०॥

ये बारहों संहिताएँ अत्यन्त पुण्यमयी मानी गयी हैं। ब्राह्मणो! अब मैं उनके श्लोकोंकी संख्या बता रहा हूँ। आपलोग वह सब आदरपूर्वक सुनें। विद्येश्वरसंहितामें दस हजार श्लोक हैं। रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता और मातृसंहिता—इनमेंसे प्रत्येकमें आठ-आठ हजार श्लोक हैं॥ ५१-५२॥

हे ब्राह्मणो! एकादशरुद्रसंहितामें तेरह हजार, कैलाससंहितामें छः हजार, शतरुद्रसंहितामें तीन हजार, कोटिरुद्रसंहितामें नौ हजार, सहस्रकोटिरुद्रसंहितामें एयरह हजार, वायवीयसंहितामें चार हजार तथा धर्मसंहितामें बारह हजार श्लोक हैं। इस प्रकार संख्याके अनुसार मूल शिवपुराणकी श्लोकसंख्या एक लाख है॥ ५३-५५॥

परंतु व्यासजीने उसे चौबीस हजार श्लोकोंमें संक्षिप्त कर दिया है। पुराणोंकी क्रमसंख्याके विचारसे इस शिवपुराणका स्थान चौथा है; इसमें सात संहिताएँ हैं॥ ५६॥

पूर्वकालमें भगवान् शिवने श्लोकसंख्याकी दृष्टिसे सौ करोड़ श्लोकोंका एक ही पुराणग्रन्थ बनाया था। सृष्टिके आदिमें निर्मित हुआ वह पुराणसाहित्य अत्यन्त विस्तृत था॥ ५७॥

तत्पश्चात् द्वापर आदि युगोंमें द्वैपायन व्यास आदि महर्षियोंने जब पुराणका अठारह भागोंमें विभाजन कर दिया, उस समय सम्पूर्ण पुराणोंका संक्षिप्त स्वरूप केवल चार लाख श्लोकोंका रह गया॥ ५८॥

श्लोकसंख्याके अनुसार यह शिवपुराण चौबीस हजार श्लोकोंवाला कहा गया है। यह वेदतुल्य पुराण सात संहिताओंमें विभाजित है॥ ५९॥

विद्येश्वराख्या तत्राद्या रोद्री ज्ञेया द्वितीयिका ।
तृतीया शतरुद्राख्या कोटिरुद्रा चतुर्थिका ॥ ६०

पञ्चमी चैवमौम्याख्या षष्ठी कैलाससंज्ञिका ।
सप्तमी वायवीयाख्या सप्तैवं संहिता मताः ॥ ६१

ससप्तसंहितं दिव्यं पुराणं शिवसंज्ञकम् ।
वरीवर्ति ब्रह्मतुल्यं सर्वोपरिगतिप्रदम् ॥ ६२

एतच्छिवपुराणं हि सप्तसंहितमादरात् ।
परिपूर्णं पठेद्यस्तु स जीवन्मुक्त उच्यते ॥ ६३

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च ।
एतच्छिवपुराणस्य नार्हन्त्यल्पां कलामपि ॥ ६४

शैवं पुराणममलं शिवकीर्तिं तद्
व्यासेन शैवप्रवणेन च सङ्घृहीतम् ।
सङ्खेपतः सकलजीवगुणोपकारं
तापत्रयघ्नमतुलं शिवदं सतां हि ॥ ६५

विकैतवो धर्म इह प्रगीतो
वेदान्तविज्ञानमयः प्रधानः ।
अपत्सरान्तर्बुधवेद्यवस्तु
सत्कलृप्तमंत्रैघत्रिवर्गयुक्तम् ॥ ६६

शैवं पुराणतिलकं खलु सत्पुराणं
वेदान्तवेदविलसत्परवस्तुगीतम् ।
यो वै पठेच्च शृणुयात् परमादरेण
शम्भुप्रियः स हि लभेत् परमां गतिं वै ॥ ६७

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां मुनिप्रश्नोत्तरवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें मुनिप्रश्नोत्तर-वर्णन
नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

इसकी पहली संहिताका नाम विद्येश्वरसंहिता है, दूसरी रुद्रसंहिता समझनी चाहिये, तीसरीका नाम शतरुद्रसंहिता, चौथीका कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवींका नाम उमासंहिता, छठीका कैलाससंहिता और सातवींका नाम वायवीयसंहिता है। इस प्रकार ये सात संहिताएँ मानी गयी हैं ॥ ६०-६१ ॥

इन सात संहिताओंसे युक्त दिव्य शिवपुराण वेदके तुल्य प्रामाणिक तथा सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है ॥ ६२ ॥

सात संहिताओंसे समन्वित इस सम्पूर्ण शिवपुराणको जो आद्योपान्त आदरपूर्वक पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है ॥ ६३ ॥

वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास तथा सैकड़ों आगम इस शिवपुराणकी अल्प कलाके समान भी नहीं हैं ॥ ६४ ॥

यह निर्मल शिवपुराण भगवान् शिवके द्वारा ही प्रतिपादित है। शैवशिरोमणि भगवान् व्यासने इसे संक्षेपकर संकलित किया है। यह समस्त जीवसमुदायके लिये उपकारक, त्रिविध तापोंका नाशक, तुलनारहित एवं सत्पुरुषोंको कल्याण प्रदान करनेवाला है ॥ ६५ ॥

इसमें वेदान्त-विज्ञानमय, प्रधान तथा निष्कपट धर्मका प्रतिपादन किया गया है। यह पुराण ईर्ष्यारहित अन्तःकरणवाले विद्वानोंके लिये जाननेकी वस्तु है, इसमें श्रेष्ठ मन्त्रसमूहोंका संकलन है और यह धर्म, अर्थ तथा कामसे समन्वित है अर्थात्—इस त्रिवर्गकी प्राप्तिके साधनका भी इसमें वर्णन है ॥ ६६ ॥

यह उत्तम शिवपुराण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है। वेद-वेदान्तमें वेदरूपसे विलसित परम वस्तु—परमात्माका इसमें गान किया गया है। जो बड़े आदरसे इसे पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवका प्रिय होकर परम गति प्राप्त कर लेता है ॥ ६७ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

साध्य-साधन आदिका विचार

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचः सौतं प्रोचुस्ते परमर्षयः ।
वेदान्तसारसर्वस्वं पुराणं श्रावयाद्बुतम् ॥ १
इति श्रुत्वा मुनीनां स वचनं सुप्रहर्षितः ।
संस्मरञ्छङ्करं सूतः प्रोवाच मुनिसत्तमान् ॥ २

सूत उवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे स्मृत्वा शिवमनामयम् ।
पुराणप्रवणं शैवं पुराणं वेदसारजम् ॥ ३
यत्र गीतं त्रिकं प्रीत्या भक्तिज्ञानविरागकम् ॥ ४
वेदान्तवेद्यं सद्वस्तु विशेषेण प्रवर्णितम् ॥ ५
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे पुराणं वेदसारजम् ।
पुरा कालेन महता कल्पेऽतीते पुनः पुनः ॥ ६
अस्मिन्नुपस्थिते कल्पे प्रवृत्ते सृष्टिकर्मणि ।
मुनीनां षट्कुलीनानां ब्रुवतामितरेतरम् ॥ ७
इदं परमिदं नेति विवादः सुमहानभूत् ।
तेऽभिजग्मुर्विधातारं ब्रह्माणं प्रष्टुमव्ययम् ॥ ८
वाग्भर्विनयगर्भाभिः सर्वे प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ।
त्वं हि सर्वजगद्भाता सर्वकारणकारणम् ॥ ९
कः पुमान् सर्वतत्त्वेभ्यः पुराणः परतः परः ।

ब्रह्मोवाच

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ १०
यस्मात् सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्नपूर्वकम् ।
सह भूतेन्द्रियैः सर्वैः प्रथमं सम्प्रसूयते ॥ ११
एष देवो महादेवः सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।
अयं तु परया भक्त्या दृश्यते नान्यथा क्वचित् ॥ १२
रुद्रो हरिर्हरश्चैव तथान्ये च सुरेश्वराः ।
भक्त्या परमया तस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ १३

व्यासजी बोले— सूतजीका यह वचन सुनकर वे सब महर्षि बोले—अब आप हमें वेदान्तके सार-सर्वस्वरूप अद्भुत शिवपुराणको सुनाइये ॥ १ ॥

मुनियोंका यह वचन सुनकर अतिशय प्रसन्न हो वे सूतजी शंकरजीका स्मरण करते हुए उन श्रेष्ठ मुनियोंसे कहने लगे ॥ २ ॥

सूतजी बोले— आप सब महर्षिगण रोग-शोकसे रहित कल्याणमय भगवान् शिवका स्मरण करके वेदके सारतत्त्वसे प्रकट पुराणप्रवर शिवपुराणको सुनिये । जिसमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—इन तीनोंका प्रीतिपूर्वक गान किया गया है और वेदान्तवेद्य सद्वस्तुका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है ॥ ३—५ ॥

हे ऋषिगण ! अब आपलोग वेदके सारभूत पुराणको सुनें । बहुत कालमें पुनः-पुनः पूर्वकल्प व्यतीत होनेपर इस वर्तमान कल्पमें जब सृष्टिकर्म आरम्भ हुआ था, उन दिनों छः कुलोंके महर्षि परस्पर वाद-विवाद करते हुए कहने लगे—‘अमुक वस्तु सबसे उत्कृष्ट है और अमुक नहीं है ।’ उनके इस विवादने अत्यन्त महान् रूप धारण कर लिया । तब वे सब-के-सब अपनी शंकाके समाधानके लिये सृष्टिकर्ता अविनाशी ब्रह्माजीके पास गये और हाथ जोड़कर विनयभरी वाणीमें बोले—[हे प्रभो!] आप सम्पूर्ण जगत्का धारण-पोषण करनेवाले हैं तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं; हम यह जानना चाहते हैं कि सम्पूर्ण तत्त्वोंसे परे परात्पर पुराणपुरुष कौन हैं ? ॥ ६—९१/२ ॥

ब्रह्माजी बोले— जहाँसे मनसहित वाणी उन्हें न पाकर लौट आती है तथा जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदिसे युक्त यह सम्पूर्ण जगत् समस्त भूतों एवं इन्द्रियोंके साथ पहले प्रकट हुआ है, वे ही ये देव, महादेव सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं । ये ही सबसे उत्कृष्ट हैं । उत्तम भक्तिसे ही इनका साक्षात्कार होता है, दूसरे किसी उपायसे कहीं इनका दर्शन नहीं होता । रुद्र, हरि, हर तथा अन्य देवेश्वर सदा उत्तम भक्तिभावसे उनका नित्य दर्शन करना चाहते हैं ॥ १०—१३ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन शिवे भक्त्या विमुच्यते ।
प्रसादादेवताभक्तिः प्रसादो भक्तिसम्भवः ।
यथेहाङ्कुरतो बीजं बीजतो वा यथाङ्कुरः ॥ १४

तस्मादीशप्रसादार्थं यूयं गत्वा भुवं द्विजाः ।
दीर्घसत्रं समाकृध्वं यूयं वर्षसहस्रकम् ॥ १५

अमुष्यैवाध्वरेशस्य शिवस्यैव प्रसादतः ।
वेदोक्तविद्यासारं तु ज्ञायते साध्यसाधनम् ॥ १६
मुनय ऊचुः

अथ किं परमं साध्यं किं वा तत्साधनं परम् ।
साधकः कीदृशस्तत्र तदिदं ब्रूहि तत्त्वतः ॥ १७

ब्रह्मोवाच

साध्यं शिवपदप्राप्तिः साधनं तस्य सेवनम् ।
साधकस्तत्प्रसादाद्यो नित्यादिफलनिस्पृहः ॥ १८

कर्म कृत्वा तु वेदोक्तं तदर्पितमहाफलम् ।
परमेशपदप्राप्तिः सालोक्यादिक्रमात्ततः ॥ १९

तत्तद्वक्त्यनुसारेण सर्वेषां परमं फलम् ।
तत्साधनं बहुविधं साक्षादीशेन बोधितम् ॥ २०

सद्दक्षिण्य तत्र वः सारं साधनं प्रब्रवीप्यहम् ।
श्रोत्रेण श्रवणं तस्य वचसा कीर्तनं तथा ॥ २१

मनसा मननं तस्य महासाधनमुच्यते ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च मन्तव्यश्च महेश्वरः ॥ २२

इति श्रुतिः प्रमाणं नः साधनेनामुना परम् ।
साध्यं व्रजत सर्वार्थसाधनैकपरायणाः ॥ २३

प्रत्यक्षं चक्षुषा दृष्ट्वा तत्र लोकः प्रवर्तते ।
अप्रत्यक्षं हि सर्वत्र ज्ञात्वा श्रोत्रेण चेष्टते ॥ २४

अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, भगवान् शिवमें भक्ति होनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। देवताओंके कृपाप्रसादसे ही उनमें भक्ति होती है और भक्तिसे देवताका कृपाप्रसाद प्राप्त होता है—ठीक उसी तरह, जैसे यहाँ अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है। इसलिये है द्विजो! आप लोग भगवान् शंकरका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये भूतलपर जाकर वहाँ सहस्र वर्षोंतक चलनेवाले एक विशाल यज्ञका आयोजन करें ॥ १४-१५ ॥

इन यज्ञपति भगवान् शिवकी ही कृपासे वेदोक्त विद्याके सारभूत साध्य-साधनका ज्ञान होता है ॥ १६ ॥

मुनिगण बोले—हे भगवन्! परम साध्य क्या है और उसका परम साधन क्या है? उसका साधक कैसा होता है? ये सभी बातें यथार्थ रूपसे कहें ॥ १७ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवपदकी प्राप्ति ही साध्य है, उनकी सेवा ही साधन है तथा उनके प्रसादसे जो नित्य-नैमित्तिक आदि फलोंकी ओरसे निःस्पृह होता है, वही साधक है ॥ १८ ॥

वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करके उसके महान् फलको भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर देना ही परमेश्वरपदकी प्राप्ति है। वही सालोक्य आदिके क्रमसे प्राप्त होनेवाली मुक्ति है ॥ १९ ॥

उन-उन पुरुषोंकी भक्तिके अनुसार उन सबको उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है। उस भक्तिके साधन अनेक प्रकारके हैं, जिनका प्रतिपादन साक्षात् महेश्वरने ही किया है ॥ २० ॥

उसे संक्षिप्त करके मैं सारभूत साधनको बता रहा हूँ। कानसे भगवान्‌के नाम-गुण और लीलाओंका श्रवण, वाणीद्वारा उनका कीर्तन तथा मनके द्वारा उनका मनन—इन तीनोंको महान् साधन कहा गया है। [तात्पर्य यह कि] महेश्वरका श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये—यह श्रुतिका वाक्य हम सबके लिये प्रमाणभूत है। सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिमें लगे हुए आपलोग इसी साधनसे परम साध्यको प्राप्त हों। लोग प्रत्यक्ष वस्तुको नेत्रसे देखकर उसमें प्रवृत्त होते हैं; परंतु जिस वस्तुका कहीं भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, उसे श्रवणेन्द्रियद्वारा जान-सुनकर मनुष्य उसकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करता है ॥ २१—२४ ॥

तस्माच्छ्रवणमेवादौ श्रुत्वा गुरुमुखाद् बुधः।
ततः संसाधयेदन्यत् कीर्तनं मननं सुधीः॥ २५

क्रमान्मननपर्यन्ते साधनेऽस्मिन् सुसाधिते।
शिवयोगो भवेत्तेन सालोक्यादिक्रमाच्छनैः॥ २६

सर्वाङ्गव्याधयः पश्चात् सर्वानन्दश्च लीयते।
अभ्यासात् क्लेशमेतद् वै पश्चादाद्यन्तमङ्गलम्॥ २७

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनविचारं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें साध्यसाधनविचार नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

मुनय ऊचुः

मननं कीदृशं ब्रह्मज्ञवणं चापि कीदृशम्।
कीर्तनं वा कथं तस्य कीर्तयैतद्यथायथम्॥ १

ब्रह्मोवाच

पूजाजपेशगुणरूपविलासनामां
युक्तिप्रियेण मनसा परिशोधनं यत्।
तत्सन्ततं मननमीश्वरदृष्टिलभ्यं
सर्वेषु साधनवरेष्वपि मुख्यमुख्यम्॥ २

गीतात्मना श्रुतिपदेन च भाषया वा
शाभ्युप्रतापगुणरूपविलासनामाम्।
वाचा स्फुटं तु रसवत् स्तवनं यदस्य
तत्कीर्तनं भवति साधनमत्र मध्यम्॥ ३
येनापि केन करणेन च शब्दपुञ्जं
यत्र व्वचिच्छिवपरं श्रवणेन्द्रियेण।
स्त्रीकेलिवद् दृढतरं प्रणिधीयते यत्
तद्वै बुधाः श्रवणमत्र जगत्प्रसिद्धम्॥ ४
सत्सङ्गमेन भवति श्रवणं पुरस्तात्
सङ्कीर्तनं पशुपतेरथं तद् दृढं स्यात्।
सर्वोत्तमं भवति तमननं तदन्ते
सर्वं हि सम्भवति शङ्करदृष्टिपाते॥ ५

अतः पहला साधन श्रवण ही है। उसके द्वारा गुरुके मुखसे तत्त्वको सुनकर बुद्धिशाली विद्वान् पुरुष अन्य साधन—कीर्तन एवं मननकी सिद्धि करे॥ २५॥

क्रमशः मननपर्यन्त इस साधनकी अच्छी तरह साधना कर लेनेपर उसके द्वारा सालोक्य आदिके क्रमसे धीरे-धीरे भगवान् शिवका संयोग प्राप्त होता है॥ २६॥

पहले सारे अंगोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् सब प्रकारका लौकिक आनन्द भी विलीन हो जाता है। अभ्यासके ही समय यह साधन कष्टप्रद है, किंतु बादमें निरन्तर मंगल देनेवाला है॥ २७॥

मुनिगण बोले—हे ब्रह्मन्! मनन कैसा होता है, श्रवणका स्वरूप कैसा है और उनका कीर्तन कैसे किया जाता है, यथार्थ रूपमें आप वर्णन करें॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—[हे मुनियो!] भगवान् शंकरकी पूजा, उनके नामोंका जप तथा उनके गुण, रूप, विलास और नामोंका युक्तिपरायण चित्तके द्वारा जो निरन्तर परिशोधन या चिन्तन होता है, उसीको मनन कहा गया है, वह महेश्वरकी कृपादृष्टिसे उपलब्ध होता है। वह समस्त श्रेष्ठ साधनोंमें प्रमुखतम है॥ २॥

शम्भुके प्रताप, गुण, रूप, विलास और नामको प्रकट करनेवाले संगीत, वेदवाक्य या भाषाके द्वारा अनुरागपूर्वक उनकी स्तुति ही मध्यम साधन है, जिसको कीर्तन शब्दसे कहा जाता है॥ ३॥

हे ज्ञानियो! स्त्रीक्रीड़ामें जैसे मनकी आसक्ति होती है, वैसे ही किसी कारणसे किसी स्थानमें शिवविषयक वाणियोंमें श्रवणेन्द्रियकी दृढ़तर आसक्ति ही जगत्में श्रवणके नामसे प्रसिद्ध है॥ ४॥

सर्वप्रथम सज्जनोंकी संगतिसे श्रवण सिद्ध होता है, बादमें शिवजीका कीर्तन दृढ़ होता है और अन्तमें सभी साधनोंसे श्रेष्ठ शंकरविषयक मनन उत्पन्न होता है, किंतु यह सब उनकी कृपादृष्टिसे ही सम्भव होता है॥ ५॥

सूत उवाच

अस्मिन् साधनमाहात्म्ये पुरा वृत्तं मुनीश्वराः ।
युष्मदर्थं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमवधानतः ॥ ६

पुरा मम गुरुव्यासः पराशरमुनेः सुतः ।
तपश्चार सम्भ्रान्तः सरस्वत्यास्तटे शुभे ॥ ७
गच्छन् यदृच्छया तत्र विमानेनार्करोचिषा ।
सनत्कुमारो भगवान् दर्दर्श मम देशिकम् ॥ ८

ध्यानारूढः प्रबुद्धोऽसौ दर्दर्श तमजात्मजम् ।
प्रणिपत्याह सम्भ्रान्तः परं कौतूहलं मुनिः ॥ ९

दत्त्वाध्यमस्मै प्रददौ देवयोग्यं च विष्टरम् ।
प्रसन्नः प्राह तं प्रहं प्रभुर्गम्भीरया गिरा ॥ १०

सनत्कुमार उवाच

सत्यं वस्तु मुने दध्याः साक्षात्करणगोचरः ।
स शिवोऽथ सहायोऽत्र तपश्चरसि किंकृते ॥ ११

एवमुक्तः कुमारेण प्रोवाच स्वाशयं मुनिः ।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च वेदमार्गं कृतादराः ॥ १२
बहुधा स्थापिता लोके मया त्वत्कृपया तथा ।

एवंभूतस्य मेऽप्येवं गुरुभूतस्य सर्वतः ॥ १३
मुक्तिसाधनकं ज्ञानं नोदेति परमाद्भुतम् ।
तपश्चरामि मुक्त्यर्थं न जाने तत्र कारणम् ॥ १४

इत्थं कुमारो भगवान् व्यासेन मुनिनार्थितः ।
समर्थः प्राह विप्रेन्द्रा निश्चयं मुक्तिकारणम् ॥ १५

श्रवणं कीर्तनं शाखोर्मननं च महत्तरम् ।
त्रयं साधनमुक्तं च विद्यते वेदसम्मतम् ॥ १६

पुराहमथ सम्भ्रान्तो हृन्यसाधनसम्भ्रमः ।
अचले मन्दरे शैले तपश्चरणमाचरम् ॥ १७

सूतजी बोले—मुनीश्वरो! इस साधनका माहात्म्य बतानेके प्रसंगमें मैं आपलोगोंके लिये एक प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करूँगा, उसे ध्यान देकर आपलोग सुनें ॥ ६ ॥

पूर्व कालमें पराशर मुनिके पुत्र मेरे गुरु व्यासदेवजी सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर तपस्या कर रहे थे ॥ ७ ॥

एक दिन सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानसे यात्रा करते हुए भगवान् सनत्कुमार अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मेरे गुरुदेवको वहाँ देखा ॥ ८ ॥

वे ध्यानमें मग्न थे। उससे जगनेपर उन्होंने ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमारजीको अपने सामने उपस्थित देखा। वे बड़े वेगसे उठे और उनके चरणोंमें प्रणाम करके मुनिने उन्हें अर्घ्य प्रदान करके देवताओंके बैठनेयोग्य आसन भी अर्पित किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् सनत्कुमार विनीत भावसे खड़े हुए व्यासजीसे गम्भीर वाणीमें कहने लगे ॥ ९-१० ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! आप सत्य सनातन भगवान् शंकरका हृदयसे ध्यान कीजिये, तब वे शिव प्रत्यक्ष होकर आपकी सहायता करेंगे; आप यहाँ तप किसलिये कर रहे हैं? ॥ ११ ॥

इस प्रकार सनत्कुमारके कहनेपर मुनि व्यासने अपना आशय कहा—मैंने आपकी कृपासे वेदसम्मत धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कथाको मानवसमाजमें अनेक प्रकारसे प्रदर्शित किया है ॥ १२ १/२ ॥

इस प्रकार सर्वथा गुरुस्वरूप होनेपर भी मुझमें मुक्तिके साधन ज्ञानका उदय नहीं हुआ है—यह आश्चर्य ही है। मुक्तिका साधन न जाननेके कारण उसके लिये मैं तपस्या कर रहा हूँ ॥ १३-१४ ॥

हे विप्रेन्द्रो! इस प्रकार जब व्यासमुनिने भगवान् सनत्कुमारसे प्रार्थना की, तब वे समर्थ सनत्कुमारजी मुक्तिका निश्चित कारण बताने लगे ॥ १५ ॥

भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन, मनन—ये तीनों महत्तर साधन कहे गये हैं। ये तीनों ही वेदसम्मत हैं ॥ १६ ॥

पूर्वकालमें मैं दूसरे-दूसरे साधनोंके सम्प्रमें पड़कर घूमता-घामता मन्दराचलपर जा पहुँचा और वहाँ तपस्या करने लगा ॥ १७ ॥

शिवाज्ञया ततः प्राप्तो भगवान् नन्दिकेश्वरः ।
स मे दयालुर्भगवान् सर्वसाक्षी गणेश्वरः ॥ १८

उवाच महां सस्नेहं मुक्तिसाधनमुत्तमम् ।
श्रवणं कीर्तनं शम्भोर्यननं वेदसम्मतम् ॥ १९

त्रिकं च साधनं मुक्तेः शिवेन मम भाषितम् ।
श्रवणादित्रिकं ब्रह्मन् कुरुच्छेति मुहुर्मुहुः ॥ २०

एवमुक्त्वा ततो व्यासं सानुगो विधिनन्दनः ।
जगाम स्वविमानेन पदं परमशोभनम् ॥ २१
एवमुक्तं समासेन पूर्ववृत्तान्तमुत्तमम् ।

ऋषय ऊचुः
श्रवणादित्रयं सूत मुक्त्युपायस्त्वयेरितः ॥ २२

श्रवणादित्रिकेऽशक्तः किं कृत्वा मुच्यते जनः ।
अयत्नेनैव मुक्तिः स्यात् कर्मणा केन हेतुना ॥ २३

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवान् शिवके लिंग एवं साकार विग्रहकी पूजाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन

सूत उवाच

श्रवणादित्रिकेऽशक्तो लिङ्गं वेरं च शाङ्करम् ।
संस्थाप्य नित्यमध्यर्च्य तरेत् संसारसागरम् ॥ १

अपि द्रव्यं वहेदेव यथाबलमवश्यन् ।
अर्पयेल्लङ्घवेरार्थमर्चयेदपि सन्ततम् ॥ २

मण्डपं गोपुरं तीर्थं मठं क्षेत्रं तथोत्सवम् ।
वस्त्रं गन्धं च माल्यं च धूपं दीपं च भक्तिः ॥ ३

तदनन्तर महेश्वर शिवकी आज्ञासे भगवान् नन्दिकेश्वर वहाँ आये । उनकी मुझपर बड़ी दया थी । वे सबके साक्षी तथा शिवगणोंके स्वामी भगवान् नन्दिकेश्वर मुझे स्नेहपूर्वक मुक्तिका उत्तम साधन बताते हुए बोले—‘भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन और मनन—ये तीनों साधन वेदसम्मत हैं और मुक्तिके साक्षात् कारण हैं; यह बात स्वयं भगवान् शिवने मुझसे कही है । अतः हे ब्रह्मन्! आप श्रवणादि तीनों साधनोंका बार-बार अनुष्ठान करें ॥ १८—२० ॥

व्यासजीसे बार-बार ऐसा कहकर अनुगामियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनकुमार अपने विमानसे परम सुन्दर ब्रह्मधामको चले गये । इस प्रकार पूर्वकालके इस उत्तम वृत्तान्तका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है ॥ २१ १/२ ॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने श्रवण आदि तीनों साधनोंको मुक्तिका उपाय बताया है । जो मनुष्य श्रवण आदि तीनों साधनोंमें असमर्थ हो, वह किस उपायका अवलम्बन करके मुक्त हो सकता है और किस साधनभूत कर्मके द्वारा बिना यत्के ही मोक्ष मिल सकता है? ॥ २२-२३ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

सूतजी बोले—हे शौनक! जो श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीनों साधनोंके अनुष्ठानमें समर्थ न हो, वह भगवान् शंकरके लिंग एवं मूर्तिकी स्थापनाकर नित्य उसकी पूजा करके संसारसागरसे पार हो सकता है ॥ १ ॥

छल न करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार धनराशि ले जाय और उसे शिवलिंग अथवा शिवमूर्तिकी सेवाके लिये अर्पित कर दे, साथ ही निरन्तर उस लिंग एवं मूर्तिकी पूजा भी करे ॥ २ ॥

उसके लिये भक्तिभावसे मण्डप, गोपुर, तीर्थ, मठ एवं क्षेत्रकी स्थापना करे तथा उत्सव करे और वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा मालपुआ आदि व्यंजनोंसे

विविधानं च नैवेद्यमपूपव्यञ्जनैर्युतम्।
छत्रं ध्वजं च व्यजनं चामरं चापि साङ्गकम्॥ ४

राजोपचारवत् सर्वं धारयेलिलङ्गवेरयोः।
प्रदक्षिणां नमस्कारं यथाशक्ति जपं तथा॥ ५

आवाहनादि सर्गान्तं नित्यं कुर्यात् सुभक्तिः।
इथमध्यर्चयन् देवं लिङ्गे वेरे च शाङ्करे॥ ६

सिद्धिमेति शिवप्रीत्या हित्वापि श्रवणादिकम्।
लिङ्गवेरार्चनामात्रान्मुक्ताः पूर्वे महाजनाः॥ ७

मुनय ऊचुः

वेरमात्रे तु सर्वत्र पूज्यन्ते देवतागणाः।
लिङ्गे वेरे च सर्वत्र कथं सम्पूज्यते शिवः॥ ८

सूत उवाच

अहो मुनीश्वराः पुण्यं प्रश्नमेतन्महाद्वृतम्।
अत्र वक्ता महादेवो नान्योऽस्ति पुरुषः क्वचित्॥ ९

शिवेनोक्तं प्रवक्ष्यामि क्रमाद् गुरुमुखाच्छ्रुतम्।
शिवैको ब्रह्मरूपत्वान्निष्कलः परिकीर्तिः॥ १०

रूपित्वात् सकलस्तद्वत्स्मात् सकलनिष्कलः।
निष्कलत्वान्निराकारं लिङ्गं तस्य समागतम्॥ ११

सकलत्वात् तथा वेरं साकारं तस्य सङ्गतम्।
सकलाकलरूपत्वाद् ब्रह्मशब्दाभिधः परः॥ १२

युक्त भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य अन्न नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। छत्र, ध्वजा, व्यजन, चामर तथा अन्य अंगोंसहित राजोपचारकी भाँति सब वस्तुएँ भगवान् शिवके लिंग एवं मूर्तिपर चढ़ाये। प्रदक्षिणा, नमस्कार तथा यथाशक्ति जप करे॥ ३-५॥

आवाहनसे लेकर विसर्जनतक सारा कार्य प्रतिदिन भक्तिभावसे सम्पन्न करे। इस प्रकार शिवलिंग अथवा शिवमूर्तिमें भगवान् शंकरकी पूजा करनेवाला पुरुष श्रवण आदि साधनोंका अनुष्ठान न करे तो भी भगवान् शिवकी प्रसन्नतासे सिद्धि प्राप्त कर लेता है। पहलेके बहुतसे महात्मा पुरुष लिंग तथा शिवमूर्तिकी पूजा करनेमात्रसे भवबन्धनसे मुक्त हो चुके हैं॥ ६-७॥

ऋषिगण बोले—मूर्तिमें ही सर्वत्र देवताओंकी पूजा होती है, परंतु भगवान् शिवकी पूजा सब जगह मूर्तिमें और लिंगमें भी क्यों की जाती है?॥ ८॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! आप लोगोंका यह प्रश्न तो बड़ा ही पवित्र और अत्यन्त अद्भुत है। इस विषयमें महादेवजी ही वक्ता हो सकते हैं; कोई पुरुष कभी और कहीं भी इसका यथार्थ प्रतिपादन नहीं कर सकता॥ ९॥

इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ कहा है और उसे मैंने गुरुजीके मुखसे जिस प्रकार सुना है, उसी तरह क्रमशः वर्णन करूँगा। एकमात्र भगवान् शिव ही ब्रह्मरूप होनेके कारण निष्कल (निराकार) कहे गये हैं॥ १०॥

रूपवान् होनेके कारण उन्हें 'सकल' भी कहा गया है। इसलिये वे सकल और निष्कल दोनों हैं। शिवके निष्कल—निराकार होनेके कारण ही उनकी पूजाका आधारभूत लिंग भी निराकार ही प्राप्त हुआ है अर्थात् शिवलिंग शिवके निराकार स्वरूपका प्रतीक है॥ ११॥

इसी तरह शिवके सकल या साकार होनेके कारण उनकी पूजाका आधारभूत विग्रह साकार प्राप्त होता है अर्थात् शिवका साकार विग्रह उनके साकार स्वरूपका प्रतीक होता है। सकल और अकल (समस्त अंग-आकारसहित साकार और अंग-आकारसे सर्वथा रहित निराकार) -रूप होनेसे ही वे 'ब्रह्म' शब्दसे कहे जानेवाले परमात्मा हैं॥ १२॥

अपि लिङ्गे च वेरे च नित्यमध्यर्थ्यते जनैः।
अब्रह्मत्वात्तदन्येषां निष्कलत्वं न हि क्वचित्॥ १३

तस्मात्ते निष्कले लिङ्गे नाराध्यन्ते सुरेश्वराः।
अब्रह्मत्वाच्च जीवत्वात्तथान्ये देवतागणाः॥ १४

तूष्णीं सकलमात्रत्वादर्थ्यन्ते वेरमात्रके।
जीवत्वं शङ्करान्येषां ब्रह्मत्वं शङ्करस्य च॥ १५

वेदान्तसारसंसिद्धं प्रणवार्थं प्रकाशनात्।

एवमेव पुरा पृष्ठो मन्दरे नन्दिकेश्वरः॥ १६
सनत्कुमारमुनिना ब्रह्मपुत्रेण धीमता।

सनत्कुमार उवाच
शिवान्यदेववश्यानां सर्वेषामपि सर्वतः॥ १७

वेरमात्रं च पूजार्थं श्रुतं दृष्टं च भूरिशः।
शिवमात्रस्य पूजायां लिङ्गं वेरं च दृष्ट्यते॥ १८

अतस्तद् ब्रूहि कल्याणं तत्त्वं मे साधुबोधनम्।

नन्दिकेश्वर उवाच
अनुत्तरमिमं प्रश्नं रहस्यं ब्रह्मलक्षणम्॥ १९

कथयामि शिवेनोक्तं भक्तियुक्तस्य तेऽनघ।
शिवस्य ब्रह्मरूपत्वान्निष्कलत्वाच्च निष्कलम्॥ २०

लिङ्गं तस्यैव पूजायां सर्ववेदेषु सम्मतम्।
तस्यैव सकलत्वाच्च तथा सकलनिष्कलम्॥ २१

सकलं च तथा वेरं पूजायां लोकसम्मतम्।

यही कारण है कि सब लोग लिंग (निराकार) और मूर्ति (साकार)—दोनोंमें ही सदा भगवान् शिवकी पूजा करते हैं। शिवसे भिन्न जो देवता हैं, वे साक्षात् ब्रह्म नहीं हैं, इसलिये कहीं भी उनके लिये निराकार लिंग नहीं उपलब्ध होता॥ १३॥

अतः सुरेश्वर (इन्द्र, ब्रह्मा) आदि देवगण भी निष्कल लिंगमें पूजित नहीं होते हैं, सभी देवगण ब्रह्म न होनेसे, अपितु सगुण जीव होनेके कारण केवल मूर्तिमें ही पूजे जाते हैं। शंकरके अतिरिक्त अन्य देवोंका जीवत्व और सदाशिवका ब्रह्मत्व वेदोंके सारभूत उपनिषदोंसे सिद्ध होता है। वहाँ प्रणव (ॐकार)-के तत्त्वरूपसे भगवान् शिवका ही प्रतिपादन किया गया है॥ १४-१५१/२॥

इसी प्रकार पूर्वमें मन्दराचल पर्वतपर ज्ञानवान् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनिने नन्दिकेश्वरसे प्रश्न किया था॥ १६१/२॥

सनत्कुमार बोले—[हे भगवन्!] शिवके अतिरिक्त उनके वशमें रहनेवाले जो अन्य देवता हैं, उन सबकी पूजाके लिये सर्वत्र प्रायः वेर (मूर्ति)-मात्र ही अधिक संख्यामें देखा और सुना जाता है। केवल भगवान् शिवकी ही पूजामें लिंग और वेर दोनोंका उपयोग देखनेमें आता है। अतः हे कल्याणमय नन्दिकेश्वर! इस विषयमें जो तत्त्वकी बात हो, उसे मुझे इस प्रकार बताइये, जिससे अच्छी तरह समझमें आ जाय॥ १७-१८१/२॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे निष्पाप ब्रह्मकुमार! हम-जैसे लोगोंके द्वारा आपके इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता; क्योंकि यह गोपनीय विषय है और लिंग साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है। इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ बताया है, उसे मैं आप शिवभक्तके समक्ष कहता हूँ। भगवान् शिव ब्रह्मस्वरूप और निष्कल (निराकार) हैं; इसलिये उन्हींकी पूजामें निष्कल लिंगका उपयोग होता है। सम्पूर्ण वेदोंका यही मत है। वे ही सकल हैं। इस प्रकार वे निराकार तथा साकार दोनों हैं। भगवान् शंकर निष्कल-निराकार होते हुए भी कलाओंसे युक्त हैं, इसलिये उनकी साकार रूपमें प्रतिमापूजा भी लोकसम्मत है॥ १९-२११/२॥

शिवान्येषां च जीवत्वात् सकलत्वाच्च सर्वतः ॥ २२

वेरमात्रं च पूजायां सम्मतं वेदनिर्णये।
स्वाविर्भावे च देवानां सकलं रूपमेव हि ॥ २३

शिवस्य लिङ्गं वेरं च दर्शने दृश्यते खलु।

सनत्कुमार उवाच

उक्तं त्वया महाभाग लिङ्गवेरप्रचारणम् ॥ २४

शिवस्य च तदन्येषां विभज्य परमार्थतः।
तस्मात्तदेव परमं लिङ्गं वेरादिसम्भवम् ॥ २५

श्रोतुमिच्छामि योगीन्द्र लिङ्गाविर्भावलक्षणम्।

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणु वत्स भवत्प्रीत्या वक्ष्यामि परमार्थतः ॥ २६

पुरा कल्पे महाकाले प्रपन्ने लोकविश्रुते।
अयुध्येतां महात्मानौ ब्रह्मविष्णू परस्परम् ॥ २७

तयोर्मानं निराकर्तुं तन्मध्ये परमेश्वरः।
निष्कलस्तम्भस्तुपेण स्वरूपं समदर्शयत् ॥ २८

ततः स्वलिङ्गचिह्नत्वात् स्तम्भतो निष्कलं शिवः।
स्वलिङ्गं दर्शयामास जगतां हितकाम्यया ॥ २९

तदाप्रभृति लोकेषु निष्कलं लिङ्गमैश्वरम्।
सकलं च तथा वेरं शिवस्यैव प्रकल्पितम् ॥ ३०

शिवान्येषां तु देवानां वेरमात्रं प्रकल्पितम्।
तत्तद् वेरं तु देवानां तत्तद्बोगप्रदं शुभम्।
शिवस्य लिङ्गवेरत्वं भोगमोक्षप्रदं शुभम् ॥ ३१

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवलिङ्गमहिमवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवलिंगकी महिमाका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

शंकरके अतिरिक्त अन्य देवताओंमें जीवत्व तथा सगुणत्व होनेके कारण वेदके मतमें उनकी मूर्तिमात्रमें ही पूजा मान्य है। इसी प्रकार उन देवताओंके आविर्भावके समय उनका समग्र साकार रूप प्रकट होता है, जबकि भगवान् सदाशिवके दर्शनमें साकार और निराकार (ज्योतिरूप) दोनोंकी ही प्राप्ति होती है ॥ २२-२३१/२ ॥

सनत्कुमार बोले—हे महाभाग ! आपने भगवान् शिव तथा दूसरे देवताओंके पूजनमें लिंग और वेरके प्रचारका जो रहस्य विभागपूर्वक बताया है, वह यथार्थ है। इसलिये लिंग और वेरकी आदि उत्पत्तिका जो उत्तम वृत्तान्त है, उसीको मैं इस समय सुनना चाहता हूँ। हे योगीन्द्र ! लिंगके प्राकट्यका रहस्य सूचित करनेवाला प्रसंग मुझे सुनाइये ॥ २४-२५१/२ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे वत्स ! आपके प्रति प्रीतिके कारण मैं यथार्थ रूपमें वर्णन करता हूँ, सुनिये। लोकविख्यात पूर्वकल्पके बहुत दिन व्यतीत हो जानेपर एक समय महात्मा ब्रह्मा और विष्णु परस्पर लड़ने लगे ॥ २६-२७ ॥

उन दोनोंके अभिमानको मिटानेके लिये [त्रिगुणातीत] परमेश्वरने उनके मध्यमें निष्कल स्तम्भके रूपमें अपना स्वरूप प्रकट किया ॥ २८ ॥

जगत्का कल्याण करनेकी इच्छासे उस स्तम्भसे निराकार परमेश्वर शिवने अपने लिंग—चिह्नके कारण लिंगका आविर्भाव किया ॥ २९ ॥

उसी समयसे लोकमें परमेश्वर शंकरके निर्गुण लिंग और सगुण मूर्तिकी पूजा प्रचलित हुई ॥ ३० ॥

शिवके अतिरिक्त अन्य देवोंकी मूर्तिमात्रकी ही प्रकल्पना हुई। वे देव-प्रतिमाएँ पूजित हो नियत शुभ कल्याणको देनेवाली हुई और शिवका लिंग तथा उनकी प्रतिमा दोनों ही भोग और मोक्षको देनेवाली हुई ॥ ३१ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

ब्रह्मा और विष्णुके भयंकर युद्धको देखकर देवताओंका कैलास-शिखरपर गमन

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा कदाचिद्योगीन्द्र विष्णुर्विषधरासनः ।
सुष्वाप परया भूत्या स्वानुगैरपि संवृतः ॥ १

यदृच्छयागतस्तत्र ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
अपृच्छत् पुण्डरीकाक्षं शयानं सर्वसुन्दरम् ॥ २
कस्त्वं पुरुषवच्छेषे दृष्ट्वा मामपि दृप्तवत् ।
उत्तिष्ठ वत्स मां पश्य तव नाथमिहागतम् ॥ ३
आगतं गुरुमाराध्यं दृष्ट्वा यो दृप्तवच्चरेत् ।
द्रोहिणस्तस्य मूढस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ४

इति श्रुत्वा वचः क्रुद्धो बहिः शान्तवदाचरन् ।
स्वस्ति ते स्वागतं वत्स तिष्ठ पीठमितो विश ॥ ५

किमु ते व्यग्रवद्वक्त्रं विभाति विषमेक्षणम् ।

ब्रह्मोवाच

वत्स विष्णो महामानमागतं कालवेगतः ॥ ६
पितामहश्च जगतः पाता च तव वत्सक ।

विष्णुरुवाच

मत्थं जगदिदं वत्स मनुषे त्वं हि चोरवत् ॥ ७

मन्नाभिकमलाज्ञातः पुत्रस्त्वं भाषसे वृथा ।

नन्दिकेश्वर उवाच

एवं हि वदतोस्तत्र मुग्धयोरजयोस्तदा ॥ ८
अहमेव वरो न त्वमहं प्रभुरहं प्रभुः ।
परस्परं हन्तुकामौ चक्रतुः समरोद्यमम् ॥ ९

युयुधातेऽमरौ वीरौ हंसपक्षीन्द्रवाहनौ ।
वैरज्या वैष्णवाश्वैवं मिथो युयुधिरे तदा ॥ १०

नन्दिकेश्वर बोले—हे योगीन्द्र ! प्राचीनकालमें किसी समय शेषशायी भगवान् विष्णु अपनी पराशक्ति लक्ष्मीजी तथा अन्य पार्षदोंसे घिरे हुए शयन कर रहे थे ॥ १ ॥

उसी समय ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने अपनी इच्छासे वहाँ आकर उन परम सुन्दर कमलनेत्र विष्णुसे पूछा—तुम कौन हो, जो मुझे आया देखकर भी उद्धत पुरुषके समान सो रहे हो ? हे वत्स ! उठो और यहाँ अपने प्रभु—मुझे देखो । जो पुरुष अपने श्रेष्ठ गुरुजनको आया हुआ देखकर उद्धतके समान आचरण करता है, उस मूर्ख गुरुद्रोहीके लिये प्रायश्चित्तका विधान किया गया है ॥ २—४ ॥

[ब्रह्माके] इस वचनको सुनकर क्रोधित होनेपर भी बाहरसे शान्त व्यवहार करते हुए भगवान् विष्णु बोले—हे वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा स्वागत है । आओ, इस आसनपर बैठो । तुम्हारे मुखमण्डलसे व्यग्रता प्रदर्शित हो रही है और तुम्हारे नेत्र विपरीत भाव सूचित कर रहे हैं ॥ ५१/२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स ! हे विष्णो ! कालके प्रभावसे तुम्हें बहुत अभिमान हो गया है । हे वत्स ! मैं जगत्का पितामह और तुम्हारा रक्षक हूँ ॥ ६१/२ ॥

विष्णु बोले—हे वत्स ! यह जगत् मुझमें ही स्थित है, तुम केवल चोरके समान दूसरेकी सम्पत्तिको व्यर्थ अपनी मानते हो ! तुम मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हो, अतः तुम मेरे पुत्र हो, तुम तो व्यर्थ बातें कह रहे हो ? ॥ ७१/२ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—[हे मुने!] उस समय वे अजन्मा ब्रह्मा और विष्णु मोहवश ‘मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं स्वामी हूँ, तुम नहीं’—इस प्रकार बोलते-बोलते परस्पर एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये ॥ ८-९ ॥

हंस और गरुडपर आरूढ होकर वे दोनों वीर ब्रह्मा और विष्णु युद्ध करने लगे, तब ब्रह्मा और विष्णुके गण भी परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १० ॥

तावद्विमानगतयः सर्वा वै देवजातयः ।
दिदृक्षवः समाजगमुः समरं तं महाद्वृतम् ॥ ११

क्षिपन्तः पुष्पवर्षाणि पश्यन्तः स्वैरमप्वरे ।
सुपर्णवाहनस्तत्र क्रुद्धो वै ब्रह्मवक्षसि ॥ १२

मुमोच बाणानसहानस्त्रांश्च विविधान् बहून् ।
मुमोचाथ विधिः क्रुद्धो विष्णोरुरसि दुःसहान् ॥ १३

बाणाननलसङ्काशानस्त्रांश्च बहुशस्तदा ।
तदाशचर्यमिति स्पष्टं तयोः समरगोचरम् ॥ १४

समीक्ष्य दैवतगणाः शशंसुर्भृशमाकुलाः ।
ततो विष्णुः सुसंकुद्धः श्वसन् व्यसनकर्णितः ॥ १५

माहेश्वरास्त्रं मतिमान् सन्दधे ब्रह्मणोपरि ।
ततो ब्रह्मा भृशं कुद्धः कम्पयन् विश्वमेव हि ॥ १६

अस्त्रं पाशुपतं घोरं सन्दधे विष्णुवक्षसि ।
ततस्तदुत्थितं व्योम्नि तपनायुतसन्निभम् ॥ १७

सहस्रमुखमत्युग्रं चण्डवातभयङ्करम् ।
अस्त्रद्वयमिदं तत्र ब्रह्मविष्णवोर्भयङ्करम् ॥ १८

इत्थं बभूव समरं ब्रह्मविष्णवोः परस्परम् ।
ततो देवगणाः सर्वे विषण्णा भृशमाकुलाः ।
ऊचुः परस्परं तात राजक्षोभे यथा द्विजाः ॥ १९

सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः ।
यस्मात् प्रवर्तते तस्मै ब्रह्मणे च त्रिशूलिने ॥ २०

अशक्यमन्यैर्यदनुग्रहं विना
तृणक्षयोऽप्यत्र यदृच्छया क्वचित् ॥ २१

इति देवा भयं कृत्वा विचिन्वन्तः शिवक्षयम् ।
जगमुः कैलासशिखरं यत्रास्ते चन्द्रशेखरः ॥ २२

दृष्टवैवमप्मरा हृष्टाः पदं तत्पारमेश्वरम् ।
प्रणेमुः प्रणवाकारं प्रविष्टास्तत्र सद्गनि ॥ २३

उस समय सभी देवगण उस परम अद्भुत युद्धको देखनेकी इच्छासे विमानपर चढ़कर वहाँ पहुँच गये। [वहाँ आकर] आकाशमें अवस्थित हो पुष्पकी वृष्टि करते हुए वे युद्ध देखने लगे। गरुडवाहन भगवान् विष्णुने क्रुद्ध होकर ब्रह्माके वक्षःस्थलपर अनेक प्रकारके असंख्य दुःसह बाणों और अस्त्रोंसे प्रहार किया ॥ ११-१२ १/२ ॥

तब विधाता भी क्रुद्ध होकर विष्णुके हृदयपर अग्निके समान बाण और अनेक प्रकारके अस्त्रोंको छोड़ने लगे। उस समय देवगण उन दोनोंका वह अद्भुत युद्ध देखकर अतिशय व्याकुल हो गये और ब्रह्मा तथा विष्णुकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३-१४ १/२ ॥

तत्पश्चात् युद्धमें तत्पर महाज्ञानी विष्णुने अतिशय क्रोधके साथ श्रान्त हो दीर्घ निःश्वास लेते हुए ब्रह्माको लक्ष्यकर भयंकर माहेश्वर अस्त्रका संधान किया। ब्रह्माने भी अतिशय क्रोधमें आकर विष्णुके हृदयको लक्ष्यकर ब्रह्माण्डको कम्पित करते हुए भयंकर पाशुपत अस्त्रका प्रयोग किया। ब्रह्मा और विष्णुके सूर्यके समान हजारों मुखवाले, अत्यन्त उग्र तथा प्रचण्ड आँधीके समान भयंकर दोनों अस्त्र आकाशमें प्रकट हो गये ॥ १५-१८ ॥

इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुका आपसमें भयंकर युद्ध होने लगा। हे तात! उस युद्धको देखकर सभी देवगण राजविष्णवके समय ब्राह्मणोंके समान अतिशय दुखी और व्याकुल होकर परस्पर कहने लगे—जिसके द्वारा सृष्टि, स्थिति, प्रलय, तिरोभाव तथा अनुग्रह होता है और जिसकी कृपाके बिना इस भूमण्डलपर अपनी इच्छासे एक तृणका भी विनाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है, उन त्रिशूलधारी ब्रह्मस्वरूप महेश्वरको नमस्कार है ॥ १९-२१ ॥

भयभीत देवतागण इस प्रकार सोचते हुए चन्द्रशेखर महेश्वर जहाँ विराजमान थे, उस शिवस्थान कैलास शिखरपर गये ॥ २२ ॥

शिवके उस प्रणवाकार स्थानको देखकर वे देवता प्रसन्न हुए और प्रणाम करके भवनमें प्रविष्ट हुए ॥ २३ ॥

तेऽपि तत्र सभामध्ये मण्डपे मणिविष्ट्रे।
 विराजमानमुमया ददृशुर्देवपुङ्गवम् ॥ २४
 सव्योत्तरेतरपदं तदर्पितकराम्बुजम्।
 स्वगणैः सर्वतो जुष्टं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ २५
 वीज्यमानं विशेषज्ञैः स्त्रीजनैस्तीव्रभावनैः।
 शंस्यमानं सदा वेदैरनुगृह्णन्तमीश्वरम् ॥ २६
 दृष्ट्वैवमीशममराः सन्तोषसलिलेक्षणाः।
 दण्डवद् दूरतो वत्स नमश्चकुर्महागणाः ॥ २७

तानवेक्ष्य पतिर्देवान् समीपे चाह्यद् गणैः।
 अथ संहादयन् देवान् देवो देवशिखामणिः।
 अवोचदथ गम्भीरं वचनं मधुमङ्गलम् ॥ २८

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां देवानां कैलासयात्रावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
 ॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें देवताओंकी कैलासयात्राका
 वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान् शंकरका ब्रह्मा और विष्णुके युद्धमें अग्निस्तम्भरूपमें प्राकट्य, स्तम्भके
 आदि और अन्तकी जानकारीके लिये दोनोंका प्रस्थान

ईश्वर उवाच

वत्सकाः स्वस्ति वः कच्चिद्वृत्ते मम शासनात्।
 जगच्च देवतावंशः स्वस्वकर्मणि किं न वा ॥ १
 प्रागेव विदितं युद्धं ब्रह्मविष्णवोर्मया सुराः।
 भवतामभितापेन पौनरुक्त्येन भाषितम् ॥ २
 इति सस्मितया माध्व्या कुमार परिभाषया।
 समतोषयदम्बायाः स पतिस्तसुरव्रजम् ॥ ३
 अथ युद्धाङ्गणं गन्तुं हरिधात्रोरधीश्वरः।
 आज्ञापयद्विशानां शतं तत्रैव संसदि ॥ ४

ततो वाद्यं बहुविधं प्रयाणाय परेशितुः।
 गणेश्वराश्च सन्द्वा नानावाहनभूषणाः ॥ ५

उन्होंने वहाँ सभाके मध्यमें स्थित मण्डपमें देवी पार्वतीके साथ रत्नमय आसनपर विराजमान देवश्रेष्ठ शंकरका दर्शन किया। वे वाम चरणके ऊपर दक्षिण चरण और उसके ऊपर वाम करकमल रखे हुए थे, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थे और चारों ओर शिवगण उनकी सेवामें तत्पर थे, शिवके प्रति उत्तम भक्तिभाववाली कुशल रमणियाँ उनपर चँचर डुला रही थीं, वेद निरन्तर उनकी स्तुति कर रहे थे और वे अनुग्रहकी दृष्टिसे सबको देख रहे थे। हे वत्स ! उन महेश्वर शिवको देखकर आनन्दाश्रुसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले देवताओंने दूरसे ही उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ २४—२७ ॥

भगवान् शंकरने उन देवोंको देखकर अपने गणोंसे उन्हें समीप बुलवाया और देवशिरोमणि महादेव उन देवताओंको आनन्दित करते हुए अर्थगम्भीर, मंगलमय तथा सुमधुर वचन कहने लगे ॥ २८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां देवानां कैलासयात्रावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
 ॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें देवताओंकी कैलासयात्राका
 वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

शिवजी बोले—हे पुत्रो ! आपकी कुशल तो है ? मेरे अनुशासनमें जगत् तथा देवश्रेष्ठ अपने-अपने कार्योंमें लगे तो हैं ? हे देवताओ ! ब्रह्मा और विष्णुके बीच होनेवाले युद्धका वृत्तान्त तो मुझे पहलेसे ही ज्ञात था; आपलोगोंने [यहाँ आनेका] परिश्रम करके उसे पुनः बताया है। हे सनत्कुमार ! उमापति शंकरने इस प्रकार मुसकराते हुए मधुर वाणीमें उन देवगणोंको सन्तुष्ट किया ॥ १—३ ॥

इसके बाद महादेवजीने ब्रह्मा और विष्णुकी युद्धस्थलीमें जानेके लिये अपने सैकड़ों गणोंको वहीं सभामें आज्ञा दी। तब महादेवजीके प्रयाणके लिये अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे और उनके गणाध्यक्ष भी अनेक प्रकार से सज-धजकर वाहनोंपर सवार होकर जानेके लिये तैयार हो गये ॥ ४-५ ॥

प्रणवाकारमाद्यन्तं पञ्चमण्डलमण्डितम्।
आरुरोह रथं भद्रमम्बिकापतिरीश्वरः।
ससूनुगणमिन्द्राद्याः सर्वेऽप्यनुययुः सुराः॥ ६

चित्रध्वजव्यजनचामरपृष्ठवर्ष-

सङ्गीतनृत्यनिवैरपि वाद्यवर्गैः।
सम्मानितः पशुपतिः परया च देव्या
साकं तयोः समरभूमिमगात् ससैन्यः॥ ७

समीक्ष्य तु तयोर्युद्धं निगूढोऽभ्रं समास्थितः।
समाप्तवाद्यनिर्घोषः शान्तोरुगणनिःस्वनः॥ ८
अथ ब्रह्माच्युतौ वीरौ हन्तुकामौ परस्परम्।
माहेश्वरेण चास्त्रेण तथा पाशुपतेन च॥ ९
अस्त्रज्वालैरथो दग्धं ब्रह्मविष्णवोर्जगत्रयम्।
ईशोऽपि तं निरीक्ष्याथ ह्यकालप्रलयं भृशम्॥ १०
महानलस्ताभविभीषणाकृति-

र्बभूव तम्भ्यतले स निष्कलः॥ ११

ते अस्त्रे चापि सज्वाले लोकसंहरणक्षमे।
निपेततुः क्षणेनैव ह्याविर्भूते महानले॥ १२

दृष्ट्वा तदद्भुतं चित्रमस्त्रशान्तिकरं शुभम्।
किमेतदद्भुताकारमित्यूचुश्च परस्परम्॥ १३

अतीन्द्रियमिदं स्तम्भमग्निरूपं किमुत्थितम्।
अस्योर्ध्वमपि चाधश्च आवयोर्लक्ष्यमेव हि॥ १४
इति व्यवस्थितौ वीरौ मिलितौ वीरमानिनौ।
तत्परौ तत्परीक्षार्थं प्रतस्थातेऽथ सत्वरम्॥ १५
आवयोर्मिश्रयोस्तत्र कार्यमेकं न सम्भवेत्।
इत्युक्त्वा सूकरतनुर्विष्णुस्तस्यादिमीयिवान्॥ १६
तथा ब्रह्मा हंसतनुस्तदन्तं वीक्षितुं ययौ।
भित्त्वा पातालनिलयं गत्वा दूरतरं हरिः॥ १७
नापश्यत्तस्य संस्थानं स्तम्भस्यानलवर्चसः।
श्रान्तः स सूकरहरिः प्राप पूर्वं रणाङ्गणम्॥ १८

भगवान् उमापति पाँच मण्डलोंसे सुशोभित आगेसे पीछेतक प्रणव (३०)-की आकृतिवाले सुन्दर रथपर आरूढ़ हो गये। इस प्रकार पुत्रों और गणोंसहित प्रस्थान किये हुए शिवजीके पीछे-पीछे इन्द्र आदि सभी देवगण भी चल पड़े। विचित्र ध्वजाएँ, पंखे, चँवर, पुष्पवृष्टि, संगीत, नृत्य और वाद्योंसे सम्मानित पशुपति भगवान् शिव भगवती उमाके साथ सेनासहित उन दोनों (ब्रह्मा और विष्णु)-की युद्धभूमिमें आ पहुँचे॥ ६-७॥

उन दोनोंका युद्ध देखकर शिवजीने गणोंका कोलाहल तथा वाद्योंकी ध्वनि बन्द करा दी तथा वे छिपकर आकाशमें स्थित हो गये। उधर शूरवीर ब्रह्मा और विष्णु एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे माहेश्वरास्त्र और पाशुपतास्त्रका परस्पर सन्धान कर रहे थे। ब्रह्मा और विष्णुके अस्त्रोंकी ज्वालासे तीनों लोक जलने लगे। निराकार भगवान् शंकर इस अकाल प्रलयको आया देखकर एक भयंकर विशाल अग्निस्तम्भके रूपमें उन दोनोंके बीच प्रकट हो गये॥ ८-११॥

संसारको नष्ट करनेमें सक्षम वे दोनों दिव्यास्त्र अपने तेजसहित उस महान् अग्निस्तम्भके प्रकट होते ही तत्क्षण शान्त हो गये। दिव्यास्त्रोंको शान्त करनेवाले इस आश्चर्यकारी तथा शुभ (अग्निस्तम्भ)-को देखकर सभी लोग परस्पर कहने लगे कि यह अद्भुत आकारवाला (स्तम्भ) क्या है ?॥ १२-१३॥

यह दिव्य अग्निस्तम्भ कैसे प्रकट हो गया ? इसकी ऊँचाईकी और इसकी जड़की हम दोनों जाँच करें—ऐसा एक साथ निश्चय करके वे दोनों अभिमानी वीर उसकी परीक्षा करनेको तत्पर हो गये और शीघ्रतापूर्वक चल पड़े। हम दोनोंके साथ रहनेसे यह कार्य सम्पन्न नहीं होगा—ऐसा कहकर विष्णुने सूकरका रूप धारण किया और उसकी जड़की खोजमें चले। उसी प्रकार ब्रह्मा भी हंसका रूप धारण करके उसका अन्त खोजनेके लिये चल पड़े। पाताललोकको खोदकर बहुत दूरतक जानेपर भी विष्णुको उस अग्निके समान तेजस्वी स्तम्भका आधार नहीं दीखा। तब थक-हारकर सूकराकृति विष्णु रणभूमिमें वापस आ गये॥ १४-१८॥

अथ गच्छस्तु व्योम्ना च विधिस्तात पिता तव ।
दर्श केतकीपुष्पं किञ्चिद्विच्युतमद्भुतम्॥ १९
अतिसौरभ्यमप्लानं बहुवर्षच्युतं तथा ।
अन्वीक्ष्य च तयोः कृत्यं भगवान् परमेश्वरः॥ २०
परिहासं तु कृतवान्कम्पनाच्चलितं शिरः ।
तस्मात्तावनुगृह्णातुं च्युतं केतकमुत्तमम्॥ २१
किं त्वं पतसि पुष्पेश पुष्पराट केन वै धृतः ।
आदिमस्याप्रमेयस्य स्तम्भमध्याच्युतश्चिरम्॥ २२
न सम्पश्यामि तस्मात्त्वं जह्नाशामन्तदर्शने ।
अस्यान्तस्य च सेवार्थं हंसमूर्तिरिहागतः॥ २३
इतः परं सखे मेऽद्य त्वया कर्तव्यमीप्सितम् ।
मया सह त्वया वाच्यमेतद्विष्णोश्च सनिधौ॥ २४
स्तम्भान्तो वीक्षितो धात्रा तत्र साक्ष्यहमच्युत ।
इत्युक्त्वा केतकं तत्र प्रणाम पुनः पुनः ।
असत्यमपि शस्तं स्यादापदीत्यनुशासनम्॥ २५

समीक्ष्य तत्राच्युतमायतश्रमं
प्रनष्ठहर्षं तु ननर्त हर्षात् ।
उवाच चैनं परमार्थमच्युतं
षण्डान्तवादः स विधिस्ततोऽच्युतम्॥ २६
स्तम्भाग्रमेतत् समुदीक्षितं हरे
तत्रैव साक्षी ननु केतकं त्विदम् ।
ततोऽवदत्तत्र हि केतकं मृषा
तथेति तद्वात् वचस्तदन्तिके॥ २७
हरिश्च तत्सत्यमितीव चिन्तयं-
श्चकार तस्मै विधये नमः स्वयम् ।
षोडशैरुपचारैश्च पूजयामास तं विधिम्॥ २८

हे तात ! आकाशमार्गसे जाते हुए आपके पिता ब्रह्माजीने मार्गमें अद्भुत केतकी (केवडे)-के पुष्पको गिरते देखा । अनेक वर्षोंसे गिरते रहनेपर भी वह ताजा और अति सुगन्धयुक्त था । ब्रह्मा और विष्णुके इस विग्रहपूर्ण कृत्यको देखकर भगवान् परमेश्वर हँस पड़े, जिससे कम्पनके कारण उनका मस्तक हिला और वह श्रेष्ठ केतकी पुष्प उन दोनोंके ऊपर कृपा करनेके लिये गिरा ॥ १९—२१ ॥

[ब्रह्माजीने उससे पूछा—] हे पुष्पराज ! तुम्हें किसने धारण कर रखा था और तुम क्यों गिर रहे हो ? [केतकीने उत्तर दिया—] इस पुरातन और अप्रमेय स्तम्भके बीचसे मैं बहुत समयसे गिर रहा हूँ । फिर भी इसके आदिको नहीं देख सका । अतः आप भी इस स्तम्भका अन्त देखनेकी आशा छोड़ दें ॥ २२१/२ ॥

[ब्रह्माजीने कहा—] मैं तो हंसका रूप लेकर इसका अन्त देखनेके लिये यहाँ आया हूँ । अब हे मित्र ! मेरा एक अभिलिष्ट काम तुम्हें करना पड़ेगा । विष्णुके पास मेरे साथ चलकर तुम्हें इतना कहना है कि ‘ब्रह्माने इस स्तम्भका अन्त देख लिया है । हे अच्युत ! मैं इस बातका साक्षी हूँ’ केतकीसे ऐसा कहकर ब्रह्माने उसे बार-बार प्रणाम किया और कहा कि आपत्कालमें तो मिथ्या भाषण भी प्रशस्त माना गया है—यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ २३—२५ ॥

वहाँ अति परिश्रमसे थके और [स्तम्भका अन्त न मिलनेसे] उदास विष्णुको देखकर ब्रह्मा प्रसन्नतासे नाच उठे और षण्ठ (नपुंसक)-के समान पूर्ण बातें बनाकर अच्युत विष्णुसे इस प्रकार कहने लगे—हे हरे ! मैंने इस स्तम्भका अग्रभाग देख लिया है; इसका साक्षी यह केतकी पुष्प है । तब उस केतकीने भी झूठ ही विष्णुके समक्ष कह दिया कि ब्रह्माकी बात यथार्थ है ॥ २६-२७ ॥

विष्णुने उस बातको सत्य मानकर ब्रह्माको स्वयं प्रणाम किया और उनका षोडशोपचार पूजन किया ॥ २८ ॥

विधिं प्रहर्तुं शठमग्निलङ्घतः
स ईश्वरस्तत्र बभूव साकृतिः।
समुत्थितः स्वामिविलोकनात् पुनः
प्रकम्पपाणिः परिगृह्य तत्पदम्॥ २९

आद्यन्तहीनवपुषि त्वयि मोहबुद्ध्या
भूयान् विमर्श इह नावति कामनोत्थः।
स त्वं प्रसीद करुणाकर कश्मलं नौ
मृष्टं क्षमस्व विहितं भवतैव केल्या॥ ३०

ईश्वर उवाच
वत्स प्रसन्नोऽस्मि हरे यतस्त्व-
मीशत्वमिच्छन्पि सत्यवाक्यम्।
ब्रूयास्ततस्ते भविता जनेषु
साम्यं मया सत्कृतिरप्यलप्सि॥ ३१
इतः परं ते पृथगात्मनश्च
क्षेत्रप्रतिष्ठोत्सवपूजनं च॥ ३२

इति देवः पुरा प्रीतः सत्येन हरये परम्।
ददौ स्वसाम्यमत्यर्थं देवसङ्के च पश्यति॥ ३३
इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायामनलस्तम्भाविष्कारवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितायां अग्निस्तम्भके ग्राकट्यका
वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

उसी समय कपटी ब्रह्माको दण्डित करनेके लिये उस प्रज्वलित स्तम्भ लिंगसे महेश्वर प्रकट हो गये। तब परमेश्वरको प्रकट हुआ देखकर विष्णु उठ खड़े हुए और काँपते हाथोंसे उनका चरण पकड़कर कहने लगे। हे करुणाकर! आदि और अन्तसे रहित शरीरवाले आप परमेश्वरके विषयमें मैंने मोहबुद्धिसे बहुत विचार किया; किंतु कामनाओंसे उत्पन्न वह विचार सफल नहीं हुआ। अतः आप हमपर प्रसन्न हों, हमारे पापको नष्ट करें और हमें क्षमा करें; यह सब आपकी लीलासे ही हुआ है॥ २९-३०॥

ईश्वर बोले—हे वत्स! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; क्योंकि श्रेष्ठताकी कामना होनेपर भी तुमने सत्य वचनका पालन किया, इसलिये लोगोंमें तुम मेरे समान ही प्रतिष्ठा और सत्कार प्राप्त करोगे। हे हरे अबसे आपकी पृथक् मूर्ति बनाकर पुण्य क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठित की जायगी और उसका उत्सवपूर्वक पूजन होगा॥ ३१-३२॥

इस प्रकार परमेश्वरने विष्णुकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर देवताओंके सामने उन्हें अपनी समानता प्रदान की थी॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितायां अग्निस्तम्भके ग्राकट्यका
वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

भगवान् शंकरद्वारा ब्रह्मा और केतकी पुष्पको शाप देना और पुनः अनुग्रह प्रदान करना

नन्दिकेश्वर उवाच

ससर्जार्थं महादेवः पुरुषं कश्चिदद्धुतम्।
भैरवाख्यं भ्रुवोर्मध्याद् ब्रह्मदर्पजिघांसया॥ १
स वै तदा तत्र पतिं प्रणम्य शिवमङ्गणे।
किं कार्यं करवाण्यत्र शीघ्रमाज्ञापय प्रभो॥ २

शिव उवाच

वत्स योऽयं विधिः साक्षाज्जगतामाद्यदैवतम्।
नूनमर्चय खड़गेन तिग्मेन जवसा परम्॥ ३

नन्दिकेश्वर बोले—तदुपरान्त महादेव शिवजीने ब्रह्माके गर्वको मिटानेकी इच्छासे अपनी भृकुटीके मध्यसे भैरव नामक एक अद्भुत पुरुषको उत्पन्न किया। उस भैरवने रणभूमिमें अपने स्वामी शिवजीको प्रणाम करके पूछा कि हे प्रभो! आप शीघ्र आज्ञा दें, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?॥ १-२॥

शिवजी बोले—हे वत्स! ये जो ब्रह्मा हैं, वे इस सृष्टिके आदि देवता हैं, तुम वेगपूर्वक तीक्ष्ण तलवारसे इनकी पूजा करो अर्थात् इनका वध कर दो॥ ३॥

स वै गृहीत्वैककरेण केशं
तत्पञ्चमं दृप्तमसत्यभाषिणम्।
छित्त्वा शिरो ह्यस्य निहन्तुमुद्यतः
प्रकम्पयन् खडगमतिस्फुटं करैः॥ ४

पिता तबोत्सृष्टविभूषणाम्बर-
स्वगुतरीयामलकेशसंहतिः ।
प्रवातरम्भेव लतेव चञ्चलः
पपात वै भैरवपादपङ्कजे॥ ५

तावद्विधिं तात दिदृक्षुरच्युतः
कृपालुरस्मत्पतिपादपल्लवम् ।
निषिद्ध्य बाष्पैरवदत् कृताञ्जलि-
र्यथा शिशुः स्वं पितरं कलाक्षरम्॥ ६

अच्युत उवाच

त्वया प्रयत्नेन पुरा हि दत्तं
यदस्य पञ्चाननमीश चिह्नम्।
तस्मात् क्षमस्वाद्यमनुग्रहार्ह
कुरु प्रसादं विधये ह्यमुष्मै॥ ७

इत्यर्थितोऽच्युतेनेशस्तुष्टः सुरगणाङ्गणे।
निवर्तयामास तदा भैरवं ब्रह्मदण्डतः॥ ८

अथाह देवः कितवं विधिं विगतकन्थरम्।
ब्रह्मस्त्वर्मणाकाङ्क्षी शठेशत्वं समास्थितः॥ ९

नातस्ते सत्कृतिलोके भूयात् स्थानोत्सवादिकम्।

ब्रह्मोवाच

स्वामिन् प्रसीदाद्य महाविभूते
मन्ये वरं मे शिरसः प्रमोक्षम्॥ १०

नमस्तुभ्यं भगवते बन्धवे विश्वयोनये।
सहिष्णवे च दोषाणां शम्भवे शैलधन्वने॥ ११

ईश्वर उवाच

अराजभयमेतद्वै जगत् सर्वं नशिष्यति।
ततस्त्वं जहि दण्डार्ह वह लोकधुरं शिशो॥ १२

वरं ददामि ते तत्र गृहाण दुर्लभं परम्।
वैतानिकेषु गृहेषु यज्ञेषु च भवान् गुरुः॥ १३

निष्फलस्त्वद्वते यज्ञः साङ्गश्च सहदक्षिणः।

तब भैरव एक हाथसे [ब्रह्माके] केश पकड़कर असत्य भाषण करनेवाले उनके उद्धत पाँचवें सिरको काटकर हाथोंमें तलवार भाँजते हुए उन्हें मार डालनेके लिये उद्यत हुए॥ ४॥

[हे सनत्कुमार!] तब आपके पिता अपने आभूषण, वस्त्र, माला, उत्तरीय एवं निर्मल बालोंके बिखर जानेसे औंधीमें झकझोरे हुए केलेके पेड़ और लतागुल्मोंके समान कम्पित होकर भैरवके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। हे तात! तब ब्रह्माकी रक्षा करनेकी इच्छासे कृपालु विष्णुने मेरे स्वामी भगवान् शंकरके चरणकमलोंको अपने अश्रु-जलसे भिंगोते हुए हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की, जैसे एक छोटा बालक अपने पिताके प्रति दूटी-फूटी वाणीमें करता है॥ ५-६॥

अच्युत बोले—[हे ईश!] आपने ही पहले कृपापूर्वक इन ब्रह्माको पंचाननरूप प्रदान किया था। इसलिये ये आपके अनुग्रह करनेयोग्य हैं, इनका अपराध क्षमा करें और इनपर प्रसन्न हों॥ ७॥

भगवान् अच्युतके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर शिवजीने प्रसन्न होकर देवताओंके सामने ही ब्रह्माको दण्डित करनेसे भैरवको रोक दिया। शिवजीने एक सिरसे विहीन कपटी ब्रह्मासे कहा—हे ब्रह्म! तुम श्रेष्ठता पानेके चक्करमें शठेशत्वको प्राप्त हो गये हो। इसलिये संसारमें तुम्हारा सत्कार नहीं होगा और तुम्हारे मन्दिर तथा पूजनोत्सव आदि नहीं होंगे॥ ८-९ १/२॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाविभूतिसम्पन्न स्वामिन्! आप मुझपर प्रसन्न होइये; मैं [आपकी कृपासे] अपने सिरके कटनेको भी आज श्रेष्ठ समझता हूँ। विश्वके कारण, विश्वबन्धु, दोषोंको सह लेनेवाले और पर्वतके समान कठोर धनुष धारण करनेवाले आप भगवान् शिवको नमस्कार है॥ १०-११॥

ईश्वर बोले—हे वत्स! अनुशासनका भय नहीं रहनेसे यह सारा संसार नष्ट हो जायगा। अतः तुम दण्डनीयको दण्ड दो और इस संसारकी व्यवस्था चलाओ। तुम्हें एक परम दुर्लभ वर भी देता हूँ, जिसे ग्रहण करो। अग्निहोत्र आदि वैतानिक और गृह्य यज्ञोंमें आप ही श्रेष्ठ रहेंगे। सर्वांगपूर्ण और पुष्कल दक्षिणावाला यज्ञ भी आपके बिना निष्फल होगा॥ १२-१३ १/२॥

अथाह देवः कितवं केतकं कूटसाक्षिणम् ॥ १४
 रे रे केतकं दुष्टस्त्वं शठ दूरमितो व्रज ।
 ममापि प्रेम ते पुष्ये माभूत्पूजास्वितः परम् ॥ १५
 इत्युक्ते तत्र देवेन केतकं देवजातयः ।
 सर्वा निवारयामासुस्तत्याश्वर्ददन्यतस्तदा ॥ १६

केतक उवाच

नमस्ते नाथ मे जन्म निष्फलं भवदाज्ञया ।
 सफलं क्रियतां तात क्षम्यतां मम किल्बिषम् ॥ १७
 ज्ञानाज्ञानकृतं पापं नाशयत्येव ते स्मृतिः ।
 तादृशे त्वयि दृष्टे मे मिथ्यादोषः कुतो भवेत् ॥ १८

तथा स्तुतस्तु भगवान् केतकेन सभास्थले ।
 न मे त्वद्वारणं योग्यं सत्यवागहमीश्वरः ॥ १९
 मदीयास्त्वां धरिष्यन्ति जन्म ते सफलं ततः ।
 त्वं वै वितानव्याजेन ममोपरि भविष्यसि ॥ २०

इत्यनुगृह्य भगवान् केतकं विधिमाधवौ ।
 विरराज सभामध्ये सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥ २१

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवानुग्रहवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवकी कृपाका
 वर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका
 परिचय देते हुए लिंगपूजनका महत्व बताना

नन्दिकेश्वर उवाच

तत्रान्तरे तौ च नाथं प्रणम्य विधिमाधवौ ।
 बद्धाञ्जलिपुटौ तूष्णीं तस्थतुर्दक्षवामगौ ॥ १
 तत्र संस्थाप्य तौ देवं सकुटुम्बं वरासने ।
 पूजयामासतुः पूज्यं पुण्यैः पुरुषवस्तुभिः ॥ २

नन्दिकेश्वर बोले—वे दोनों—ब्रह्मा और विष्णु
 भगवान् शंकरको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर
 उनके दायें-बायें भागमें चुपचाप खड़े हो गये । फिर
 उन्होंने वहाँ [साक्षात् प्रकट] पूजनीय महादेवजीको
 कुटुम्बसहित श्रेष्ठ आसनपर स्थापित करके पवित्र
 पुरुष-वस्तुओंद्वारा उनका पूजन किया ॥ १-२ ॥

पौरुषं प्राकृतं वस्तु ज्ञेयं दीर्घाल्पकालिकम् ।
हारनूपुरकेयूरकिरीटमणिकुण्डलैः ॥ ३

यज्ञसूत्रोत्तरीयस्वकक्षौममाल्याङ्गुलीयकैः ।
पुष्टताम्बूलकर्पूरचन्दनागुरुलेपनैः ॥ ४

धूपदीपसितच्छत्रव्यजनध्वजचामरैः ।
अन्यैर्दिव्योपहारैश्च वाङ्मनोतीतवैभवैः ॥ ५

पतियोग्यैः पश्चलभ्यैस्तौ समार्चयतां पतिम् ।
यद्यच्छेष्टतमं वस्तु पतियोग्यं हितध्वज ॥ ६
तद्वस्त्वखिलमीशोऽपि पारम्पर्यचिकीर्षया ।
सभ्यानां प्रददौ हृष्टः पृथक् तत्र यथाक्रमम् ॥ ७

कोलाहलो महानासीत्तत्र तद्वस्तु गृह्णताम् ।
तत्रैव ब्रह्मविष्णुभ्यां चार्चितः शङ्करः पुरा ॥ ८

प्रसन्नः प्राह तौ नम्नौ सस्मितं भक्तिवर्धनः ।
ईश्वर उवाच

तुष्टोऽहमद्य वां वत्सौ पूजयास्मिन् महादिने ॥ ९

दिनमेतत्ततः पुण्यं भविष्यति महत्तरम् ।
शिवरात्रिरिति ख्याता तिथिरेषा मम प्रिया ॥ १०

एतत्काले तु यः कुर्यात् पूजां मल्लिङ्गवेरयोः ।
कुर्यात् स जगतः कृत्यं स्थितिसर्गादिकं पुमान् ॥ ११

दीर्घकालतक अविकृतभावसे सुस्थित रहनेवाली वस्तुओंको पुरुषवस्तु कहते हैं और अल्पकालतक ही टिकनेवाली वस्तुएँ प्राकृतवस्तु कहलाती हैं—इस तरह वस्तुके ये दो भेद जानने चाहिये । [किन पुरुषवस्तुओंसे उन्होंने भगवान् शिवका पूजन किया, यह बताया जाता है—] हार, नूपुर, केयूर, किरीट, मणिमय कुण्डल, यज्ञोपवीत, उत्तरीय वस्त्र, पुष्टमाला, रेशमी वस्त्र, हार, मुद्रिका (अङ्गूठी), पुष्ट, ताम्बूल, कपूर, चन्दन एवं अगुरुका अनुलेप, धूप, दीप, श्वेतछत्र, व्यजन, ध्वजा, चँवर तथा अन्यान्य दिव्य उपहारोंद्वारा उन दोनोंने अपने स्वामी महेश्वरका पूजन किया, जिन महेश्वरका वैभव वाणी और मनकी पहुँचसे परे था, जो केवल पशुपति परमात्माके ही योग्य थे और जिन्हें पशु (बद्ध जीव) नहीं पा सकते थे ॥ ३—५९/२ ॥

हे सनत्कुमार! स्वामीके योग्य जो-जो उत्तम वस्तुएँ थीं, उन सभी वस्तुओंका भगवान् शंकरने भी प्रसन्नतापूर्वक यथोचित रूपसे सभासदोंके बीच वितरण कर दिया, जिससे यह श्रेष्ठ परम्परा बनी रहे कि प्राप्त पदार्थोंका वितरण आश्रितोंमें करना चाहिये । उन वस्तुओंको ग्रहण करनेवाले सभासदोंमें वहाँ कोलाहल मच गया । इस प्रकार वहाँ पहले ही ब्रह्मा तथा विष्णुसे पूजित हुए भक्तिवर्धक भगवान् शिव विनप्र उन दोनों देवताओंसे हँसकर कहने लगे ॥ ६—८९/२ ॥

ईश्वर बोले—हे पुत्रो! आजका दिन महान् है । इसमें तुम्हारे द्वारा जो आज मेरी पूजा हुई है, इससे मैं तुमलोगोंपर बहुत प्रसन्न हूँ । इसी कारण यह दिन परम पवित्र और महान्-से-महान् होगा । आजकी यह तिथि शिवरात्रिके नामसे विख्यात होकर मेरे लिये परम प्रिय होगी ॥ ९-१० ॥

इस समय जो मेरे लिंग (निष्कल—अंग-आकृतिसे रहित निराकार स्वरूपके प्रतीक) और वेर (सकल—साकाररूपके प्रतीक विग्रह)-की पूजा करेगा, वह पुरुष जगत्की सृष्टि और पालन आदि कार्य भी कर सकता है ॥ ११ ॥

शिवरात्रावहोरात्रं निराहारो जितेन्द्रियः ।
अर्चयेद्वा यथान्यायं यथाबलमवश्चकः ॥ १२

यत्फलं मम पूजायां वर्षमेकं निरन्तरम् ।
तत्फलं लभते सद्यः शिवरात्रौ मदर्चनात् ॥ १३

मद्वर्मवृद्धिकालोऽयं चन्द्रकाल इवाम्बुधेः ।
प्रतिष्ठाद्युत्सवो यत्र मामको मङ्गलायनः ॥ १४

यत्युनः स्तम्भरूपेण स्वाविरासमहं पुरा ।
स कालो मार्गशीर्षे तु स्यादाद्र्वक्षमर्थकौ ॥ १५

आद्र्यायां मार्गशीर्षे तु यः पश्येन्मामुमासखम् ।
मद्वेरमपि वा लिङ्गं स गुहादपि मे प्रियः ॥ १६

अलं दर्शनमात्रेण फलं तस्मिन् दिने शुभे ।
अभ्यर्चनं चेदधिकं फलं वाचामगोचरम् ॥ १७

रणरङ्गतलेऽमुष्मिन् यदहं लिङ्गवर्षणा ।
जृष्मितो लिङ्गवत्तस्मालिङ्गस्थानमिदं भवेत् ॥ १८

अनाद्यन्तमिदं स्तम्भमणुमात्रं भविष्यति ।
दर्शनार्थं हि जगतां पूजनार्थं हि पुत्रकौ ॥ १९

भोगावहमिदं लिङ्गं भुक्तिमुक्त्येकसाधनम् ।
दर्शनस्पर्शनध्यानाज्जन्तुनां जन्ममोचनम् ॥ २०

अनलाचलसङ्काशं यदिदं लिङ्गमुत्थितम् ।
अरुणाचलमित्येव तदिदं ख्यातिमेष्यति ॥ २१

अत्र तीर्थं च बहुधा भविष्यति महत्तरम् ।
मुक्तिरप्यत्र जन्तुनां वासेन मरणेन च ॥ २२

जो शिवरात्रिको दिन-रात निराहार एवं जितेन्द्रिय रहकर अपनी शक्तिके अनुसार निष्कपट भावसे मेरे यथोचित पूजा करेगा, उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो । एक वर्षतक निरन्तर मेरी पूजा करनेपर जो फल मिलता है, वह सारा फल केवल शिवरात्रिको मेरा पूजन करनेसे मनुष्य तत्काल प्राप्त कर लेता है ॥ १२-१३ ॥

जैसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय समुद्रकी वृद्धिका अवसर है, उसी प्रकार यह शिवरात्रि तिथि मेरे धर्मकी वृद्धिका समय है । इस तिथिमें मेरी स्थापना आदिका मंगलमय उत्सव होना चाहिये ॥ १४ ॥

हे वत्सो ! पहले मैं जब ज्योतिर्मय स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ था, उस समय मार्गशीर्षमासमें आद्रा नक्षत्र था । अतः जो पुरुष मार्गशीर्षमासमें आद्रा नक्षत्र होनेपर मुझ उमापतिका दर्शन करता है अथवा मेरी मूर्ति या लिंगकी ही झाँकीका दर्शन करता है, वह मेरे लिये कार्तिकेयसे भी अधिक प्रिय है । उस शुभ दिन मैं दर्शनमात्रसे पूरा फल प्राप्त होता है । यदि [दर्शनके साथ-साथ] मेरा पूजन भी किया जाय तो उसका अधिक फल प्राप्त होता है, जिसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता ॥ १५—१७ ॥

इस रणभूमिमें मैं लिंगरूपसे प्रकट होकर बहुत बड़ा हो गया था । अतः उस लिंगके कारण यह भूतल लिंगस्थानके नामसे प्रसिद्ध हुआ । हे पुत्रो ! जगत्के लोग इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिये यह अनादि और अनन्त ज्योतिःस्तम्भ अत्यन्त छोटा हो जायगा । यह लिंग सब प्रकारके भोगोंको सुलभ करानेवाला और भोग तथा मोक्षका एकमात्र साधन होगा । इसका दर्शन, स्पर्श तथा ध्यान प्राणियोंको जन्म और मृत्युसे छुटकारा दिलानेवाला होगा ॥ १८—२० ॥

अग्निके पहाड़-जैसा जो यह शिवलिंग यहाँ प्रकट हुआ है, इसके कारण यह स्थान अरुणाचल नामसे प्रसिद्ध होगा । यहाँ अनेक प्रकारके बड़े-बड़े तीर्थ प्रकट होंगे । इस स्थानमें निवास करने या मरनेसे जीवोंका मोक्ष हो जायगा ॥ २१-२२ ॥

रथोत्सवादिकल्याणं जनावासं तु सर्वतः।
अत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥ २३

मत्क्षेत्रादपि सर्वस्मात् क्षेत्रमेतन्महत्तरम्।
अत्र संस्मृतिमात्रेण मुक्तिर्भवति देहिनाम्॥ २४

तस्मान्महत्तरमिदं क्षेत्रमत्यन्तशोभनम्।
सर्वकल्याणसम्पूर्णं सर्वमुक्तिकरं शुभम्॥ २५

अर्चयित्वात्र मामेव लिङ्गे लिङ्गिन्मीश्वरम्।
सालोक्यं चैव सामीप्यं सारूप्यं सार्थिरेव च॥ २६
सायुज्यमिति पञ्चैते क्रियादीनां फलं मतम्।
सर्वेऽपि यूयं सकलं प्राप्यथाशु मनोरथम्॥ २७

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्यनुगृह्य भगवान् विनीतौ विधिमाधवौ।
यत्पूर्वं प्रहतं युद्धे तयोः सैन्यं परस्परम्॥ २८
तदुत्थापयदत्यर्थं स्वशक्त्यामृतधारया।
तयोर्माँद्यं च वैरं च व्यपनेतुमुवाच तौ॥ २९

सकलं निष्कलं चेति स्वरूपद्वयमस्ति मे।
नान्यस्य कस्यचित्तस्मादन्यः सर्वोऽप्यनीश्वरः॥ ३०
पुरस्तात् स्तम्भरूपेण पश्चाद् रूपेण चार्भकौ।
ब्रह्मत्वं निष्कलं प्रोक्तमीशत्वं सकलं तथा॥ ३१
द्वयं ममैव संसिद्धं न मदन्यस्य कस्यचित्।
तस्मादीशत्वमन्येषां युवयोरपि न क्वचित्॥ ३२

तदज्ञानेन वां वृत्तमीशमानं महाद्वृतम्।
तन्निराकर्तुमत्रैवमुत्थितोऽहं रणक्षितौ॥ ३३

त्यजतं मानमात्मीयं मयीशे कुरुतं मतिम्।
मत्प्रसादेन लोकेषु सर्वोऽप्यर्थः प्रकाशते॥ ३४

गुरुकृत्यर्वज्ञकं तत्र प्रमाणं वा पुनः पुनः।
ब्रह्मतत्त्वमिदं गूढं भवत्प्रीत्या भणाम्यहम्॥ ३५

रथोत्सवादिके आयोजनसे यहाँ सर्वत्र अनेक लोग कल्याणकारी रूपसे निवास करेंगे। इस स्थानपर किया गया दान, हवन तथा जप—यह सब करोड़गुना फल देनेवाला होगा। यह क्षेत्र मेरे सभी क्षेत्रोंमें श्रेष्ठतम होगा। यहाँ मेरा स्मरण करनेमात्रसे प्राणियोंकी मुक्ति हो जायगी। अतः यह परम रमणीय क्षेत्र अति महत्त्वपूर्ण है। यह सभी प्रकारके कल्याणोंसे पूर्ण, शुभ और सबको मुक्ति प्रदान करनेवाला होगा॥ २३—२५॥

इस लिंगमें मुझ लिंगेश्वरकी अर्चना करके मनुष्य सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्थि और सायुज्य—इन पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंका अधिकार प्राप्त कर लेगा। आपलोगोंको भी शीघ्र ही सभी मनोवांछित फल प्राप्त होंगे॥ २६-२७॥

नन्दिकेश्वर बोले—इस प्रकार विनम्र ब्रह्मा तथा विष्णुपर अनुग्रह करके भगवान् शंकरने उनके जो सैन्यदल परस्पर युद्धमें मारे गये थे, उन्हें अपनी अमृतवर्षिणी शक्तिसे जीवित कर दिया। उन दोनों ब्रह्मा और विष्णुकी मूढ़ता और [पारस्परिक] वैरको मिटानेके लिये भगवान् शंकर उन दोनोंसे कहने लगे—॥ २८-२९॥

मेरे दो रूप हैं—‘सकल’ और ‘निष्कल’। दूसरे किसीके ऐसे रूप नहीं हैं, अतः [मेरे अतिरिक्त] अन्य सब अनीश्वर हैं। हे पुत्रो! पहले मैं स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ, फिर अपने साक्षात्-रूपसे। ‘ब्रह्मभाव’ मेरा ‘निष्कल’ रूप और ‘महेश्वरभाव’ सकल रूप है। ये दोनों मेरे ही सिद्धरूप हैं; मेरे अतिरिक्त किसी दूसरेके नहीं हैं। इस कारण तुम दोनोंका अथवा अन्य किसीका भी ईश्वरत्व कभी नहीं है॥ ३०—३२॥

अज्ञानके कारण तुम दोनोंको जो यह ईशत्वका आश्चर्यजनक अभिमान उत्पन्न हो गया था, उसे दूर करनेके लिये ही मैं इस रणभूमिमें प्रकट हुआ हूँ। उस अपने अभिमानको छोड़ दो और मुझ परमेश्वरमें [अपनी] बुद्धि स्थिर करो। मेरे अनुग्रहसे ही सभी लोकोंमें सब कुछ प्रकाशित होता है। इस गृद्ध ब्रह्मतत्त्वको तुम्हारे प्रति प्रेम होनेके कारण ही मैं बता रहा हूँ॥ ३३—३५॥

अहमेव परं ब्रह्म मत्स्वरूपं कलाकलम्।
ब्रह्मत्वादीश्वरश्चाहं कृत्यं मेऽनुग्रहादिकम्॥ ३६

बृहत्त्वाद् बृहणत्वाच्च ब्रह्माहं ब्रह्मकेशवौ।
समत्वाद्वयापकत्वाच्च तथैवात्माहमर्भकौ॥ ३७

अनात्मानः परे सर्वे जीवा एव न संशयः।
अनुग्रहाद्यं सर्गान्तं जगत्कृत्यं च पञ्चकम्॥ ३८

ईशत्वादेव मे नित्यं न मदन्यस्य कस्यचित्।
आदौ ब्रह्मत्वबुद्ध्यर्थं निष्कलं लिङ्गमुत्थितम्॥ ३९

तस्मादज्ञातमीशत्वं व्यक्तं द्योतयितुं हि वाम्।
सकलोऽहमतो जातः साक्षादीशस्तु तत्क्षणात्॥ ४०

सकलत्वमतो ज्ञेयमीशत्वं मयि सत्वरम्।
यदिदं निष्कलं स्तम्भं मम ब्रह्मत्वबोधकम्॥ ४१

लिङ्गलक्षणयुक्तत्वान्मम लिङ्गं भवेदिदम्।
तदिदं नित्यमध्यर्यं युवाभ्यामत्र पुत्रकौ॥ ४२

मदात्मकमिदं नित्यं मम सानिध्यकारणम्।
महत्पूज्यमिदं नित्यमभेदालिङ्गलिङ्गिनोः॥ ४३

यत्र प्रतिष्ठितं येन मदीयं लिङ्गमीदृशम्।
तत्र प्रतिष्ठितः सोऽहमप्रतिष्ठोऽपि वत्सकौ॥ ४४

मत्साम्यमेकलिङ्गस्य स्थापने फलमीरितम्।
द्वितीये स्थापिते लिङ्गे मदैक्यं फलमेव हि॥ ४५

मैं ही परब्रह्म हूँ। कल (सगुण) और अकल (निर्गुण)—ये दोनों मेरे ही स्वरूप हैं। मेरा स्वरूप ब्रह्मरूप होनेके कारण मैं ईश्वर भी हूँ। जीवोंप अनुग्रह आदि करना मेरा कार्य है। हे ब्रह्मा और केशव! सबसे बृहत् और जगत्की वृद्धि करनेवाला होनेके कारण मैं ‘ब्रह्म’ हूँ। हे पुत्रो! सर्वत्र समरूपसे स्थित और व्यापक होनेसे मैं ही सबका आत्मा हूँ॥ ३६-३७॥

अन्य सभी जीव अनात्मरूप हैं; इसमें सन्देह नहीं है। सर्गसे लेकर अनुग्रहतक (आत्मा या ईश्वरसे भिन्न) जो जगत्-सम्बन्धी पाँच कृत्य हैं, वे सदा मेरे ही हैं, मेरे अतिरिक्त दूसरे किसीके नहीं हैं; क्योंकि मैं ही सबका ईश्वर हूँ। पहले मेरी ब्रह्मरूपताका बोध करानेके लिये ‘निष्कल’ लिंग प्रकट हुआ था, फिर तुम दोनोंको अज्ञात ईश्वरत्वका स्पष्ट साक्षात्कार करानेके लिये मैं साक्षात् जगदीश्वर ही ‘सकल’ रूपमें तत्काल प्रकट हो गया। अतः मुझमें जो ईश्वर है, उसे ही मेरा सकलरूप जानना चाहिये तथा जो यह मेरा निष्कल स्तम्भ है, वह मेरे ब्रह्मस्वरूपका बोध करानेवाला है। हे पुत्रो! लिंग-लक्षणयुक्त होनेके कारण यह मेरा ही लिंग (चिह्न) है। तुम दोनोंको प्रतिदिन यहाँ रहकर इसका पूजन करना चाहिये। यह मेरा ही स्वरूप है और मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। लिंग और लिंगीमें नित्य अभेद होनेके कारण मेरे इस लिंगका महान् पुरुषोंको भी पूजन करना चाहिये॥ ३८-४३॥

हे वत्सो! जहाँ-जहाँ जिस किसीने मेरे लिंगको स्थापित कर लिया, वहाँ मैं अप्रतिष्ठित होनेपर भी प्रतिष्ठित हो जाता हूँ॥ ४४॥

मेरे एक लिंगकी स्थापना करनेका फल मेरी समानताकी प्राप्ति बताया गया है। एकके बाद दूसरे शिवलिंगकी भी स्थापना कर दी गयी, तब फलरूपसे मेरे साथ एकत्व (सायुज्य मोक्ष)-रूप फल प्राप्त होता है॥ ४५॥

लिङ्गं प्राधान्यतः स्थाप्य तथा वेरं तु गौणकम्।
लिङ्गाभावे न तत्क्षेत्रं सवेरमपि सर्वतः ॥ ४६

प्रधानतया शिवलिंगकी ही स्थापना करनी चाहिये। मूर्तिकी स्थापना उसकी अपेक्षा गौण है। शिवलिंगके अभावमें सब ओरसे मूर्तियुक्त होनेपर भी वह स्थान क्षेत्र नहीं कहलाता ॥ ४६ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवस्य महेश्वराभिधानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवके महेश्वरत्वका वर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः

सृष्टि, स्थिति आदि पाँच कृत्योंका प्रतिपादन, प्रणव एवं पंचाक्षर-मन्त्रकी महत्ता,
ब्रह्मा-विष्णुद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान होना

ब्रह्मविष्णु ऊचतुः

सर्गादिपञ्चकृत्यस्य लक्षणं ब्रूहि नौ प्रभो।

शिव उवाच

मत्कृत्यबोधनं गुह्यं कृपया प्रब्रवीमि वाम् ॥ १

सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः।
पञ्चैव मे जगत्कृत्यं नित्यसिद्धमजाच्युतौ ॥ २

सर्गः संसारसंरम्भस्तत्प्रतिष्ठा स्थितिर्मता।
संहारो मर्दनं तस्य तिरोभावस्तदुल्कमः ॥ ३

तन्मोक्षोऽनुग्रहस्तन्मे कृत्यमेवं हि पञ्चकम्।
कृत्यमेतद्वहत्यन्यस्तूष्णीं गोपुरबिम्बवत् ॥ ४

सर्गादि यच्चतुःकृत्यं संसारपरिजृम्भणम्।
पञ्चमं मुक्तिहेतुवै नित्यं मयि च सुस्थिरम् ॥ ५

तदिदं पञ्चभूतेषु दृश्यते मामकैर्जनैः।
सृष्टिर्भूमौ स्थितिस्तोये संहारः पावके तथा ॥ ६

तिरोभावोऽनिले तद्वदनुग्रह इहाम्बरे।
सृज्यते धरया सर्वमद्धिः सर्वं प्रवर्धते ॥ ७

अद्यंते तेजसा सर्वं वायुना चापनीयते।
व्योम्नानुगृह्यते सर्वं ज्ञेयमेवं हि सूरिभिः ॥ ८

ब्रह्मा और विष्णु बोले—हे प्रभो! हम दोनोंको सृष्टि आदि पाँच कृत्योंका लक्षण बताइये ॥ १/२ ॥

शिवजी बोले—मेरे कृत्योंको समझना अत्यन्त गहन है, तथापि मैं कृपापूर्वक तुम दोनोंको उनके विषयमें बता रहा हूँ। हे ब्रह्मा और अच्युत! सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—ये पाँच ही मेरे जगत्-सम्बन्धी कार्य हैं, जो नित्यसिद्ध हैं। संसारकी रचनाका जो आरम्भ है, वह 'सर्ग' है। मुझसे पालित होकर सृष्टिका सुस्थिररूपसे रहना ही उसकी 'स्थिति' कहा गया है। उसका विनाश ही 'संहार' है। प्राणोंका उल्कमण ही 'तिरोभाव' है। इन सबसे छुटकारा मिल जाना ही मेरा 'अनुग्रह' है। इस प्रकार मेरे पाँच कृत्य हैं। इन मेरे कर्तव्योंको चुपचाप अन्य पंचभूतादि वहन करते रहते हैं, जैसे जलमें पड़नेवाले गोपुर-बिम्बमें आवागमन होता रहता है ॥ १—४ ॥

सृष्टि आदि जो चार कृत्य हैं, वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं। पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह मोक्षका हेतु है। वह सदा मुझमें ही अचल भावसे स्थिर रहता है। मेरे भक्तजन इन पाँचों कृत्योंको पाँचों भूतोंमें देखते हैं। सृष्टि भूतलमें, स्थिति जलमें, संहार अग्निमें, तिरोभाव वायुमें और अनुग्रह आकाशमें स्थित है। पृथ्वीसे सबकी सृष्टि होती है, जलसे सबकी वृद्धि होती है, आग सबको जला देती है, वायु सबको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है—यह विद्वान् पुरुषोंको जानना चाहिये ॥ ५—८ ॥

पञ्चकृत्यमिदं वोदुं ममास्ति मुखपञ्चकम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पञ्चमं मुखम्॥ ९

युवाभ्यां तपसा लब्धमेतत्कृत्यद्वयं सुतौ।
सुष्टिस्थित्यभिधं भाग्यं मत्तः प्रीतादतिप्रियम्॥ १०

तथा रुद्रमहेशाभ्यामन्यत्कृत्यद्वयं परम्।
अनुग्रहाख्यं केनापि लब्धुं नैव हि शक्यते॥ ११

तत्सर्वं पौर्विकं कर्म युवाभ्यां कालविस्मृतम्।
न तद् रुद्रमहेशाभ्यां विस्मृतं कर्म तादृशम्॥ १२

रूपे वेषे च कृत्ये च वाहने चासने तथा।
आयुधादौ च मत्साम्यमस्माभिस्तत्कृते कृतम्॥ १३

मद्भ्यानविरहाद्वत्सौ मौढ्यं वामेवमागतम्।
मज्जाने सति मैवं स्यान्मानं रूपं महेशवत्॥ १४

तस्मान्मज्जानसिद्ध्यर्थं मन्त्रमोक्तारनामकम्।
इतः परं प्रजपतं मामकं मानभञ्जनम्॥ १५

उपादिशं निजं मन्त्रमोङ्कारमुरुमङ्गलम्।
अँकारो मन्मुखाज्जे प्रथमं मत्प्रबोधकः॥ १६

वाचकोऽयमहं वाच्यो मन्त्रोऽयं हि मदात्मकः।
तदनुस्मरणं नित्यं ममानुस्मरणं भवेत्॥ १७

अकार उत्तरात् पूर्वमुकारः पश्चिमाननात्।
मकारो दक्षिणमुखाद् बिन्दुः प्राङ्-मुखतस्तथा॥ १८

नादो मध्यमुखादेवं पञ्चधासौ विजृभितः।
एकीभूतः पुनस्तद्वदोमित्येकाक्षरोऽभवत्॥ १९

नामरूपात्मकं सर्वं वेदभूतकुलद्वयम्।
व्याप्तमेतेन मन्त्रेण शिवशक्त्योश्च बोधकः॥ २०

इन पाँच कृत्योंका भार वहन करनेके लिये ही मेरे पाँच मुख हैं। चार दिशाओंमें चार मुख हैं और इनके बीचमें पाँचवाँ मुख है। हे पुत्रो! तुम दोनों तपस्या करके प्रसन्न हुए मुझ परमेश्वरसे भाग्यवश सृष्टि और स्थिति नामक दो कृत्य प्राप्त किये हैं। ये दोनों तुम्हें बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार मेरे विभूतिस्वरूप रुद्र और महेश्वरने दो अन्य उत्तम कृत्य—संहार और तिरोभाव मुझसे प्राप्त किये हैं, परंतु अनुग्रह नामक कृत्य कोई नहीं पा सकता॥ ९—११॥

उन सभी पहलेके कर्मोंको तुम दोनोंने समयानुसार भुला दिया। रुद्र और महेश्वर अपने कर्मोंको नहीं भूले हैं, इसलिये मैंने उन्हें अपनी समानता प्रदान की है। वे रूप, वेष, कृत्य, वाहन, आसन और आयुध आदिमें मेरे समान ही हैं॥ १२-१३॥

हे पुत्रो! मेरे ध्यानसे शून्य होनेके कारण तुम दोनोंमें मूढ़ता आ गयी है, मेरा ज्ञान रहनेपर महेशके समान अभिमान और स्वरूप नहीं रहता। इसलिये मेरे ज्ञानकी सिद्धिके लिये मेरे ओंकार नामक मन्त्रका तुम दोनों जप करो, यह अभिमानको दूर करनेवाला है॥ १४-१५॥

पूर्वकालमें मैंने अपने स्वरूपभूत मन्त्रका उपदेश किया है, जो ओंकारके रूपमें प्रसिद्ध है। वह महामंगलकारी मन्त्र है। सबसे पहले मेरे मुखसे ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरूपका बोध करानेवाला है। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह मन्त्र मेरा स्वरूप ही है। प्रतिदिन ओंकारका निरन्तर स्मरण करनेसे मेरा ही सदा स्मरण होता रहता है॥ १६-१७॥

पहले मेरे उत्तरवर्ती मुखसे अकार, पश्चिम मुखसे उकार, दक्षिण मुखसे मकार, पूर्ववर्ती मुखसे बिन्दु तथा मध्यवर्ती मुखसे नाद उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पाँच अवयवोंसे युक्त होकर ओंकारका विस्तार हुआ है। इन सभी अवयवोंसे एकीभूत होकर वह प्रणव ॐ नामक एक अक्षर हो गया। यह नाम रूपात्मक सारा जगत् तथा वेद-वर्णित स्त्री-पुरुषवर्गरूप दोनों कुल इस प्रणव-मन्त्रसे व्याप्त हैं। यह मन्त्र शिव और शक्ति दोनोंका बोधक है॥ १८—२०॥

अस्मात् पञ्चाक्षरं जज्ञे बोधकं सकलस्य तत्।
अकारादिक्रमेणैव नकारादि यथाक्रमम्॥ २१

अस्मात् पञ्चाक्षराज्ञाता मातृकाः पञ्चभेदतः।
तस्माच्छ्वरश्वतुर्वक्त्रात्रिपादायत्रिरेव हि॥ २२

वेदः सर्वस्ततो जज्ञे ततो वै मन्त्रकोटयः।
तत्तन्मन्त्रेण तत्सिद्धिः सर्वसिद्धिरितो भवेत्॥ २३

अनेन मन्त्रकन्देन भोगो मोक्षश्च सिद्ध्यति।
सकला मन्त्रराजानः साक्षाद्भोगप्रदाः शुभाः॥ २४

नन्दिकेश्वर उवाच
पुनस्तयोस्तत्र तिरः पटं गुरुः
प्रकल्प्य मन्त्रं च समादिशत् परम्।
निधाय तच्छीर्ष्णि कराम्बुजं शनै-
रुदद्भुखं संस्थितयोः सहाम्बिकः॥ २५

त्रिरुच्चार्याग्रहीन्मन्त्रं यन्त्रतन्त्रोक्तिपूर्वकम्।
शिष्यौ च तौ दक्षिणायामात्मानं च समार्पयत्॥ २६
प्रबद्धहस्तौ किल तौ तदन्तिके
तमूचतुर्देववरं जगदगुरुम्॥ २७

ब्रह्माच्युतावृचतुः
नमो निष्कलरूपाय नमो निष्कलतेजसे।
नमः सकलनाथाय नमस्ते सकलात्मने॥ २८

नमः प्रणववाच्याय नमः प्रणवलिङ्गिने।
नमः सृष्ट्यादिकर्त्रे च नमः पञ्चमुखाय ते॥ २९

इसी प्रणवसे पंचाक्षरमन्त्रकी उत्पत्ति हुई है, जो मेरे सकल रूपका बोधक है। वह अकारादि क्रमसे और नकारादि क्रमसे क्रमशः प्रकाशमें आया है। [३० नमः शिवाय] इस पंचाक्षरमन्त्रसे मातृकावर्ण प्रकट हुए हैं, जो पाँच भेदवाले हैं।* उसीसे शिरोमन्त्र तथा चार मुखोंसे त्रिपदा गायत्रीका प्राकट्य हुआ है। उस गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और उन वेदोंसे करोड़ों मन्त्र निकले हैं। उन-उन मन्त्रोंसे भिन्न-भिन्न कार्योंकी सिद्धि होती है, परंतु इस प्रणव एवं पंचाक्षरसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। इस मूलमन्त्रसे भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्धि होते हैं। मेरे सकल स्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी मन्त्रराज साक्षात् भोग प्रदान करनेवाले और शुभकारक हैं॥ २१—२४॥

नन्दिकेश्वर बोले—तदनन्तर जगदम्बा पार्वतीके साथ बैठे हुए गुरुवर महादेवजीने उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्रह्मा और विष्णुको परदा करनेवाले वस्त्रसे आच्छादित करके उनके मस्तकपर अपना करकमल रखकर धीरे-धीरे उच्चारण करके उन्हें उत्तम मन्त्रका उपदेश दिया॥ २५॥

यन्त्र-तन्त्रमें बतायी हुई विधिके पालन-पूर्वक तीन बार मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवने उन दोनों शिष्योंको मन्त्रकी दीक्षा दी। तत्पश्चात् उन शिष्योंने गुरुदक्षिणाके रूपमें अपने-आपको ही समर्पित कर दिया और दोनों हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े हो उन देवश्रेष्ठ जगदगुरुका स्तवन किया॥ २६-२७॥

ब्रह्मा और विष्णु बोले—[हे प्रभो!] आप निष्कलरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप निष्कल तेजसे प्रकाशित होते हैं; आपको नमस्कार है। आप सबके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है। आप सर्वात्माको नमस्कार है अथवा सकल-स्वरूप आप महेश्वरको नमस्कार है। आप प्रणवके वाच्यार्थ हैं; आपको नमस्कार है। आप प्रणवलिंग-वाले हैं; आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके पाँच मुख हैं; आपको नमस्कार है। पंचब्रह्मस्वरूप पाँच कृत्यवाले आपको

* अ इ उ ऋ लृ—ये पाँच मूलभूत स्वर हैं तथा व्यंजन भी पाँच-पाँच वर्णोंसे युक्त पाँच वर्गवाले हैं।

पञ्चब्रह्मस्वरूपाय पञ्चकृत्याय ते नमः ।
आत्मने ब्रह्मणे तुभ्यमनन्तगुणशक्तये ॥ ३०

सकलाकलरूपाय शम्भवे गुरवे नमः ।
इति स्तुत्वा गुरुं पद्मब्रह्मा विष्णुश्च नेमतुः ॥ ३१

ईश्वर उवाच

वत्सकौ सर्वतत्त्वं च कथितं दर्शितं च वाम् ।
जपतं प्रणवं मन्त्रं देवीदिष्टं मदात्मकम् ॥ ३२

ज्ञानं च सुस्थिरं भाग्यं सर्वं भवति शाश्वतम् ।
आद्रायां च चतुर्दश्यां तज्जप्यं त्वक्षयं भवेत् ॥ ३३

सूर्यगत्या महाद्रायामेकं कोटिगुणं भवेत् ।
मृगशीर्षान्तिमो भागः पुनर्वस्वादिमस्तथा ॥ ३४

आद्रासिमं सदा ज्ञेयं पूजाहोमादितर्पणे ।
दर्शनं तु प्रभाते च प्रातःसङ्घवकालयोः ॥ ३५

चतुर्दशी तथा ग्राह्णा निशीथव्यापिनी भवेत् ।
प्रदोषव्यापिनी चैव परयुक्ता प्रशस्यते ॥ ३६

लिङ्गं वेरं च मे तुल्यं यजतां लिङ्गमुत्तमम् ।
तस्माल्लिङ्गं परं पूज्यं वेरादपि मुमुक्षुभिः ॥ ३७

लिङ्गमोङ्कारमन्त्रेण वेरं पञ्चाक्षरेण तु ।
स्वयमेव हि सद्द्रव्यैः प्रतिष्ठाप्यं परैरपि ॥ ३८

पूजयेदुपचारैश्च मत्पदं सुलभं भवेत् ।
इति शास्य तथा शिष्यौ तत्रैवान्तर्हितः शिवः ॥ ३९

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां ओंकारोपदेशवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें ओंकारोपदेशका वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

नमस्कार है । आप सबके आत्मा हैं, ब्रह्म हैं, आपके गुण और आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं, आपके नमस्कार है । आपके सकल और निष्कल दो रूप हैं। आप सद्गुरु एवं शम्भु हैं, आपको नमस्कार है । इन पद्मोद्वारा अपने गुरु महेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णुने उनके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ २८—३१ ॥

ईश्वर बोले—हे वत्सो ! मैंने तुम दोनोंसे सारा तत्त्व कहा और दिखा दिया । तुमदोनों देवीके द्वारा उपदिष्ट प्रणव (ॐ), जो मेरा ही स्वरूप है-का निरन्तर जप करो ॥ ३२ ॥

[इसके जपसे] ज्ञान, स्थिर भाग्य—सब कुछ सदाके लिये प्राप्त हो जाता है । आद्रा नक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रणवका जप किया जाय तो वह अक्षय फल देनेवाला होता है । सूर्यकी संक्रान्तिसे युक्त महा-आद्रा नक्षत्रमें एक बार किया हुआ प्रणवजप कोटिगुने जपका फल देता है । मृगशिरा नक्षत्रका अन्तिम भाग तथा पुनर्वसुका आदिभाग पूजा, होम और तर्पण आदिके लिये सद आद्राके समान ही होता है—यह जानना चाहिये । मेरा या मेरे लिंगका दर्शन प्रभातकालमें ही प्रातः तथा संग्रह (मध्याह्नके पूर्व)-कालमें करना चाहिये ॥ ३३—३५ ॥

मेरे दर्शन-पूजनके लिये चतुर्दशी तिथि निशीथव्यापिनी अथवा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये; क्योंकि परवर्तिनी (अमावास्या) तिथिसे संयुक्त चतुर्दशीकी ही प्रशंसा की जाती है । पूजा करनेवालोंके लिये मेरी मूर्ति तथा लिंग दोनों समान हैं, फिर भी मूर्तिकी अपेक्षा लिंगका स्थान श्रेष्ठ है । इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि वे वेर (मूर्ति)-से भी श्रेष्ठ समझकर लिंगका ही पूजन करें । लिंगका ३०कारमन्त्रसे और वेरका पंचाक्षरमन्त्रसे पूजन करना चाहिये । शिवलिंगकी स्वयं ही स्थापना करके अथवा दूसरोंसे भी स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यमय उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये; इससे मेरा पद सुलभ हो जाता है । इस प्रकार उन दोनों शिष्योंको उपदेश देकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ३६—३९ ॥

अथैकादशोऽध्यायः

**शिवलिंगकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजनकी विधिका वर्णन तथा
शिवपदकी प्राप्ति करानेवाले सत्कर्मोंका विवेचन**

ऋषय ऊचुः

कथं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्यं कथं वा तस्य लक्षणम् ।
कथं वा तत्समध्यर्च्च देशे काले च केन हि ॥ १

सूत उवाच

युष्मदर्थं प्रवक्ष्यामि बुध्यतामवधानतः ।
अनुकूले शुभे काले पुण्ये तीर्थे तटे तथा ॥ २

यथेष्टं लिङ्गमारोप्यं यत्र स्यानित्यमर्चनम् ।
पार्थिवेन तथाप्येन तैजसेन यथारुचि ॥ ३

कल्पलक्षणसंयुक्तं लिङ्गं पूजाफलं लभेत् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं सद्यः पूजाफलप्रदम् ॥ ४

चेरे विशिष्यते सूक्ष्मं स्थावरे स्थूलमेव हि ।
सलक्षणं सपीठं च स्थापयेच्छिवनिर्मितम् ॥ ५

मण्डलं चतुरस्त्रं वा त्रिकोणमथवा तथा ।
खट्वाङ्गवन्मध्यसूक्ष्मं लिङ्गपीठं महाफलम् ॥ ६

प्रथमं मृच्छिलादिभ्यो लिङ्गं लोहादिभिः कृतम् ।
येन लिङ्गं तेन पीठं स्थावरे हि विशिष्यते ॥ ७

लिङ्गं पीठं चरे त्वेकं लिङ्गं बाणकृतं विना ।
लिङ्गप्रमाणं कर्तृणां द्वादशाङ्गुलमुत्तमम् ॥ ८

ऋषिगण बोले— [हे सूतजी!] शिवलिंगकी स्थापना कैसे करनी चाहिये, उसका लक्षण क्या है तथा उसकी पूजा कैसे करनी चाहिये, किस देश-कालमें करनी चाहिये और किस द्रव्यके द्वारा उसका निर्माण होना चाहिये ? ॥ १ ॥

सूतजी बोले— [हे महर्षियो!] मैं आपलोगोंके लिये इस विषयका वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर समझिये। अनुकूल एवं शुभ समयमें किसी पवित्र तीर्थमें अथवा नदी आदिके तटपर अपनी रुचिके अनुसार ऐसी जगह शिवलिंगकी स्थापना करनी चाहिये, जहाँ नित्य पूजन हो सके। पार्थिव द्रव्यसे, जलमय द्रव्यसे अथवा धातुमय पदार्थसे अपनी रुचिके अनुसार कल्पोक्त लक्षणोंसे युक्त शिवलिंगका निर्माण करके उसकी पूजा करनेसे उपासकको उस पूजनका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त शिवलिंग तत्काल पूजाका फल देनेवाला होता है ॥ २—४ ॥

यदि चलप्रतिष्ठा करनी हो तो इसके लिये छोटा-सा शिवलिंग और यदि अचलप्रतिष्ठा करनी हो तो स्थूल शिवलिंग श्रेष्ठ माना जाता है। उत्तम लक्षणोंसे युक्त पीठसहित शिवलिंगकी स्थापना करनी चाहिये। शिवलिंगका पीठ मण्डलाकार (गोल), चौकोर, त्रिकोण अथवा खट्वांगके आकारका (ऊपर गोल तथा आगे लम्बा) होना चाहिये। ऐसा लिंगपीठ महान् फल देनेवाला होता है ॥ ५-६ ॥

पहले मिट्टी, प्रस्तर आदिसे अथवा लोहे आदिसे शिवलिंगका निर्माण करना चाहिये। जिस द्रव्यसे शिवलिंगका निर्माण हो, उसीसे उसका पीठ भी बनाना चाहिये—यही स्थावर (अचल प्रतिष्ठावाले) शिवलिंगकी विशेष बात है। चर (चलप्रतिष्ठावाले) शिवलिंगमें भी लिंग और पीठका एक ही उपादान होना चाहिये, किंतु बाणलिंगके लिये यह नियम नहीं है। लिंगकी लम्बाई निर्माणकर्ताके बारह अंगुलके

न्यूनं चेत्कलमल्यं स्यादधिकं नैव दुष्टते ।
कतुरिकाङ्गुलन्यूनं चरेऽपि च तथैव हि ॥ ९

आदौ विमानं शिल्पेन कार्यं देवगणैर्युतम् ।
तत्र गर्भगृहे रम्ये दृढे दर्पणसनिभे ॥ १०

भूषिते नवरत्नैश्च दिग्द्वारे च प्रधानके ।
नीलं रक्तं च वैदूर्यं श्यामं मारकतं तथा ॥ ११

मुक्ताप्रवालगोमेदवज्ञाणि नवरत्नकम् ।
मध्ये लिङ्गं महद् द्रव्यं निःक्षिपेत्सहवैदिके ॥ १२

सम्पूज्य लिङ्गं सद्याद्यैः पञ्चस्थाने यथाक्रमम् ।
अग्रौ च हुत्वा बहुधा हविषा सकुलं च माम् ॥ १३

अभ्यर्च्य गुरुमाचार्यमर्थैः कामैश्च बान्धवम् ।
दद्यादैश्वर्यमर्थिभ्यो जडमप्यजडं तथा ॥ १४

स्थावरं जड़मं जीवं सर्वं सन्तोष्य यत्तः ।
सुवर्णपूरिते शवभे नवरत्नैश्च पूरिते ॥ १५

सद्यादि ब्रह्म चोच्चार्य ध्यात्वा देवं परं शुभम् ।
उदीर्य च महामन्त्रमोक्तारं नादधोषितम् ॥ १६

लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठाप्य लिङ्गं पीठेन योजयेत् ।
लिङ्गं सपीठं निक्षिप्य नित्यलेपेन बन्धयेत् ॥ १७

बराबर होनी चाहिये—ऐसा ही शिवलिंग उत्तम कहा गया है। इससे कम लम्बाई हो तो फलमें कमी आ जाती है, अधिक हो तो कोई दोष नहीं है। चर लिंगमें भी वैसा ही नियम है, उसकी लम्बाई कम-से-कम करतके एक अंगुलके बराबर होनी चाहिये ॥ ७—१ ॥

पहले शिल्पशास्त्रके अनुसार एक विमान या देवालय बनवाये, जो देवगणोंकी मूर्तियोंसे अलंकृत हो। उसका गर्भगृह बहुत ही सुन्दर, सुदृढ़ और दर्पणके समान स्वच्छ हो। उसे नौ प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया गया हो। उसमें पूर्व और पश्चिम दिशामें दो मुख्य द्वार हों। जहाँ शिवलिंगकी स्थापना करनी हो, उस स्थानके गर्तमें नीलम, लाल रत्न, वैदूर्य, श्याम रत्न, मरकत, मोती, मूँगा, गोमेद और हीरा—इन नौ रत्नोंको तथा अन्य महत्वपूर्ण द्रव्योंको वैदिक मन्त्रोंके साथ छोड़े। सद्योजात आदि पाँच वैदिक मन्त्रोंद्वारा शिवलिंगका पाँच स्थानोंमें क्रमशः पूजन करके अग्निमें हविष्यकी अनेक आहुतियाँ दे और परिवारसहित मेरी पूजा करके गुरुस्वरूप आचार्यको धन तथा भाई-बन्धुओंको अभिलिष्ट वस्तुओंसे सन्तुष्ट करे। याचकोंको जड़ (सुवर्ण, गृह एवं भू-सम्पत्ति) तथा चेतन (गौ आदि) वैभव प्रदान करे ॥ १०—१४ ॥

स्थावर-जंगम सभी जीवोंको यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करके एक गड्ढेमें सुवर्ण तथा नौ प्रकारके रत्न भरकर सद्योजातादि* वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करके परम कल्याणकारी महादेवजीका ध्यान करे। तत्पश्चात् नादधोषसे युक्त महामन्त्र ओंकारका उच्चारण करके उक्त गड्ढेमें शिवलिंगकी स्थापना करके उसे पीठसे संयुक्त करे। इस प्रकार पीठयुक्त लिंगकी स्थापना करके उसे नित्य लेप (दीर्घकालतक टिके रहनेवाले मसाले)-से जोड़कर स्थिर करे ॥ १५—१७ ॥

* ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्यहे महादेवाय धीमहि। तनो रुद्रः प्रचोदयात्॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्॥

एवं वेरं च संस्थाप्य तत्रैव परमं शुभम्।
पञ्चाक्षरेण वेरं तु उत्सवार्थं बहिस्तथा ॥ १८

वेरं गुरुभ्यो गृहीयात्साधुभिः पूजितं तु वा।
एवं लिङ्गे च वेरे च पूजा शिवपदप्रदा ॥ १९

पुनश्च द्विविधं प्रोक्तं स्थावरं जड्ममं तथा।
स्थावरं लिङ्गमित्याहुस्तरुगुल्मादिकं तथा ॥ २०

जड्ममं लिङ्गमित्याहुः कृमिकीटादिकं तथा।
स्थावरस्य च शुश्रूषा जड्ममस्य च तर्पणम् ॥ २१

तत्तसुखानुरागेण शिवपूजां विदुर्बुधाः।

पीठमम्बामयं सर्वं शिवलिङ्गं च चिन्मयम् ॥ २२

यथा देवीमुमामङ्के धृत्वा तिष्ठति शङ्करः।
तथा लिङ्गमिदं पीठं धृत्वा तिष्ठति सन्ततम् ॥ २३

एवं स्थाप्य महालिङ्गं पूजयेदुपचारकैः।
नित्यपूजा यथाशक्ति ध्वजादिकरणं तथा ॥ २४

इति संस्थापयेलिङ्गं साक्षाच्छिवपदप्रदम्।
अथवा चरलिङ्गं तु षोडशौपचारकैः ॥ २५

पूजयेच्य यथान्यायं क्रमाच्छिवपदप्रदम्।
आवाहनं चासनं च अर्द्धं पाद्यं तथैव च ॥ २६

इसी प्रकार वहाँ पंचाक्षर मन्त्रसे परम सुन्दर वेर (मूर्ति)-की भी स्थापना करनी चाहिये (सारांश यह कि भूमि-संस्कार आदिकी सारी विधि जैसी लिंगप्रतिष्ठाके लिये कही गयी है, वैसी ही वेर (मूर्ति)-प्रतिष्ठाके लिये भी समझनी चाहिये। अन्तर इतना ही है कि लिंगप्रतिष्ठाके लिये प्रणवमन्त्रके उच्चारणका विधान है, परंतु वेरकी प्रतिष्ठा पंचाक्षरमन्त्रसे करनी चाहिये)। जहाँ लिंगकी प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ भी उत्सवके लिये और बाहर सवारी निकालने आदिके निमित्त वेर (मूर्ति)-को रखना आवश्यक है ॥ १८ ॥

वेरको बाहरसे भी लिया जा सकता है। उसे गुरुजनोंसे ग्रहण करे। बाह्य वेर वही लेनेयोग्य है, जो साधुपुरुषोंद्वारा पूजित हो। इस प्रकार लिंगमें और वेरमें भी की हुई महादेवजीकी पूजा शिवपद प्रदान करनेवाली होती है। स्थावर और जंगमके भेदसे लिंग भी दो प्रकारका कहा गया है। वृक्ष, लता आदिको स्थावर लिंग कहते हैं और कृमि-कीट आदिको जंगम लिंग। सींचने आदिके द्वारा स्थावर लिंगकी सेवा करनी चाहिये और जंगम लिंगको आहार एवं जल आदि देकर तृप्त करना उचित है। उन स्थावर-जंगम जीवोंको सुख पहुँचानेमें अनुरक्त होना भगवान् शिवका पूजन है—ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं। [इस प्रकार चराचर जीवोंको ही भगवान् शंकरके प्रतीक मानकर उनका पूजन करना चाहिये।] ॥ १९—२१ १/२ ॥

सभी पीठ पराप्रकृति जगदम्बाका स्वरूप हैं और समस्त शिवलिंग चैतन्यस्वरूप हैं। जैसे भगवान् शंकर देवी पार्वतीको गोदमें बिठाकर विराजते हैं, उसी प्रकार यह शिवलिंग सदा पीठके साथ ही विराजमान होता है ॥ २२-२३ ॥

इस तरह महालिंगकी स्थापना करके विविध उपचारोंद्वारा उसका पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार नित्य पूजा करनी चाहिये तथा देवालयके पास ध्वजारोपण आदि करना चाहिये। इस प्रकार साक्षात् शिवका पद प्रदान करनेवाले लिंगकी स्थापना करे अथवा चर लिंगमें षोडशोपचारोंद्वारा यथोचित रीतिसे क्रमशः पूजन करे; यह पूजन भी शिवपद प्रदान

तदङ्गाचमनं चैव स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्।
वस्त्रं गन्धं तथा पुष्पं धूपं दीपं निवेदनम्॥ २७

नीराजनं च ताम्बूलं नमस्कारो विसर्जनम्।
अथवाध्यादिकं कृत्वा नैवेद्यान्तं यथाविधि॥ २८

अथाभिषेकं नैवेद्यं नमस्कारं च तर्पणम्।
यथाशक्ति सदा कुर्यात्क्रमाच्छिवपदप्रदम्॥ २९

अथवा मानुषे लिङ्गेऽप्यार्थे दैवे स्वयम्भुवि।
स्थापितेऽपूर्वके लिङ्गे सोपचारं यथा तथा॥ ३०

पूजोपकरणे दत्ते यत्किञ्चित्प्रकारं लिङ्गं।
प्रदक्षिणानमस्कारैः क्रमाच्छिवपदप्रदम्॥ ३१

लिङ्गदर्शनमात्रं वा नियमेन शिवप्रदम्।
मृत्यिष्टगोशकृत्पुष्पैः करवीरेण वा फलैः॥ ३२

गुडेन नवनीतेन भस्मनानैर्यथारुचि।
लिङ्गं यत्नेन कृत्वान्ते यजेत्तदनुसारतः॥ ३३

अङ्गुष्ठादावपि तथा पूजामिच्छन्ति केचन।
लिङ्गकर्मणि सर्वत्र निषेधोऽस्ति न कर्हिचित्॥ ३४

सर्वत्र फलदाता हि प्रयासानुगुणं शिवः।
अथवा लिङ्गदानं वा लिङ्गमौल्यमथापि वा॥ ३५

श्रद्धया शिवभक्ताय दत्तं शिवपदप्रदम्।
अथवा प्रणवं नित्यं जपेद्वासहस्रकम्॥ ३६

सम्मयोश्च सहस्रं वा ज्येयं शिवपदप्रदम्।
जपकाले मकारान्तं मनःशुद्धिकरं भवेत्॥ ३७

करनेवाला है। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, पाद्यांग आचमन, अभ्यंगपूर्वक स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल-समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन—ये सोलह उपचार हैं। अथवा अर्घ्यसे लेकर नैवेद्यतक विधिवत् पूजन करे। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण—ये सब यथाशक्ति नित्य के। इस तरह किया हुआ शिवका पूजन शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है॥ २४—२९॥

अथवा किसी मनुष्यके द्वारा स्थापित शिवलिंगमें, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगमें, देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगमें, अपने-आप प्रकट हुए स्वयम्भूलिंगमें तथा अपने द्वारा नूतन स्थापित हुए शिवलिंगमें भी उपचार-समर्पणपूर्वक जैसे-तैसे पूजन करनेसे या पूजनकी सामग्री देनेसे भी मनुष्य ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सारा फल प्राप्त कर लेता है। क्रमशः परिक्रमा और नमस्कार करनेसे भी शिवलिंग शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है। यदि नियमपूर्वक शिवलिंगका दर्शनमात्र कर लिया जाय तो वह भी कल्याणप्रद होता है। मिट्टी, आटा, गायके गोबर, फूल, कनेरपुष्प, फल, गुड़, मक्खन, भस्म अथवा अन्नसे भी अपनी रुचिके अनुसार शिवलिंग बनाकर तदनुसार उसका पूजन करे॥ ३०—३३॥

कुछ लोग हाथके अँगूठे आदिपर भी पूजा करना चाहते हैं। लिंगका निर्माण कहीं भी करनेमें किसी प्रकारका निषेध नहीं है। भगवान् शिव सर्वत्र ही भक्तके प्रयत्नके अनुसार फल प्रदान कर देते हैं। अथवा श्रद्धापूर्वक शिवभक्तको शिवलिंगका दान या लिंगके मूल्यका दान करनेसे भी शिवलोककी प्राप्ति होती है॥ ३४-३५ १/२॥

अथवा प्रतिदिन दस हजार प्रणवमन्त्रका जप करे अथवा दोनों सम्मयोंके समय एक-एक हजार प्रणवका जप किया करे। यह क्रम भी शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला है—ऐसा जानना चाहिये। जपकालमें मकारान्त प्रणवका उच्चारण मनकी शुद्धि करनेवाला होता है। समाधिमें मानसिक जपका विधान है तथा अन्य सब

समाधौ मानसं प्रोक्तमुपांशु सार्वकालिकम्।
समानप्रणवं चेमं बिन्दुनादयुतं विदुः ॥ ३८

अथ पञ्चाक्षरं नित्यं जपेदयुतमादरात्।
सन्ध्ययोश्च सहस्रं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम् ॥ ३९

प्रणवेनादिसंयुक्तं ब्राह्मणानां विशिष्यते।
दीक्षायुक्तं गुरोग्राह्यं मन्त्रं हृथ फलाप्तये ॥ ४०

कुम्भस्नानं मन्त्रदीक्षां मातृकान्यासमेव च।
ब्राह्मणः सत्यपूतात्मा गुरुज्ञनी विशिष्यते ॥ ४१

द्विजानां च नमः पूर्वमन्येषां च नमोऽन्तकम्।
स्त्रीणां च केचिदिच्छन्ति नमोऽन्तं च यथाविधि ॥ ४२

विप्रस्त्रीणां नमः पूर्वमिदमिच्छन्ति केचन।
पञ्चकोटिजपं कृत्वा सदाशिवसमो भवेत् ॥ ४३

एकद्वित्रिचतुःकोट्या ब्रह्मादीनां पदं ब्रजेत्।
जपेदक्षरलक्षं वा अक्षराणां पृथक्पृथक् ॥ ४४

अथवाक्षरलक्षं वा ज्ञेयं शिवपदप्रदम्।
सहस्रं तु सहस्राणां सहस्रेण दिनेन हि ॥ ४५

जपेन्मन्त्रादिष्टसिद्धिर्नित्यं ब्राह्मणभोजनात्।

समय उपांशु* जप ही करना चाहिये। नाद और बिन्दुसे युक्त ओंकारके उच्चारणको विद्वान् पुरुष समानप्रणव कहते हैं। यदि प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार पंचाक्षर मन्त्रका जप किया जाय अथवा दोनों सन्ध्याओंके समय एक-एक हजारका ही जप किया जाय तो उसे शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला समझना चाहिये ॥ ३६—३९ ॥

ब्राह्मणोंके लिये आदिमें प्रणवसे युक्त पंचाक्षरमन्त्र अच्छा बताया गया है। फलकी प्राप्तिके लिये दीक्षापूर्वक गुरुसे मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। कलशसे किया हुआ स्नान, मन्त्रकी दीक्षा, मातृकाओंका न्यास, सत्यसे पवित्र अन्तःकरणवाला ब्राह्मण तथा ज्ञानी गुरु—इन सबको उत्तम माना गया है ॥ ४०-४१ ॥

द्विजोंके लिये 'नमः शिवाय' के उच्चारणका विधान है। द्विजेतरोंके लिये अन्तमें नमः-पदके प्रयोगकी विधि है अर्थात् वे 'शिवाय नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करें। स्त्रियोंके लिये भी कहीं-कहीं विधिपूर्वक अन्तमें नमः जोड़कर उच्चारणका ही विधान है अर्थात् कोई-कोई ऋषि ब्राह्मणकी स्त्रियोंके लिये नमः-पूर्वक शिवायके जपकी अनुमति देते हैं अर्थात् वे 'नमः शिवाय' का जप करें। पंचाक्षर-मन्त्रका पाँच करोड़ जप करके मनुष्य भगवान् सदाशिवके समान हो जाता है। एक, दो, तीन अथवा चार करोड़का जप करनेसे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा महेश्वरका पद प्राप्त होता है अथवा मन्त्रमें जितने अक्षर हैं, उनका पृथक्-पृथक् एक-एक लाख जप करे अथवा समस्त अक्षरोंका एक साथ ही जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करे। इस तरहके जपको शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला समझना चाहिये। यदि एक हजार दिनोंमें प्रतिदिन एक सहस्र जपके क्रमसे पंचाक्षर-मन्त्रका दस लाख जप पूरा कर लिया जाय और प्रतिदिन ब्राह्मण-भोजन कराया जाय तो उस मन्त्रसे अभीष्ट कार्यकी सिद्धि होती है ॥ ४२—४५ ॥

* मन्त्राक्षरोंका इतने धीमे स्वरमें उच्चारण करे कि उसे दूसरा कोई सुन न सके, ऐसे जपको उपांशु कहते हैं।

अष्टोत्तरसहस्रं वै गायत्रीं प्रातरेव हि ॥ ४६

ब्राह्मणस्तु जपेनित्यं क्रमाच्छिवपदप्रदाम् ।
वेदमन्त्रांश्च सूक्तानि जपेनियममास्थितः ॥ ४७

एकं दशार्णमन्त्रं च शतोनं च तदूर्ध्वकम् ।
अयुतं च सहस्रं च शतमेकं विना भवेत् ॥ ४८

वेदपारायणं चैव ज्ञेयं शिवपदप्रदम् ।
अन्यान्बहुतरान्मन्त्राङ्गपेदक्षरलक्षतः ॥ ४९

एकाक्षरांस्तथा मन्त्राङ्गपेदक्षरकोटितः ।
ततः परं जपेच्चैव सहस्रं भक्तिपूर्वकम् ॥ ५०

एवं कुर्याद्यथाशक्ति क्रमाच्छिवपदं लभेत् ।
नित्यं रुचिकरं त्वेकं मन्त्रमामरणान्तिकम् ॥ ५१

सहस्रमोमिति जपेत् सर्वाभीष्टं शिवाङ्गया ।
पुष्पारामादिकं वापि तथा सम्मार्जनादिकम् ॥ ५२

शिवाय शिवकार्यार्थे कृत्वा शिवपदं लभेत् ।
शिवक्षेत्रे तथा वासं नित्यं कुर्याच्च भक्तिः ॥ ५३

जडानामजडानां च सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदम् ।
तस्माद्वासं शिवक्षेत्रे कुर्यादामरणं बुधः ॥ ५४

लिङ्गाङ्गस्तशतं पुण्यं क्षेत्रे मानुषके विदुः ।
सहस्रारत्निमात्रं तु पुण्यं क्षेत्रे तथार्थके ॥ ५५

ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ बार गायत्रीका जप करे । ऐसा होनेपर गायत्री क्रमशः शिवका पद प्रदान करनेवाली होती है । वेदमन्त्रों और वैदिक सूक्तोंका भी नियमपूर्वक जप करना चाहिये ॥ ४६-४७ ॥

एकाक्षर मन्त्र दस हजार, दशार्ण मन्त्र एक हजार, सौसे कम अक्षरवाले मन्त्र एक सौ और उससे अधिक अक्षरवाले मन्त्र यथाशक्ति एकसे अधिक बार जपने चाहिये ॥ ४८ ॥

वेदोंके पारायणको भी शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला जानना चाहिये । अन्यान्य जो बहुत-से मन्त्र हैं, उनका भी जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करना चाहिये ॥ ४९ ॥

एकाक्षर मन्त्रोंको उसी प्रकार करोड़की संख्यामें जपना चाहिये । अधिक अक्षरवाले मन्त्र हजारकी संख्यामें भक्तिपूर्वक जपने चाहिये ॥ ५० ॥

इस प्रकार जो यथाशक्ति जप करता है, वह क्रमशः शिवपद प्राप्त कर लेता है । अपनी रुचिके अनुसार किसी एक मन्त्रको अपनाकर मृत्युपर्यन्त प्रतिदिन उसका जप करना चाहिये अथवा 'ओम् (ॐ)' इस मन्त्रका प्रतिदिन एक सहस्र जप करना चाहिये । ऐसा करनेपर भगवान् शिवकी आज्ञासे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है ॥ ५१ १/२ ॥

जो मनुष्य भगवान् शिवके लिये फुलवाड़ी या बगीचे आदि लगाता है तथा शिवके सेवाकार्यके लिये मन्दिरमें झाड़ने-बुहारने आदिकी व्यवस्था करता है, वह इस पुण्यकर्मको करके शिवपद प्राप्त कर लेता है । भगवान् शिवके जो [काशी आदि] क्षेत्र हैं, उनमें भक्तिपूर्वक नित्य निवास करे । वे जड़, चेतन सभीको भोग और मोक्ष देनेवाले होते हैं । अतः विद्वान् पुरुषको भगवान् शिवके क्षेत्रमें मृत्युपर्यन्त निवास करना चाहिये ॥ ५२-५४ ॥

मनुष्योंद्वारा स्थापित शिवलिंगसे चारों ओर सौ हाथतक पुण्यक्षेत्र कहा गया है तथा ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगके चारों ओर एक हजार हाथतक पुण्यक्षेत्र होता

दैवलिङ्गे तथा ज्ञेयं सहस्रारत्रिमानतः।
धनुष्प्रमाणसाहस्रं पुण्यं क्षेत्रे स्वयम्भुवि॥ ५६

पुण्यक्षेत्रे स्थिता वापी कूपाद्यं पुष्कराणि च।
शिवगङ्गेति विज्ञेयं शिवस्य वचनं यथा॥ ५७

तत्र स्नात्वा तथा दत्त्वा जपित्वा हि शिवं ब्रजेत्।
शिवक्षेत्रं समाश्रित्य वसेदामरणं तथा॥ ५८

द्वाहं दशाहं मास्यं वा सपिण्डीकरणं तु वा।
आब्दिकं वा शिवक्षेत्रे क्षेत्रे पिण्डमथापि वा॥ ५९

सर्वपापविनिर्मुक्तः सद्यः शिवपदं लभेत्।
अथवा सप्तरात्रं वा वसेद्वा पञ्चरात्रकम्॥ ६०

त्रिरात्रमेकरात्रं वा क्रमाच्छिवपदं लभेत्।
स्ववर्णानुगुणं लोके स्वाचारात्प्राप्नुते नरः॥ ६१

वर्णोद्घारेण भक्त्या च तत्फलातिशयं नरः।
सर्वं कृतं कामनया सद्यः फलमवाप्नुयात्॥ ६२

सर्वं कृतमकामेन साक्षाच्छिवपदप्रदम्।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमहस्त्रिष्वेकतः क्रमात्॥ ६३

प्रातर्विधिकरं ज्ञेयं मध्याह्नं कामिकं तथा।
सायाह्नं शान्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तथैव हि॥ ६४

कालो निशीथो वै प्रोक्तो मध्ययामद्वयं निशि।
शिवपूजा विशेषेण तत्कालेऽभीष्टसिद्धिदा॥ ६५

एवं ज्ञात्वा नरः कुर्वन्यथोक्तफलभाग्भवेत्।
कलौ युगे विशेषेण फलसिद्धिस्तु कर्मणा॥ ६६

है। इसी प्रकार देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगके चारों ओर भी एक हजार हाथतक पुण्यक्षेत्र समझना चाहिये। स्वयम्भू लिंगके चारों ओर तो एक हजार धनुष (चार हजार हाथ)-तक पुण्यक्षेत्र होता है॥ ५५-५६॥

पुण्यक्षेत्रमें स्थित बावड़ी, कुआँ और पोखरे आदिको शिवगंगा समझना चाहिये—भगवान् शिवका ऐसा ही वचन है। वहाँ स्नान, दान और जप करके मनुष्य भगवान् शिवको प्राप्त कर लेता है। अतः मृत्युपर्यन्त शिवके क्षेत्रका आश्रय लेकर रहना चाहिये। जो शिवके क्षेत्रमें अपने किसी मृत-सम्बन्धीका दाह, दशाह, मासिक श्राद्ध, सपिण्डीकरण अथवा वार्षिक श्राद्ध करता है अथवा कभी भी शिवके क्षेत्रमें अपने पितरोंको पिण्ड देता है, वह तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें शिवपद पाता है? अथवा शिवके क्षेत्रमें सात, पाँच, तीन या एक ही रात निवास कर ले। ऐसा करनेसे भी क्रमशः शिवपदकी प्राप्ति होती है॥ ५७—६०^{१/२}॥

लोकमें अपने-अपने वर्णके अनुरूप सदाचारका पालन करनेसे भी मनुष्य शिवपदको प्राप्त कर लेता है। वर्णानुकूल आचरणसे तथा भक्तिभावसे वह अपने सत्कर्मका अतिशय फल पाता है, कामनापूर्वक किये हुए अपने कर्मके अभीष्ट फलको शीघ्र ही पा लेता है। निष्कामभावसे किया हुआ सारा कर्म साक्षात् शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है॥ ६१—६२^{१/२}॥

दिनके तीन विभाग होते हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायाह्न। इन तीनोंमें क्रमशः एक-एक प्रकारके कर्मका सम्पादन किया जाता है। प्रातःकालको शास्त्रविहित नित्यकर्मके अनुष्ठानका समय जानना चाहिये। मध्याह्नकाल सकाम-कर्मके लिये उपयोगी है तथा सायंकाल शान्ति-कर्मके लिये उपयुक्त है—ऐसा जानना चाहिये। इसी प्रकार रात्रिमें भी समयका विभाजन किया गया है। रातके चार प्रहरोंमेंसे जो बीचके दो प्रहर हैं, उन्हें निशीथकाल कहा गया है। विशेषतः उस कालमें की हुई भगवान् शिवकी पूजा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है—ऐसा जानकर कर्म करनेवाला मनुष्य यथोक्त फलका भागी होता है। विशेषतः कलियुगमें कर्मसे ही

उक्तेन केनचिद्गापि हृषिकारविभेदतः ।
सद्वृत्तिः पापभीरुश्वेत्तत्फलमवाज्यात् ॥ ६७

ऋषय ऊचुः

अथ क्षेत्राणि पुण्यानि समासात्कथयस्व नः ।
सर्वाः स्त्रियश्च पुरुषा यान्याश्रित्य पदं लभेत् ॥ ६८
सूत योगिवश्रेष्ठ शिवक्षेत्रागमांस्तथा ।

सूत उवाच

शृणुत श्रद्धया सर्वक्षेत्राणि च तदागमान् ॥ ६९

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवलिङ्गपूजादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवलिङ्गकी पूजादिका
वर्णन नामक ग्याहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

फलकी सिद्धि होती है। अपने-अपने अधिकारके अनुसार ऊपर कहे गये किसी भी कर्मके द्वारा शिवाराधन करनेवाला पुरुष यदि सदाचारी है और पापसे डरता है तो वह उन-उन कर्मोंका पूरा-पूरा फल अवश्य प्राप्त कर लेता है ॥ ६३—६७ ॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! अब आप हमें पुण्यक्षेत्र बताइये, जिनका आश्रय लेकर सभी स्त्री-पुरुष शिवपद प्राप्त कर लें। हे सूतजी! हे योगिवरोंमें श्रेष्ठ! शिवक्षेत्रों तथा शैवागमों (शिवविषयक शास्त्रों) का भी वर्णन कीजिये ॥ ६८ ॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सभी क्षेत्रों और आगमोंका वर्णन श्रद्धापूर्वक सुनिये ॥ ६९ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

मोक्षदायक पुण्यक्षेत्रोंका वर्णन, कालविशेषमें विभिन्न नदियोंके जलमें स्नानके

उत्तम फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः प्राज्ञाः शिवक्षेत्रं विमुक्तिदम् ।
तदागमांस्ततो वक्ष्ये लोकरक्षार्थमेव हि ॥ १

पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा सशैलवनकानना ।

शिवाज्ञया हि पृथिवी लोकं धृत्वा च तिष्ठति ॥ २

तत्र तत्र शिवक्षेत्रं तत्र तत्र निवासिनाम् ।

मोक्षार्थं कृपया देवः क्षेत्रं कल्पितवान्प्रभुः ॥ ३

परिग्रहाद् ऋषीणां च देवानां च परिग्रहात् ।

स्वयम्भूतान्यथान्यानि लोकरक्षार्थमेव हि ॥ ४

तीर्थे क्षेत्रे सदा कार्यं स्नानदानं जपादिकम् ।

अन्यथा रोगदारिद्रियमूकत्वाद्याज्यान्नरः ॥ ५

अथास्मिन्भारते वर्षे प्राप्नोति मरणं नरः ।

स्वयम्भूस्थानवासेन पुनर्मानुष्माज्यात् ॥ ६

सूतजी बोले—हे बुद्धिमान् महर्षियो! मोक्षदायक शिवक्षेत्रोंका वर्णन सुनिये। तत्पश्चात् मैं लोकरक्षाके लिये शिवसम्बन्धी आगमोंका वर्णन करूँगा। पर्वत, वन और कानोंसहित इस पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। भगवान् शिवकी आज्ञासे पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को धारण करके स्थित है। भगवान् शिवने भूतलपर विभिन्न स्थानोंमें वहाँके निवासियोंको कृपापूर्वक मोक्ष देनेके लिये शिवक्षेत्रका निर्माण किया है ॥ १—३ ॥

कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिन्हें देवताओं तथा ऋषियोंने अपना वासस्थान बनाकर अनुगृहीत किया है। इसीलिये उनमें तीर्थत्व प्रकट हो गया है तथा अन्य बहुत-से तीर्थक्षेत्र ऐसे हैं, जो लोकोंकी रक्षाके लिये स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं। तीर्थ और क्षेत्रमें जानेपर मनुष्यको सदा स्नान, दान और जप आदि करना चाहिये; अन्यथा वह रोग, दरिद्रता तथा मूकता आदि दोषोंका भागी होता है। जो मनुष्य इस भारतवर्षके भीतर

क्षेत्रे पापस्य करणं दृढं भवति भूसुराः।
पुण्यक्षेत्रे निवासे हि पापमण्वपि नाचरेत्॥ ७

येन केनाप्युपायेन पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः।
सिन्धोः शतनदीतीरे सन्ति क्षेत्राण्यनेकशः॥ ८

सरस्वती नदी पुण्या प्रोक्ता षष्ठिमुखा तथा।
तत्तत्तीरे वसेत्प्राज्ञः क्रमाद् ब्रह्मपदं लभेत्॥ ९

हिमवद्विरिजा गङ्गा पुण्या शतमुखा नदी।
तत्तीरे चैव काश्यादिपुण्यक्षेत्राण्यनेकशः॥ १०

तत्र तीरं प्रशस्तं हि मृगे मृगबृहस्पतौ।
शोणभद्रो दशमुखः पुण्योऽभीष्टफलप्रदः॥ ११

तत्र स्नानोपवासेन पदं वैनायकं लभेत्।
चतुर्विंशमुखा पुण्या नर्मदा च महानदी॥ १२

तस्यां स्नानेन वासेन पदं वैष्णवमान्यात्।
तमसा द्वादशमुखा रेवा दशमुखा नदी॥ १३

गोदावरी महापुण्या ब्रह्मगोवधनाशिनी।
एकविंशमुखा प्रोक्ता रुद्रलोकप्रदायिनी॥ १४

कृष्णा वेणी पुण्यनदी सर्वपापक्षयावहा।
साष्टादशमुखा प्रोक्ता विष्णुलोकप्रदायिनी॥ १५

तुङ्गभद्रा दशमुखा ब्रह्मलोकप्रदायिनी।
सुवर्णमुखरी पुण्या प्रोक्ता नवमुखा तथा॥ १६

तत्रैव सुप्रजायन्ते ब्रह्मलोकच्युतास्तथा।
सरस्वती च पम्पा च कन्या श्वेतनदी शुभा॥ १७

एतासां तीरवासेन इन्द्रलोकमवान्यात्।
सह्याद्रिजा महापुण्या कावेरीति महानदी॥ १८

स्वयम्भू तीर्थोमें वास करके मरता है, उसे पुनः मनुष्योनि ही प्राप्त होती है। हे ब्राह्मणो! पुण्यक्षेत्रमें पापकर्म किया जाय तो वह और भी दृढ़ हो जाता है। अतः पुण्यक्षेत्रमें निवास करते समय थोड़ा-सा भी पाप न करे। जिस किसी भी उपायसे मनुष्यको पुण्यक्षेत्रमें वास करना चाहिये॥ ४—७१/२॥

सिन्धु और गंगा नदीके तटपर बहुत-से पुण्यक्षेत्र हैं। सरस्वती नदी परम पवित्र और साठ मुखवाली कही गयी है अर्थात् उसकी साठ धाराएँ हैं। जो विद्वान् पुरुष सरस्वतीकी उन-उन धाराओंके तटपर निवास करता है, वह क्रमशः ब्रह्मपदको पा लेता है। हिमालय पर्वतसे निकली हुई पुण्यसलिला गंगा सौ मुखवाली नदी है, उसके तटपर काशी आदि अनेक पुण्यक्षेत्र हैं। वहाँ मकरराशिके सूर्य होनेपर गंगाकी तटभूमि पहलेसे भी अधिक प्रशस्त एवं पुण्यदायक हो जाती है। शोणभद्र नदकी दस धाराएँ हैं, वह बृहस्पतिके मकरराशिमें आनेपर अत्यन्त पवित्र तथा अभीष्ट फल देनेवाला हो जाता है। उस समय वहाँ स्नान और उपवास करनेसे विनायकपदकी प्राप्ति होती है। पुण्यसलिला महानदी नर्मदाके चौबीस मुख (स्रोत) हैं। उसमें स्नान तथा उसके तटपर निवास करनेसे मनुष्यको वैष्णवपदकी प्राप्ति होती है। तमसा नदीके बारह तथा रेवाके दस मुख हैं। परम पुण्यमयी गोदावरीके इक्कीस मुख बताये गये हैं। वह ब्रह्महत्या तथा गोवधके पापका भी नाश करनेवाली एवं रुद्रलोक देनेवाली है। कृष्णवेणी नदीका जल बड़ा पवित्र है। वह नदी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। उसके अठारह मुख बताये गये हैं तथा वह विष्णुलोक प्रदान करनेवाली है। तुङ्गभद्राके दस मुख हैं, वह ब्रह्मलोक देनेवाली है। पुण्यसलिला सुवर्णमुखरीके नौ मुख कहे गये हैं। ब्रह्मलोकसे लौटे हुए जीव उसीके तटपर जन्म लेते हैं। सरस्वती, पम्पा, कन्याकुमारी तथा शुभकारक श्वेत नदी—ये सभी पुण्यक्षेत्र हैं। इनके तटपर निवास करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। सह्य पर्वतसे निकली हुई महानदी कावेरी परम पुण्यमयी है। उसके सत्ताईस मुख बताये गये हैं। वह

सप्तविंशमुखा प्रोक्ता सर्वाभीष्टप्रदायिनी ।
तत्तीरा: स्वर्गदाश्वैव ब्रह्मविष्णुपदप्रदाः ॥ १९

शिवलोकप्रदाः शैवास्तथाभीष्टफलप्रदाः ।
नैमिषे बद्रे स्नायान्मेषगे च गुरौ रवौ ॥ २०

ब्रह्मलोकप्रदं विद्यात्ततः पूजादिकं तथा ।
सिन्धुनद्यां तथा स्नानं सिंहे कर्कटगे रवौ ॥ २१

केदारोदकपानं च स्नानं च ज्ञानदं विदुः ।
गोदावर्या सिंहमासे स्नायात्सिंहबृहस्पतौ ॥ २२

शिवलोकप्रदमिति शिवेनोक्तं तथा पुरा ।
यमुनाशोणयोः स्नायाद् गुरौ कन्यागते रवौ ॥ २३

धर्मलोके दन्तिलोके महाभोगप्रदं विदुः ।
कावेर्याञ्च तथा स्नायात्तुलागे तु रवौ गुरौ ॥ २४

विष्णोर्वचनमाहात्म्यात्सर्वाभीष्टप्रदं विदुः ।
वृश्चिके मासि सम्प्राप्ते तथार्के गुरुवृश्चिके ॥ २५

नर्मदायां नदीस्नानाद्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।
सुवर्णमुखरीस्नानं चापगे च गुरौ रवौ ॥ २६

शिवलोकप्रदमिति ब्रह्मणो वचनं यथा ।
मृगमासि तथा स्नायाज्ञाहव्यां मृगगे गुरौ ॥ २७

शिवलोकप्रदमिति ब्रह्मणो वचनं यथा ।
ब्रह्मविष्णवोः पदे भुक्त्वा तदन्ते ज्ञानमाप्नुयात् ॥ २८

सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है। उसके तर
स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले तथा ब्रह्मा और विष्णुका
पद देनेवाले हैं। कावेरीके जो तट शैवक्षेत्रके अन्तर्गत
हैं, वे अभीष्ट फल देनेके साथ ही शिवलोक प्रदान
करानेवाले भी हैं ॥ ८—१९ १/२ ॥

नैमिषारण्य तथा बद्रिकाश्रममें सूर्य और बृहस्पतिके
मेषराशिमें आनेपर यदि स्नान करे तो उस समय वहाँ
किये हुए स्नान-पूजन आदिको ब्रह्मलोककी प्राप्ति
करानेवाला जानना चाहिये। सिंह और कर्कराशिमें
सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर सिन्धुनदीमें किया हुआ स्नान
तथा केदारतीर्थके जलका पान एवं स्नान ज्ञानदायक
माना गया है ॥ २०-२१ १/२ ॥

जब बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित हों, उस समय
सिंहकी संक्रान्तिसे युक्त भाद्रपदमासमें यदि गोदावरीके
जलमें स्नान किया जाय, तो वह शिवलोककी प्राप्ति
करानेवाला होता है—ऐसा पूर्वकालमें स्वयं भगवान्
शिवने कहा था। जब सूर्य और बृहस्पति कन्याराशिमें
स्थित हों, तब यमुना और शोणभद्रमें स्नान करे। वह
स्नान धर्मराज तथा गणेशजीके लोकमें महान् भोग
प्रदान करानेवाला होता है—यह महर्षियोंकी मान्यता
है। जब सूर्य और बृहस्पति तुलाराशिमें स्थित हों, उस
समय कावेरी नदीमें स्नान करे। वह स्नान भगवान्
विष्णुके वचनकी महिमासे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको
देनेवाला माना गया है। जब सूर्य और बृहस्पति
वृश्चिक राशिपर आ जायें, तब मार्गशीर्षके महीनेमें
नर्मदामें स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।
सूर्य और बृहस्पतिके धनुराशिमें स्थित होनेपर सुवर्णमुखी
नदीमें किया हुआ स्नान शिवलोक प्रदान करानेवाला
होता है, यह ब्रह्माजीका वचन है। जब सूर्य और
बृहस्पति मकरराशिमें स्थित हों, उस समय माघमासमें
गंगाजीके जलमें स्नान करना चाहिये। ब्रह्माजीका
कथन है कि वह स्नान शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला
होता है। शिवलोकके पश्चात् ब्रह्मा और विष्णुके
स्थानोंमें सुख भोगकर अन्तमें मनुष्यको ज्ञानकी प्राप्ति
हो जाती है ॥ २२—२८ ॥

गङ्गायां माघमासे तु तथा कुम्भगते रवौ।
श्राद्धं वा पिण्डदानं वा तिलोदकमथापि वा ॥ २९

वंशद्वयपितृणां च कुलकोट्युद्धरं विदुः।
कृष्णावेण्यां प्रशंसन्ति मीनगे च गुरौ रवौ ॥ ३०

तत्त्त्वीर्थं च तन्मासि स्नानमिन्द्रपदप्रदम्।
गङ्गां वा सह्यजां वापि समाश्रित्य वसेद् बुधः ॥ ३१

तत्कालकृतपापस्य क्षयो भवति निश्चितम्।
रुद्रलोकप्रदान्येव सन्ति क्षेत्राण्यनेकशः ॥ ३२

ताम्रपर्णीं वेगवती ब्रह्मलोकफलप्रदे।
तयोस्तीरे हि सन्त्येव क्षेत्राणि स्वर्गदानि च ॥ ३३

सन्ति क्षेत्राणि तन्मध्ये पुण्यदानि च भूरिशः।
तत्र तत्र वसन्नाज्ञस्तादृशं च फलं लभेत् ॥ ३४

सदाचारेण सदृकृत्या सदा भावनयापि च।
वसेद् दयालुः प्राज्ञो वै नान्यथा तत्फलं लभेत् ॥ ३५

पुण्यक्षेत्रे कृतं पुण्यं बहुधा ऋद्धिमृच्छति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं महदण्वपि जायते ॥ ३६

तत्कालं जीवनार्थश्चेत्पुण्येन क्षयमेष्यति।
पुण्यमैश्वर्यदं प्राहुः कायिकं वाचिकं तथा ॥ ३७

मानसं च तथा पापं तादृशं नाशयेद् द्विजाः।
मानसं वज्रलेपं तु कल्पकल्पानुगं तथा ॥ ३८

ध्यानादेव हि तन्नश्येनान्यथा नाशमृच्छति।
वाचिकं जपजालेन कायिकं कायशोषणात् ॥ ३९

दानाद्धनकृतं नश्येनान्यथा कल्पकोटिभिः।
क्वचित्पापेन पुण्यं च वृद्धिपूर्वेण नश्यति ॥ ४०

माघमासमें तथा सूर्यके कुम्भराशिमें स्थित होनेपर फाल्गुनमासमें गंगाजीके तटपर किया हुआ श्राद्ध, पिण्डदान अथवा तिलोदकदान पिता और नाना दोनों कुलोंके पितरोंकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला माना गया है। सूर्य और बृहस्पति जब मीनराशिमें स्थित हों, तब कृष्णवेणी नदीमें किये गये स्नानकी ऋषियोंने प्रशंसा की है। उन-उन महीनोंमें पूर्वोक्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान इन्द्रपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है। विद्वान् पुरुष गंगा अथवा कावेरी नदीका आश्रय लेकर तीर्थवास करे। ऐसा करनेसे उस समयमें किये हुए पापका निश्चय ही नाश हो जाता है ॥ २९—३१ १/२ ॥

रुद्रलोक प्रदान करनेवाले बहुत-से क्षेत्र हैं। ताम्रपर्णी और वेगवती—ये दोनों नदियाँ ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फल देनेवाली हैं। उन दोनोंके तटपर अनेक स्वर्गदायक क्षेत्र हैं। उन दोनोंके मध्यमें बहुत-से पुण्यप्रद क्षेत्र हैं। वहाँ निवास करनेवाला विद्वान् पुरुष वैसे फलका भागी होता है। सदाचार, उत्तम वृत्ति तथा सद्द्वावनाके साथ मनमें दयाभाव रखते हुए विद्वान् पुरुषको तीर्थमें निवास करना चाहिये, अन्यथा उसका फल नहीं मिलता। पुण्यक्षेत्रमें किया हुआ थोड़ा-सा पुण्य भी अनेक प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होता है तथा वहाँ किया हुआ छोटा-सा पाप भी महान् हो जाता है। यदि पुण्यक्षेत्रमें रहकर ही जीवन बितानेका निश्चय हो, तो उस पुण्यसंकल्पसे उसका पहलेका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जायगा; क्योंकि पुण्यको ऐश्वर्यदायक कहा गया है। हे ब्राह्मणो ! तीर्थवासजनित पुण्य कायिक, वाचिक और मानसिक सारे पापोंका नाश कर देता है। तीर्थमें किया हुआ मानसिक पाप वज्रलेप हो जाता है। वह कई कल्पोंतक पीछा नहीं छोड़ता है ॥ ३२—३८ ॥

वैसा पाप केवल ध्यानसे ही नष्ट होता है, अन्यथा नष्ट नहीं होता। वाचिक पाप जपसे तथा कायिक पाप शरीरको सुखाने-जैसे कठोर तपसे नष्ट होता है। धनोपार्जनमें हुए पाप दानसे नष्ट होते हैं अन्यथा करोड़ों कल्पोंमें भी उनका नाश नहीं होता। कभी-कभी अतिशय मात्रामें बढ़े पापोंसे पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं। पुण्य और पाप दोनोंका बीजांश, वृद्धयंश

बीजांशश्चैव वृद्ध्यंशो भोगांशः पुण्यपापयोः ।
ज्ञाननाशयो हि बीजांशो वृद्धिरुक्तप्रकारतः ॥ ४१

भोगांशो भोगनाश्यस्तु नान्यथा पुण्यकोटिभिः ।
बीजप्ररोहे नष्टे तु शेषो भोगाय कल्पते ॥ ४२

देवानां पूजया चैव ब्राह्मणानां च दानतः ।
तपोधिक्याच्च कालेन भोगः सह्यो भवेन्नृणाम् ।
तस्मात्पापमकृत्वैव वस्तव्यं सुखमिच्छता ॥ ४३

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां शिवक्षेत्रवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवक्षेत्रका
वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सदाचार, शौचाचार, स्नान, भस्मधारण, सन्ध्यावन्दन, प्रणव-जप, गायत्री-जप, दान,
न्यायतः धनोपार्जन तथा अग्निहोत्र आदिकी विधि एवं उनकी महिमाका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सदाचारं श्रावयाशु येन लोकाञ्जयेद् बुधः ।
धर्माधर्ममयान्बूहि स्वर्गनारकदांस्तथा ॥ १

सूत उवाच

सदाचारयुतो विद्वान् ब्राह्मणो नाम नामतः ।
वेदाचारयुतो विप्रो होतैरकैकवान्द्विजः ॥ २

अल्पाचारोऽल्पवेदश्च क्षत्रियो राजसेवकः ।
किञ्चिदाचारवान्वैश्यः कृषिवाणिज्यकृत्तथा ॥ ३

शूद्रब्राह्मण इत्युक्तः स्वयमेव हि कर्षकः ।
असूयालुः परद्रोही चण्डालद्विज उच्यते ॥ ४

और भोगांश होता है। बीजांशका नाश ज्ञानसे, वृद्ध्यंशका ऊपर लिखे प्रकारसे तथा भोगांशका नाश भोगनेसे होता है। अन्य किसी प्रकारसे करोड़ों पुण्य करके भी पापके भोगांश नहीं मिट सकते। पाप बीजके अंकुरित हो जानेपर उसका अंश नष्ट होनेपर भी शेष पाप भोगना ही पड़ता है। देवताओंकी पूजा, ब्राह्मणोंको दान तथा अधिक तप करनेसे समय पाकर पापभोग मनुष्योंके सहनेयोग्य हो जाते हैं। इसलिये सुख चाहनेवाले व्यक्तिको पापोंसे बचकर ही तीर्थवास करना चाहिये ॥ ३९—४३ ॥

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी !] अब आप शीघ्र ही हमें वह सदाचार सुनाइये, जिससे विद्वान् पुरुष पुण्यलोकोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। स्वां प्रदान करनेवाले धर्ममय आचारों तथा नरकका कष्ट देनेवाले अधर्ममय आचारोंका भी वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो !] सदाचारका पालन करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण ही वास्तवमें ‘ब्राह्मण’ नाम धारण करनेका अधिकारी है। जो केवल वेदोक्त आचारका पालन करनेवाला है, उस ब्राह्मणकी ‘विप्र’ संज्ञा होती है। सदाचार, वेदाचार तथा विद्या—इनमेंसे एक-एक गुणसे ही युक्त होनेपर उसे ‘द्विज’ कहते हैं। जिसमें स्वल्पमात्रामें ही आचारका पालन देखा जाता है, जिसने वेदाध्ययन भी बहुत कम किया है तथा जो राजाका सेवक (पुरोहित, मन्त्री आदि) है, उसे ‘क्षत्रियब्राह्मण’ कहते हैं। जो ब्राह्मण कृषि तथा वाणिज्य कर्म करनेवाला है और कुछ-कुछ ब्राह्मणोंचित आचारका भी पालन करता है, वह ‘वैश्यब्राह्मण’ है तथा जो स्वयं ही खेत जोतता (हल चलाता) है, उसे ‘शूद्रब्राह्मण’ कहा गया है। जो दूसरोंके दोष देखनेवाला और परद्रोही है, उसे ‘चाण्डालद्विज’ कहते हैं ॥ २—४ ॥

पृथिवीपालको राजा इतरे क्षत्रिया मताः।
धान्यादिक्रयवान्वैश्य इतरो वणिगुच्यते॥ ५

ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषः शूद्र उच्यते।
कर्षको वृषलो ज्ञेय इतरे चैव दस्यवः॥ ६

सर्वो हृषः प्राङ्मुखश्च चिन्तयेद् देवपूर्वकान्।
धर्मानर्थांश्च तत्क्लेशानायं च व्ययमेव च॥ ७

आयुर्द्वेषश्च मरणं पापं भाग्यं तथैव च।
व्याधिः पुष्टिस्तथा शक्तिः प्रातरुत्थानदिक्फलम्॥ ८

निशान्त्ययामोषा ज्ञेया यामार्थं सन्धिरुच्यते।
तत्काले तु समुत्थाय विष्मूत्रे विसृजेद् द्विजः॥ ९

गृहाद् दूरं ततो गत्वा बाह्यतः प्रावृतस्तथा।
उदङ्मुखः समाविश्य प्रतिबन्धेऽन्यदिङ्मुखः॥ १०

जलाग्निब्राह्मणादीनां देवानां नाभिमुच्यतः।
लिङ्गं पिधाय वामेन मुखमन्येन पाणिना॥ ११

मलमुत्सृज्य चोत्थाय न पश्येच्चैव तन्मलम्।
उदधृतेन जलेनैव शौचं कुर्याज्जलाद् बहिः॥ १२

अथवा देवपित्रिर्धितीर्थावतरणं विना।
सप्त वा पञ्च वा त्रीन्वा गुदं संशोधयेन्मृदा॥ १३

लिङ्गे कर्कटमात्रं तु गुदे प्रसृतिरिष्यते।
तत उत्थाय पद्मस्तशौचं गण्डूषमष्टकम्॥ १४

इसी तरह क्षत्रियोंमें भी जो पृथ्वीका पालन करता है, वह राजा है। दूसरे लोग राजत्वहीन क्षत्रिय माने गये हैं। वैश्योंमें भी जो धान्य आदि वस्तुओंका क्रय-विक्रय करता है, वह वैश्य है; दूसरोंको वणिक् कहते हैं। जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी सेवामें लगा रहता है, वह शूद्र कहलाता है। जो शूद्र हल जोतनेका काम करता है, उसे वृषल समझना चाहिये। शेष शूद्र दस्यु कहलाते हैं॥ ५-६॥

इन सभी वर्णोंके मनुष्योंको चाहिये कि वे उषःकालमें उठकर पूर्वाभिमुख हो सबसे पहले देवताओंका, फिर धर्मका, पुनः अर्थका, तदनन्तर उसकी प्राप्तिके लिये उठाये जानेवाले क्लेशोंका तथा आय और व्ययका भी चिन्तन करें॥ ७॥

प्रातःकाल उठकर [पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण आदि] आठ दिशाओंकी ओर मुख करके बैठनेपर क्रमशः आयु, द्वेष, मरण, पाप, भाग्य, व्याधि, पुष्टि और शक्ति प्राप्त होती है॥ ८॥

रातके पिछले पहरको उषःकाल जानना चाहिये। उस अन्तिम पहरका जो आधा या मध्यभाग है, उसे सन्धि कहते हैं। उस सन्धिकालमें उठकर द्विजको मल-मूत्र आदिका त्याग करना चाहिये। घरसे दूर जाकर बाहरसे अपने शरीरको ढके रखकर दिनमें उत्तराभिमुख बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे। यदि उत्तराभिमुख बैठनेमें कोई रुकावट हो तो दूसरी दिशाकी ओर मुख करके बैठे। जल, अग्नि, ब्राह्मण आदि तथा देवताओंका सामना बचाकर बैठे। बायें हाथसे उपस्थिको ढँककर तथा दाहिने हाथसे मुखको ढककर मलत्याग करे और उठनेपर उस मलको न देखे। तदनन्तर जलाशयसे बाहर निकाले हुए जलसे ही गुदाकी शुद्धि करे; अथवा देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंके तीर्थोंमें उतरे बिना ही प्राप्त हुए जलसे शुद्धि करनी चाहिये। गुदामें सात, पाँच या तीन बार मिट्टीसे उसे धोकर शुद्ध करे। लिंगमें ककोड़ेके फलके बराबर मिट्टी लेकर लगाये और उसे धो दे। परंतु गुदामें लगानेके लिये एक पसर मिट्टीकी आवश्यकता होती है। लिंग और गुदाकी शुद्धिके पश्चात् उठकर अन्यत्र जाय और हाथ-पैरोंकी शुद्धि करके आठ बार कुल्ला करे॥ ९-१४॥

येन केन च पत्रेण काष्ठेन च जलाद् बहिः ।
कार्यं सन्तर्जनीं त्यज्य दन्तधावनमीरितम् ॥ १५

जलदेवान्मस्कृत्य मन्त्रेण स्नानमाचरेत् ।
अशक्तः कण्ठदझं वा कटिदध्मथापि वा ॥ १६

आजानुजलमाविश्य मन्त्रस्नानं समाचरेत् ।
देवादींस्तर्पयेद्विद्वांस्तत्र तीर्थजलेन च ॥ १७

धौतवस्त्रं समादाय पञ्चकच्छेन धारयेत् ।
उत्तरीयं च किञ्चैव धार्यं सर्वेषु कर्मसु ॥ १८

नद्यादितीर्थस्नाने तु स्नानवस्त्रं न शोधयेत् ।
वापीकूपगृहादौ तु स्नानादूर्ध्वं नयेद् बुधः ॥ १९

शिलादार्वादिके वापि जले वापि स्थलेऽपि वा ।
संशोध्य पीडयेद्वस्त्रं पितृणां तृप्तये द्विजाः ॥ २०

जाबालकोक्तमन्त्रेण भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम् ।

अन्यथा चेजले पातस्ततो नरकमृच्छति ॥ २१

जिस किसी वृक्षके पत्तेसे अथवा उसके पतले काष्ठसे जलके बाहर दातुन करना चाहये । उस समय तर्जनी अङ्गुलीका उपयोग न करे । यह दन्तशुद्धिका विधान बताया गया है । तदनन्तर जल-सम्बन्धी देवताओंको नमस्कार करके मन्त्रपाठ करते हुए स्नान करे । यदि कण्ठतक या कमरतक पानीमें खड़े होनेकी शक्ति न हो तो घुटनेतक जलमें खड़ा होकर अपने ऊपर जल छिड़कर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नानकार्य सम्पन्न करे । विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वहाँ तीर्थजलसे देवता आदिका स्नानांग तर्पण भी करे ॥ १५—१७ ॥

इसके बाद धौतवस्त्र लेकर पाँच कच्छ करके उसे धारण करे । साथ ही कोई उत्तरीय भी धारण कर ले; क्योंकि सन्ध्या-वन्दन आदि सभी कर्मोंमें उसकी आवश्यकता होती है । नदी आदि तीर्थोंमें स्नान करनेपर स्नान-सम्बन्धी उतारे हुए वस्त्रको वहाँ न धोये । स्नानके पश्चात् विद्वान् पुरुष उस वस्त्रको बावड़ीमें, कुएँके पास अथवा घर आदिमें ले जाय और वहाँ पत्थरपर, लकड़ी आदिपर, जलमें या स्थलमें अच्छी तरह धोकर उस वस्त्रको निचोड़े । हे द्विजो ! वस्त्रको निचोड़नेसे जो जल गिरता है, वह पितरोंकी तृप्तिके लिये होता है ॥ १८—२० ॥

इसके बाद जाबालि-उपनिषदमें बताये गये [अग्निरिति] मन्त्रसे भस्म लेकर उसके द्वारा त्रिपुण्ड्र लगाये ।* इस विधिका पालन न किया जाय, इसके पूर्व ही यदि जलमें भस्म गिर जाय तो कर्ता नरकमें जाता है । 'आपो हि ष्ठा' इस मन्त्रसे पाप-शान्तिके

* जाबालि-उपनिषदमें भस्मधारणकी विधि इस प्रकार कही गयी है—

'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे ।

'मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान्नुद्र भासिनो वधीर्हविष्वनः सदमित्त्वा हवामहे' ॥

इस मन्त्रसे उठाकर जलसे मले, तत्पश्चात्—

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यदेवेषु त्र्यायुषं तनोऽस्तु त्र्यायुषम् ॥'

इत्यादि मन्त्रसे मस्तक, ललाट, वक्षःस्थल और कन्धोंपर त्रिपुण्ड्र करे ।

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यदेवेषु त्र्यायुषं तनोऽस्तु त्र्यायुषम् ॥'

तथा—

'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनामृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥'

—इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए तीन रेखाएँ खींचे ।

आपोहिष्ठेति शिरसि प्रोक्षयेत्पापशान्तये ।
यस्येति मन्त्रं पादे तु सन्धिप्रोक्षणमुच्यते ॥ २२

हृदये मूर्धिन पादे च मूर्धिन हृत्पाद एव च ।
हृत्पादमूर्धिन सम्प्रोक्ष्य मन्त्रस्नानं विदुर्बुधाः ॥ २३

ईषत्पर्शे च दौःस्वास्थ्ये राजराष्ट्रभयेऽपि च ।
अगत्या गतिकाले च मन्त्रस्नानं समाचरेत् ॥ २४

प्रातः सूर्यानुवाकेन सायमग्न्यनुवाकतः ।
अपः पीत्वा तथा मध्ये पुनः प्रोक्षणमाचरेत् ॥ २५

गायत्र्या जपमन्त्रान्ते त्रिसूर्घ्वं प्राग्विनिक्षिपेत् ।
मन्त्रेण सह चैकं वै मध्येऽर्थ्यं तु रवेद्विजाः ॥ २६

अथ जाते च सायाहे भुवि पश्चिमदिङ्मुखः ।
उद्धृत्य दद्यात् प्रातस्तु मध्याह्नेऽङ्गुलिभिस्तथा ॥ २७

अङ्गुलीनां च रन्ध्रेण लम्बं पश्येद् दिवाकरम् ।
आत्मप्रदक्षिणं कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् ॥ २८

सायं मुहूर्तादर्वाक्तु कृता सन्ध्या वृथा भवेत् ।
अकालात्काल इत्युक्तो दिनेऽतीते यथाक्रमम् ॥ २९

लिये सिरपर जल छिड़के तथा 'यस्य क्षयाय'—इस मन्त्रको पढ़कर पैरपर जल छिड़के; इसे सन्धिप्रोक्षण कहते हैं। 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मन्त्रमें तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचामें गायत्री छन्दके तीन-तीन चरण हैं। इनमेंसे प्रथम ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः पैर, मस्तक और हृदयमें जल छिड़के; दूसरी ऋचाके तीन चरणोंको पढ़कर क्रमशः मस्तक, हृदय और पैरमें जल छिड़के तथा तीसरी ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः हृदय, पैर और मस्तकका जलसे प्रोक्षण करे—इसे विद्वान् पुरुष मन्त्रस्नान मानते हैं ॥ २१—२३ ॥

किसी अपवित्र वस्तुसे किंचित् स्पर्श हो जानेपर, अपना स्वास्थ्य ठीक न रहनेपर, राजभय या राष्ट्रभय उपस्थित होनेपर तथा यात्राकालमें जलकी उपलब्धि न होनेकी विवशता आ जानेपर मन्त्रस्नान करना चाहिये। प्रातःकाल [सूर्यश्च मा मन्युश्च—इस] सूर्यानुवाकसे तथा सायंकाल [अग्निश्च मा मन्युश्च—इस] अग्नि-सम्बन्धी अनुवाकसे जलका आचमन करके पुनः जलसे अपने अंगोंका प्रोक्षण करे। मध्याह्नकालमें भी [आपः पुनन्तु—इस] मन्त्रसे आचमन करके पूर्ववत् प्रोक्षण करना चाहिये ॥ २४—२५ ॥

प्रातःकालकी सन्ध्योपासनामें गायत्रीमन्त्रका जप करके तीन बार ऊपरकी ओर सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये। हे ब्राह्मणो! मध्याह्नकालमें गायत्री-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सूर्यको एक ही अर्घ्य देना चाहिये। फिर सायंकाल आनेपर पश्चिमकी ओर मुख करके बैठ जाय और पृथ्वीपर ही सूर्यके लिये अर्घ्य दे [ऊपरकी ओर नहीं]। प्रातःकाल और मध्याह्नकालके समय अंजलिमें अर्घ्यजल लेकर अङ्गुलियोंकी ओरसे सूर्यदेवके लिये अर्घ्य दे। अङ्गुलियोंके छिद्रसे ढलते हुए सूर्यको देखे तथा उनके लिये आत्म-प्रदक्षिणा करके शुद्ध आचमन करे ॥ २६—२८ ॥

सायंकालमें सूर्यास्तसे दो घड़ी पहले की हुई सन्ध्या निष्फल होती है; क्योंकि वह सायं सन्ध्याका समय नहीं है। ठीक समयपर सन्ध्या करनी चाहिये—ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। यदि सन्ध्योपासना किये

दिवातीते च गायत्रीं शतं नित्यं क्रमाजपेत् ।
आदशाहात्परातीतं गायत्रीं लक्ष्मभ्यसेत् ॥ ३०

मासातीते तु नित्ये हि पुनश्चोपनयं चरेत् ।

ईशो गौरी गुहो विष्णुब्रह्मा चन्द्रश्च वै यमः ॥ ३१

एवंस्तुपांश्च वै देवांस्तर्पयेदर्थसिद्धये ।
ब्रह्मार्पणं ततः कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् ॥ ३२

तीर्थदक्षिणतः शस्ते मठे मन्त्रालये ब्रुधः ।
तत्र देवालये वापि गृहे वा नियतस्थले ॥ ३३

सर्वान्देवान्मस्कृत्य स्थिरबुद्धिः स्थिरासनः ।
प्रणवं पूर्वमभ्यस्य गायत्रीमभ्यसेत्ततः ॥ ३४

जीवब्रह्मैक्यविषयं बुद्ध्वा प्रणवमभ्यसेत् ।
त्रैलोक्यसृष्टिकर्तारं स्थितिकर्तारमच्युतम् ॥ ३५

संहर्तारं तथा रुद्रं स्वप्रकाशमुपास्यहे ।
ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च मनोवृत्तीर्धियस्तथा ॥ ३६

भोगमोक्षप्रदे धर्मे ज्ञाने च प्रेरयेत्सदा ।
इत्थमर्थं धिया ध्यायन्ब्रह्म प्राप्नोति निश्चयम् ॥ ३७

केवलं वा जपेन्नित्यं ब्राह्मण्यस्य च पूर्तये ।
सहस्रमभ्यसेन्नित्यं प्रातर्ब्राह्मणपुङ्गवः ॥ ३८

अन्येषां च यथाशक्ति मध्याहे च शतं जपेत् ।
सायं द्विदशकं ज्ञेयं शिखाष्टकसमन्वितम् ॥ ३९

बिना दिन बीत जाय तो प्रत्येक समयके लिये क्रमशः प्रायश्चित्त करना चाहिये । यदि एक दिन बीते तो प्रत्येक बीते हुए सन्ध्याकालके लिये नित्य-नियमके अतिरिक्त सौ गायत्री-मन्त्रका अधिक जप करे । यदि नित्यकर्मके लुप्त हुए दस दिनसे अधिक बीत जाय तो उसके प्रायश्चित्तरूपमें एक लाख गायत्रीका जप करना चाहिये । यदि एक मासतक नित्यकर्म छूट जाय तो पुनः अपना उपनयनसंस्कार कराये ॥ २९-३० १/२ ॥

अर्थसिद्धिके लिये ईश, गौरी, कार्तिकेय, विष्णु ब्रह्मा, चन्द्रमा और यमका तथा ऐसे ही अन्य देवताओंका भी शुद्ध जलसे तर्पण करे । तत्पश्चात् तर्पण कर्मके ब्रह्मार्पण करके शुद्ध आचमन करे । तीर्थके दक्षिण भागमें प्रशस्त मठमें, मन्त्रालयमें, देवालयमें, घरमें अथवा अब किसी नियत स्थानमें आसनपर स्थिरतापूर्वक बैठक विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धिको स्थिर करे और सम्पूर्ण देवताओंको नमस्कार करके पहले प्रणवका जप करनेके पश्चात् गायत्री-मन्त्रकी आवृत्ति करे ॥ ३१—३४ ॥

प्रणवके अ, उ, म् इन तीनों अक्षरोंसे जीव और ब्रह्मकी एकताका प्रतिपादन होता है—इस बातको जानका प्रणवका जप करना चाहिये । जपकालमें यह भावना करनी चाहिये कि हम तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, पालन करनेवाले विष्णु तथा संहार करनेवाले रुद्रकी—जो स्वयंप्रकाश चिन्मय हैं, उपासना करते हैं। यह ब्रह्मस्वरूप ओंकार हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी वृत्तियोंको, मनकी वृत्तियोंको तथा बुद्धिवृत्तियोंको सदा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले धर्म एवं ज्ञानकी ओं प्रेरित करे । बुद्धिके द्वारा प्रणवके इस अर्थका विनाश करता हुआ जो इसका जप करता है, वह निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है । अथवा अर्थानुसन्धानके बिना भी प्रणवका नित्य जप करना चाहिये, इससे ब्राह्मणत्वकी पूर्ति होती है । ब्राह्मणत्वकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणके प्रतिदिन प्रातःकाल एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये । मध्याह्नकालमें सौ बार और सायंकालमें अद्वैत बार जपकी विधि है । अन्य वर्णके लोगोंको अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यको तीनों सन्ध्याओंके समय यथासाध्य गायत्री-जप करना चाहिये ॥ ३५—३९ ॥

मूलाधारं समारभ्य द्वादशांशस्थितांस्तथा ।
विद्येशब्रह्मविष्वीशजीवात्परमेश्वरान् ॥ ४०

ब्रह्मबुद्ध्या तदैक्यं च सोऽहं भावनया जपेत् ।
तानेव ब्रह्मरन्धादौ कायाद् बाह्ये च भावयेत् ॥ ४१

महत्तत्त्वं समारभ्य शरीरं तु सहस्रकम् ।
एकैकस्पाजपादेकमतिक्रम्य शनैः शनैः ॥ ४२

परस्मिन्योजयेज्जीवं जपतत्त्वमुदाहृतम् ।
शतद्विदशकं देहं शिखाष्टकसमन्वितम् ॥ ४३

मन्त्राणां जप एवं हि जपमादिक्रमाद्विदुः ।
सहस्रं ब्राह्मदं विद्याच्छतमैन्द्रप्रदं विदुः ॥ ४४

इतरत्त्वात्परक्षार्थं ब्रह्मयोनिषु जायते ।
दिवाकरमुपस्थाय नित्यमित्थं समाचरेत् ॥ ४५

लक्षद्वादशयुक्तस्तु पूर्णब्राह्मण ईरितः ।
गायत्र्या लक्षहीनं तु वेदकार्यं न योजयेत् ॥ ४६

आसपतेस्तु नियमं पश्चात्प्रवाजनं चरेत् ।
प्रातद्वादशसाहस्रं प्रवाजी प्रणवं जपेत् ॥ ४७

दिने दिने त्वतिक्रान्ते नित्यमेवं क्रमाजपेत् ।
मासादौ क्रमशोऽतीते सार्थलक्षजपेन हि ॥ ४८

अत ऊर्ध्वमतिक्रान्ते पुनः प्रैषं समाचरेत् ।
एवं कृत्वा दोषशान्तिरन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥ ४९

[शरीरके भीतर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा और सहस्रार—ये छः चक्र हैं ।] इनमें मूलाधारसे लेकर सहस्रारतक छहों स्थानोंमें क्रमशः विद्येश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, जीवात्मा और परमेश्वर स्थित हैं । इन सबमें ब्रह्मबुद्धि करके इनकी एकताका निश्चय करे और वह ब्रह्म में हूँ—ऐसी भावनासे युक्त होकर जप करे । उन्हीं विद्येश्वर आदिकी ब्रह्मरन्ध्र आदिमें तथा इस शरीरसे बाहर भी भावना करे । महत्तत्त्वसे लेकर पंचभूतपर्यन्त तत्त्वोंसे बना हुआ जो शरीर है, ऐसे सहस्रों शरीरोंका एक-एक अजपा गायत्रीके जपसे एक-एकके क्रमसे अतिक्रमण करके जीवको धीरे-धीरे परमात्मासे संयुक्त करे—यह जपका तत्त्व बताया गया है । सौ अथवा अट्टाईस मन्त्रोंके जपसे उतने ही शरीरोंका अतिक्रमण होता है । इस प्रकार जो मन्त्रोंका जप है, इसीको आदिक्रमसे वास्तविक जप जानना चाहिये ॥ ४०—४३ १/२ ॥

एक हजार बार किया हुआ जप ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होता है—ऐसा जानना चाहिये । सौ बार किया हुआ जप इन्द्रपदकी प्राप्ति करनेवाला माना गया है । ब्राह्मणेतर पुरुष आत्मरक्षाके लिये जो स्वल्पमात्रामें जप करता है, वह ब्राह्मणके कुलमें जन्म लेता है । इस प्रकार प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उपर्युक्तरूपसे जपका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ४४-४५ ॥

बारह लाख गायत्रीका जप करनेवाला पुरुष पूर्णरूपसे ब्राह्मण कहा गया है । जिस ब्राह्मणने एक लाख गायत्रीका भी जप न किया हो, उसे वैदिक कार्यमें न लगाये । सत्तर वर्षकी अवस्थातक नियमपालनपूर्वक कार्य करे । इसके बाद गृह त्यागकर संन्यास ले ले । परिव्राजक या संन्यासी पुरुष नित्य प्रातःकाल बारह हजार प्रणवका जप करे । यदि एक दिन नियमका उल्लंघन हो जाय, तो दूसरे दिन उसके बदलेमें उतना मन्त्र और अधिक जपना चाहिये; इस प्रकार जपको चलानेका प्रयत्न करना चाहिये । यदि क्रमशः एक मास उल्लंघनका व्यतीत हो गया हो तो डेढ़ लाख जप करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये । इससे अधिक समयतक नियमका उल्लंघन हो जाय तो पुनः नये सिरेसे गुरुसे नियम ग्रहण करे । ऐसा करनेसे दोषोंकी शान्ति होती है, अन्यथा रौरव नरकमें जाना पड़ता है ॥ ४६—४९ ॥

धर्मार्थयोस्ततो यत्नं कुर्यात्कामी न चेतरः ।
ब्राह्मणो मुक्तिकामः स्याद् ब्रह्मज्ञानं सदाभ्यसेत् ॥ ५०

धर्मादर्थोऽर्थतो भोगो भोगाद्वैराग्यसम्भवः ।
धर्मार्जितार्थभोगेन वैराग्यमुपजायते ॥ ५१

विपरीतार्थभोगेन राग एव प्रजायते ।
धर्मश्च द्विविधः प्रोक्तो द्रव्यदेहद्वयेन च ॥ ५२

द्रव्यमिज्यादिरूपं स्यात्तीर्थस्नानादि दैहिकम् ।
धर्मेण धनमाज्ञोति तपसा दिव्यरूपताम् ॥ ५३

निष्कामः शुद्धिमाज्ञोति शुद्ध्या ज्ञानं न संशयः ।
कृतादौ हि तपः श्लाघ्यं द्रव्यधर्मः कलौ युगे ॥ ५४

कृते ध्यानाज्ञानसिद्धिस्त्रेतायां तपसा तथा ।
द्वापरे यजनाज्ञानं प्रतिमापूजया कलौ ॥ ५५

यादृशं पुण्यपापं वा तादृशं फलमेव हि ।
द्रव्यदेहाङ्गभेदेन न्यूनवृद्धिक्षयादिकम् ॥ ५६

अधर्मो हिंसिकारूपो धर्मस्तु सुखरूपकः ।
अधर्माद् दुःखमाज्ञोति धर्माद्वै सुखमेधते ॥ ५७

विद्याद् दुर्वृत्तितो दुःखं सुखं विद्यात्सुवृत्तिः ।
धर्मार्जिनमतः कुर्याद्दोगमोक्षप्रसिद्धये ॥ ५८

सकुटुम्बस्य विप्रस्य चतुर्जनयुतस्य च ।

शतवर्षस्य वृत्तिं तु दद्यात्तद्ब्रह्मलोकदम् ॥ ५९

जो सकाम भावनासे युक्त गृहस्थ ब्राह्मण है, उसीके धर्म तथा अर्थके लिये यत्न करना चाहिये। मुमुक्षु ब्राह्मणके तो सदा ज्ञानका ही अभ्यास करना चाहिये। धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे भोग सुलभ होता है और उस भोगसे वैराग्यकी प्राप्ति होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित धनके द्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है ॥ ५०-५१ १/२ ॥

धर्म दो प्रकारका कहा गया है—द्रव्यके द्वारा सम्पादित होनेवाला और शरीरसे किया जानेवाला। द्रव्यधर्म यज्ञ आदिके रूपमें और शरीरधर्म तीर्थ-स्नान आदिके रूपमें पाये जाते हैं। मनुष्य धर्मसे धन पाता है, तपस्यासे उसे दिव्य रूपकी प्राप्ति होती है। कामनाओंका त्याग करनेवाले पुरुषके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है; उस शुद्धिसे ज्ञानका उदय होता है। इसमें संशय नहीं है ॥ ५२-५३ १/२ ॥

सत्ययुग आदिमें तपको ही प्रशस्त कहा गया है, किंतु कलियुगमें द्रव्यसाध्य धर्म अच्छा माना गया है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें तपस्यासे और द्वापरमें यज्ञ करनेसे ज्ञानकी सिद्धि होती है, परंतु कलियुगमें प्रतिमा (भगवद्विग्रह)-की पूजासे ज्ञानलाभ होता है ॥ ५४-५५ ॥

जिसका जैसा पुण्य या पाप होता है, उसे वैसी ही फल प्राप्त होता है। द्रव्य, देह अथवा अंगमें न्यूनता, वृद्धि अथवा क्षय आदिके रूपमें वह फल प्रकट होता है ॥ ५६ ॥

अधर्म हिंसा (दुःख)-रूप है और धर्म सुखरूप है। मनुष्य अधर्मसे दुःख पाता है और धर्मसे सुख एवं अभ्युदयका भागी होता है। दुराचारसे दुःख प्राप्त होता है और सदाचारसे सुख। अतः भोग और मोक्षकी सिद्धिलिये धर्मका उपार्जन करना चाहिये ॥ ५७-५८ ॥

जिसके घरमें कम-से-कम चार मनुष्य हैं, ऐसे कुटुम्बी ब्राह्मणको जो सौ वर्षके लिये जीविका (जीवन निर्वाहकी सामग्री) देता है, उसके लिये वह दान ब्रह्मलोककी प्राप्ति करनेवाला होता है। एक हजार

चान्द्रायणसहस्रं तु ब्रह्मलोकप्रदं विदुः।
सहस्रस्य कुटुम्बस्य प्रतिष्ठां क्षत्रियश्वरेत्॥ ६०

इन्द्रलोकप्रदं विद्यादयुतं ब्रह्मलोकदम्।
यां देवतां पुरस्कृत्य दानमाचरते नरः॥ ६१

तत्तल्लोकमवाजोति इति वेदविदो विदुः।
अर्थहीनः सदा कुर्यात्पसामर्जनं तथा॥ ६२

तीर्थाच्च तपसा प्राप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते।
अर्थार्जनमथो वक्ष्ये न्यायतः सुसमाहितः॥ ६३

कृतात्प्रतिग्रहाच्चैव याजनाच्च विशुद्धतः।
अदैन्यादनतिक्लेशाद् ब्राह्मणो धनमर्जयेत्॥ ६४

क्षत्रियो बाहुवीर्येण कृषिगोरक्षणाद् विशः।
न्यायार्जितस्य वित्तस्य दानात्पिद्धिं समश्नुते॥ ६५

ज्ञानसिद्ध्या मोक्षसिद्धिः सर्वेषां गुर्वनुग्रहात्।
मोक्षात्स्वरूपसिद्धिः स्यात्परानन्दं समश्नुते॥ ६६

सत्सङ्गात्सर्वमेतद्वै नराणां जायते द्विजाः।
धनधान्यादिकं सर्वं देयं वै गृहमेधिना॥ ६७

यद्यत्काले वस्तुजातं फलं वा धान्यमेव च।
तत्तत्पर्व ब्राह्मणेभ्यो देयं वै हितमिच्छता॥ ६८

जलं चैव सदा देयमनं क्षुद्र्याधिशान्तये।
क्षेत्रं धान्यं तथामानमनमेव चतुर्विधम्॥ ६९

यावत्कालं यदनं वै भुक्त्वा श्रवणमेधते।
तावत्कृतस्य पुण्यस्य त्वर्धं दातुर्नं संशयः॥ ७०

चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान ब्रह्मलोकदायक माना गया है। जो क्षत्रिय एक हजार कुटुम्बोंको जीविका और आवास देता है, उसका वह कर्म इन्द्रलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है और दस हजार कुटुम्बोंको दिया हुआ आश्रयदान ब्रह्मलोक प्रदान करता है। दाता पुरुष जिस देवताके उद्देश्यसे दान करता है अर्थात् वह दानके द्वारा जिस देवताको प्रसन्न करना चाहता है, उसीका लोक उसे प्राप्त होता है—ऐसा वेदवेत्ता पुरुष कहते हैं। धनहीन पुरुष सदा तपस्याका उपार्जन करे; क्योंकि तपस्या और तीर्थसेवनसे अक्षय सुख पाकर मनुष्य उसका उपभोग करता है॥ ५९—६२ १/२॥

अब मैं न्यायतः धनके उपार्जनकी विधि बता रहा हूँ। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सदा सावधान रहकर विशुद्ध प्रतिग्रह (दानग्रहण) तथा याजन (यज्ञ कराने) आदिसे धनका अर्जन करे। वह इसके लिये कहीं दीनता न दिखाये और न अत्यन्त क्लेशदायक कर्म ही करे। क्षत्रिय बाहुबलसे धनका उपार्जन करे और वैश्य कृषि एवं गोरक्षासे। न्यायोपार्जित धनका दान करनेसे दाताको ज्ञानकी सिद्धि होती है। ज्ञानसिद्धिद्वारा सब पुरुषोंको गुरुकृपासे मोक्षसिद्धि सुलभ होती है। मोक्षसे स्वरूपकी सिद्धि (ब्रह्मरूपसे स्थिति) प्राप्त होती है, जिससे [मुक्त पुरुष] परमानन्दका अनुभव करता है। हे द्विजो! मनुष्योंको यह सब सत्संगसे प्राप्त है॥ ६३—६६ १/२॥

गृहस्थाश्रमीको धन-धान्य आदि सभी वस्तुओंका दान करना चाहिये। अपना हित चाहनेवाले गृहस्थको जिस कालमें जो फल अथवा धान्यादि वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये॥ ६७-६८॥

वह तृष्णा-निवृत्तिके लिये जल तथा क्षुधारूपी रोगकी शान्तिके लिये सदा अन्नका दान करे। खेत, धान्य, कच्चा अन तथा भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ये चार प्रकारके सिद्ध अन्न दान करने चाहिये। जिसके अन्नको खाकर मनुष्य जबतक कथा-श्रवण आदि सद्धर्मका पालन करता है, उतने समयतक उसके किये हुए पुण्यफलका आधा भाग दाताको मिल जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ६९-७०॥

ग्रहीता हि गृहीतस्य दानाद्वै तपसा तथा ।
पापसंशोधनं कुर्यादन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥ ७१

आत्मवित्तं त्रिधा कुर्याद्वृद्धर्मवृद्ध्यात्मभोगतः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात् धर्मतः ॥ ७२

वित्तस्य वर्धनं कुर्याद् वृद्धयंशेन हि साधकः ।
हितेन मितमेध्येन भोगं भोगांशतश्चरेत् ॥ ७३

कृष्णजिते दशांशं हि देयं पापस्य शुद्धये ।
शेषेण कुर्याद्वृद्धर्मादि अन्यथा रौरवं व्रजेत् ॥ ७४

अथवा पापबुद्धिः स्यात्क्षयं वा सस्यमेष्यति ।
वृद्धिवाणिज्यके देयं षडंशं हि विचक्षणैः ॥ ७५

शुद्धप्रतिग्रहे देयं चतुर्थांशं द्विजोत्तमैः ।
अकस्मादुत्थितेऽर्थे हि देयमर्थं द्विजोत्तमैः ॥ ७६

असत्प्रतिग्रहे सर्वं दुर्दानं सागरे क्षिपेत् ।
आहूय दानं कर्तव्यमात्मभोगसमृद्धये ॥ ७७

पृष्ठं सर्वं सदा देयमात्मशक्त्यनुसारतः ।
जन्मान्तरे ऋणी हि स्याददत्ते पृष्ठवस्तुनि ॥ ७८

परेषां च तथा दोषं न प्रशंसेद्विचक्षणः ।
विद्वेषेण तथा ब्रह्मन् श्रुतं दृष्टं च नो वदेत् ॥ ७९

न वदेत्सर्वजन्तूनां हृदि रोषकरं बुधः ।
सन्ध्ययोरग्निकार्यं च कुर्यादैश्वर्यसिद्धये ॥ ८०

अशक्तस्त्वेककाले वा सूर्याग्नी च यथाविधि ।
तण्डुलं धान्यमाज्यं वा फलं कन्दं हविस्तथा ॥ ८१

दान लेनेवाला पुरुष दानमें प्राप्त हुई वस्तुका दान
तथा तपस्या करके अपने प्रतिग्रहजनित पापकी शुद्धि
करे; अन्यथा उसे रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। अपने
धनके तीन भाग करे—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग
वृद्धिके लिये तथा तीसरा भाग अपने उपभोगके लिये।
नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीनों प्रकारके कर्म
धर्मार्थ रखे हुए धनसे करे। साधकको चाहिये कि वह
वृद्धिके लिये रखे हुए धनसे ऐसा व्यापार करे, जिससे
उस धनकी वृद्धि हो तथा उपभोगके लिये रक्षित धनसे
हितकारक, परिमित एवं पवित्र भोग भोगे ॥ ७१—७३ ॥

खेतीसे पैदा किये हुए धनका दसवाँ अंश दान कर
दे। इससे पापकी शुद्धि होती है। शेष धनसे धर्म, वृद्धि
एवं उपभोग करे, अन्यथा वह रौरव नरकमें पड़ता है
अथवा उसकी बुद्धि पापसे परिपूर्ण हो जाती है या खेती
ही चौपट हो जाती है। वृद्धिके लिये किये गये व्यापारमें
प्राप्त हुए धनका छठा भाग दान कर दे ॥ ७४-७५ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दानमें प्राप्त हुए शुद्ध पदार्थोंका
चतुर्थांश दान कर देना चाहिये। उन्हें अकस्मात् प्राप्त
हुए धनका तो आधा भाग दान कर ही देना चाहिये।
असत्-प्रतिग्रह (दूषित दान)-में प्राप्त सम्पूर्ण पदार्थोंको
समुद्रमें फेंक देना चाहिये। अपने भोगकी समृद्धिके
लिये ब्राह्मणोंको बुलाकर दान करना चाहिये। किसीके
द्वारा याचना करनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सदैव ही
सब कुछ देना चाहिये। यदि माँगे जानेपर [शक्ति
रहते हुए] वह पदार्थ न दिया जाय तो दूसरे जन्ममें
वह ऋण चुकाना पड़ता है ॥ ७६—७८ ॥

विद्वान् को चाहिये कि वह दूसरोंके दोषोंका वर्णन
न करे। हे ब्रह्मन्! द्वेषवश दूसरोंके सुने या देखे हुए
छिद्रको भी प्रकट न करे। विद्वान् पुरुष ऐसी बात न
कहे, जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें रोष पैदा करनेवाली
हो ॥ ७९ १/२ ॥

ऐश्वर्यकी सिद्धिके लिये दोनों सन्ध्याओंके
समय अग्निहोत्र करे, यदि असमर्थ हो तो वह एक
ही समय सूर्य और अग्निको विधिपूर्वक दी हुई
आहुतिसे सन्तुष्ट करे। चावल, धान्य, घी, फल, कन्द
तथा हविष्य—इनके द्वारा विधिपूर्वक स्थालीपाक

स्थालीपाकं तथा कुर्याद्यथान्यायं यथाविधि ।
प्रधानहोममात्रं वा हव्याभावे समाचरेत् ॥ ८२
नित्यसन्धानमित्युक्तं तपजस्त्रं विदुर्बुधाः ।
अथवा जपमात्रं वा सूर्यवन्दनमेव च ॥ ८३
एवमात्पार्थिनः कुरुरथर्थी च यथाविधि ।
ब्रह्मयज्ञरता नित्यं देवपूजारतास्तथा ॥ ८४

अग्निपूजापरा नित्यं गुरुपूजारतास्तथा ।
ब्राह्मणानां तृप्तिकराः सर्वे स्वर्गस्य भागिनः ॥ ८५

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां सदाचारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें सदाचारवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन, भगवान् शिवके द्वारा सातों वारोंका निर्माण तथा उनमें देवाराधनसे विभिन्न प्रकारके फलोंकी प्राप्तिका कथन

ऋषय ऊचुः

अग्नियज्ञं देवयज्ञं ब्रह्मयज्ञं तथैव च ।
गुरुपूजां ब्रह्मतृप्तिं क्रमेण ब्रूहि नः प्रभो ॥ १

सूत उवाच

अग्नौ जुहोति यद् द्रव्यमग्नियज्ञः स उच्यते ।
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां समिदाधानमेव हि ॥ २

समिदग्नौ व्रताद्यं च विशेषयजनादिकम् ।
प्रथमाश्रमिणामेवं यावदौपासनं द्विजाः ॥ ३

आत्मन्यारोपिताग्नीनां वनिनां यतिनां द्विजाः ।
हितं च मितमेध्यानं स्वकाले भोजनं हुतिः ॥ ४

बनाये तथा यथोचित रीतिसे सूर्य और अग्निको अर्पित करे । यदि हविष्यका अभाव हो तो प्रधान होममात्र करे । सदा सुरक्षित रहनेवाली अग्निको विद्वान् पुरुष अजस्त्रकी संज्ञा देते हैं । यदि असमर्थ हो तो सन्ध्याकालमें जपमात्र या सूर्यकी वन्दनामात्र कर ले ॥ ८०—८३ ॥

आत्मज्ञानकी इच्छावाले तथा धनार्थी पुरुषोंको भी इस प्रकार विधिवत् उपासना करनी चाहिये । जो सदा ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहते हैं, देवताओंकी पूजामें लगे रहते हैं, नित्य अग्निपूजा एवं गुरुपूजामें अनुरक्त होते हैं तथा ब्राह्मणोंको तृप्त किया करते हैं, वे सब लोग स्वर्गके भागी होते हैं ॥ ८४-८५ ॥

ऋषिगण बोले—हे प्रभो! अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजा तथा ब्रह्मतृप्तिका क्रमशः हमारे समक्ष वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! गृहस्थ पुरुष अग्निमें सायंकाल और प्रातःकाल जो चावल आदि द्रव्यकी आहुति देता है, उसीको अग्नियज्ञ कहते हैं । जो ब्रह्मचर्य आश्रममें स्थित हैं, उन ब्रह्मचारियोंके लिये समिधाका आधान ही अग्नियज्ञ है । वे समिधाका ही अग्निमें हवन करें । हे ब्राह्मणो! ब्रह्मचर्य आश्रममें निवास करनेवाले द्विजोंका जबतक विवाह न हो जाय और वे औपासनाग्निकी प्रतिष्ठान कर लें, तबतक उनके लिये अग्निमें समिधाकी आहुति, व्रत आदिका पालन तथा विशेष यजन आदि ही कर्तव्य है (यही उनके लिये अग्नियज्ञ है) । हे द्विजो! जिन्होंने बाह्य अग्निको विसर्जित करके अपनी आत्मामें ही अग्निका आरोप कर लिया है, ऐसे बानप्रस्थियों और संन्यासियोंके लिये यही हवन या अग्नियज्ञ है कि वे विहित समयपर हितकर, परिमित और पवित्र अन्का भोजन कर लें ॥ २—४ ॥

औपासनाग्निसन्धानं समारभ्य सुरक्षितम्।
कुण्डे वाप्यथ भाण्डे वा तदजस्त्रं समीरितम्॥ ५

अरिनमात्मन्यरण्यां वा राजदैववशाद् ध्रुवम्।
अग्नित्यागभयादुक्तं समारोपितमुच्यते॥ ६

सम्पत्करी तथा ज्ञेया सायमग्न्याहुतिर्द्विजाः।
आयुष्करीति विज्ञेया प्रातः सूर्याहुतिस्तथा॥ ७

अग्नियज्ञो ह्ययं प्रोक्तो दिवा सूर्यनिवेशनात्।
इन्द्रादीन्सकलान्देवानुद्दिश्ययाग्नौ जुहोति यत्॥ ८

देवयज्ञं हि तं विद्यात्स्थालीपाकादिकान्कतून्।
चौलादिकं तथा ज्ञेयं लौकिकाग्नौ प्रतिष्ठितम्॥ ९

ब्रह्मयज्ञं द्विजः कुर्याद् देवानां तृप्तयेऽसकृत्।
ब्रह्मयज्ञ इति प्रोक्तो वेदस्याध्ययनं भवेत्॥ १०

नित्यानन्तरमासायं ततस्तु न विधीयते।
अनग्नौ देवयज्ञं शृणुत श्रद्धयादरात्॥ ११

आदिसृष्टौ महादेवः सर्वज्ञः करुणाकरः।
सर्वलोकोपकारार्थं वारान्कल्पितवान्प्रभुः॥ १२

संसारवैद्यः सर्वज्ञः सर्वभेषजभेषजम्।
आदावारोग्यदं वारं स्ववारं कृतवान्प्रभुः॥ १३

सम्पत्करं स्वमायाया वारं च कृतवांस्ततः।
जनने दुर्गतिक्रान्ते कुमारस्य ततः परम्॥ १४

औपासनाग्निको ग्रहण करके जब कुण्ड अथवा भाण्डमें सुरक्षित कर लिया जाय, तब उसे अजस्त्र कहा जाता है। राजविप्लव या दुर्दैवसे अग्नित्यागका भय उपस्थित हो जानेपर जब अग्निको स्वयं आत्मामें अथवा अरणीमें स्थापित कर लिया जाता है, तब उसे समारोपित कहते हैं॥ ५-६॥

हे ब्राह्मणो! सायंकाल अग्निके लिये दी हुई आहुति सम्पत्ति प्रदान करनेवाली होती है, ऐसा जानना चाहिये और प्रातःकाल सूर्यदेवको दी हुई आहुति आयुकी वृद्धि करनेवाली होती है, यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। दिनमें अग्निदेव सूर्यमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः प्रातःकाल सूर्यको दी हुई आहुति भी अग्नियज्ञ ही है॥ ७॥

इन्द्र आदि समस्त देवताओंके उद्देश्यसे अग्निमें जो आहुति दी जाती है, उसे देवयज्ञ समझना चाहिये। स्थालीपाक आदि यज्ञोंको देवयज्ञ ही मानना चाहिये। लौकिक अग्निमें प्रतिष्ठित जो चूडाकरण आदि संस्कार-निमित्तक हवन-कर्म हैं, उन्हें भी देवयज्ञके ही अन्तर्गत जानना चाहिये। [अब ब्रह्मयज्ञका वर्णन सुनिये।] द्विजको चाहिये कि वह देवताओंकी तृप्तिके लिये निरन्तर ब्रह्मयज्ञ करे। वेदोंका जो नित्य अध्ययन होता है, उसीको ब्रह्मयज्ञ कहा गया है। प्रातः नित्यकर्मके अनन्तर सायंकालतक ब्रह्मयज्ञ किया जा सकता है। उसके बाद रातमें इसका विधान नहीं है॥ ८—१० १/२॥

अग्निके बिना देवयज्ञ कैसे सम्पन्न होता है, इसे आपलोग श्रद्धासे और आदरपूर्वक सुनिये। सृष्टिके आरम्भमें सर्वज्ञ, दयालु और सर्वसमर्थ महादेवजीने समस्त लोकोंके उपकारके लिये वारोंकी कल्पना की। वे भगवान् शिव संसाररूपी रोगको दूर करनेके लिये वैद्य हैं। सबके ज्ञाता तथा समस्त औषधोंके भी औषध हैं। उन भगवान् ने पहले अपने वारकी कल्पना की, जो आरोग्य प्रदान करनेवाला है। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी मायाशक्तिका वार बनाया, जो सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। जन्मकालमें दुर्गतिग्रस्त बालककी रक्षाके लिये उन्होंने कुमारके वारकी कल्पना की। तत्पश्चात् सर्वसमर्थ महादेवजीने आलस्य और पापकी

आलस्यदुरितक्रान्त्यै वारं कल्पितवान्प्रभुः।
रक्षकस्य तथा विष्णोलोकानां हितकाम्यया ॥ १५

पुष्ट्यर्थं चैव रक्षार्थं वारं कल्पितवान्प्रभुः।
आयुष्करं ततो वारमायुषां कर्तुरेव हि ॥ १६

त्रैलोक्यसृष्टिकर्तुर्हि ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
जगदायुष्यसिद्ध्यर्थं वारं कल्पितवान्प्रभुः ॥ १७

आदौ त्रैलोक्यवृद्ध्यर्थं पुण्यपापे प्रकल्पिते।
तयोः कत्रोस्ततो वारमिन्द्रस्य च यमस्य च ॥ १८

भोगप्रदं मृत्युहरं लोकानां च प्रकल्पितम्।
आदित्यादीन्स्वस्वरूपान्सुखदुःखस्य सूचकान् ॥ १९

वारेशान्कल्पयित्वादौ ज्योतिश्चक्रे प्रतिष्ठितान्।
स्वस्ववारे हि तेषां तु पूजा स्वस्वफलप्रदा ॥ २०

आरोग्यं सम्पदश्चैव व्याधीनां शान्तिरेव च।
पुष्टिरायुस्तथा भोगो मृतेर्हनिर्यथाक्रमम् ॥ २१

वारक्रमफलं प्राहुर्देवप्रीतिपुरःसरम्।
अन्येषामपि देवानां पूजायाः फलदः शिवः ॥ २२

देवानां प्रीतये पूजा पञ्चधैव प्रकल्पिता।
तत्तन्मन्त्रजपो होमो दानं चैव तपस्तथा ॥ २३

स्थणिडले प्रतिमायां च ह्यग्नौ ब्राह्मणविग्रहे।
समाराधनमित्येवं षोडशैरुपचारकैः ॥ २४

निवृत्ति तथा समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे लोकरक्षक भगवान् विष्णुका वार बनाया। इसके बाद सबके स्वामी भगवान् शिवने पुष्टि और रक्षाके लिये आयुःकर्ता तथा त्रिलोकस्त्वा परमेष्ठी ब्रह्माका आयुष्कारक वार बनाया, जिससे सम्पूर्ण जगत्के आयुष्यकी सिद्धि हो सके। इसके बाद तीनों लोकोंकी वृद्धिके लिये पहले पुण्य-पापकी रचना की; तत्पश्चात् उनके करनेवाले लोगोंको शुभाशुभ फल देनेके लिये भगवान् शिवने इन्द्र और यमके वारोंका निर्माण किया। ये दोनों वार क्रमशः भोग देनेवाले तथा लोगोंके मृत्युभयको दूर करनेवाले हैं ॥ ११—१८ १/२ ॥

इसके बाद सूर्य आदि सात ग्रहोंको, जो अपने ही स्वरूपभूत तथा प्राणियोंके लिये सुख-दुःखके सूचक हैं; भगवान् शिवने उपर्युक्त सात वारोंका स्वामी निश्चित किया। वे सब-के-सब ग्रह नक्षत्रोंके ज्योतिर्मय मण्डलमें प्रतिष्ठित हैं। [शिवके वार या दिनके स्वामी सूर्य हैं। शक्तिसम्बन्धी वारके स्वामी सोम हैं। कुमारसम्बन्धी दिनके अधिपति मंगल हैं। विष्णुवारके स्वामी बुध हैं। ब्रह्माजीके वारके अधिपति बृहस्पति हैं। इन्द्रवारके स्वामी शुक्र और यमवारके स्वामी शनैश्चर हैं।] अपने-अपने वारमें की हुई उन देवताओंकी पूजा उनके अपने-अपने फलको देनेवाली होती है ॥ १९-२० ॥

सूर्य आरोग्यके और चन्द्रमा सम्पत्तिके दाता हैं। मंगल व्याधियोंका निवारण करते हैं, बुध पुष्टि देते हैं, बृहस्पति आयुकी वृद्धि करते हैं, शुक्र भोग देते हैं और शनैश्चर मृत्युका निवारण करते हैं। ये सात वारोंके क्रमशः फल बताये गये हैं, जो उन-उन देवताओंकी प्रीतिसे प्राप्त होते हैं। अन्य देवताओंकी भी पूजाका फल देनेवाले भगवान् शिव ही हैं। देवताओंकी प्रसन्नताके लिये पूजाकी पाँच प्रकारकी ही पद्धति बनायी गयी। उन-उन देवताओंके मन्त्रोंका जप यह पहला प्रकार है। उनके लिये होम करना दूसरा, दान करना तीसरा तथा तप करना चौथा प्रकार है। किसी वेदीपर, प्रतिमामें, अग्निमें अथवा ब्राह्मणके शरीरमें आराध्य देवताकी भावना करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा या आराधना करना पाँचवाँ प्रकार है ॥ २१—२४ ॥

उत्तरोत्तरवैशिष्ठ्यात्पूर्वाभावे तथोत्तरम्।
नेत्रयोः शिरसो रोगे तथा कुष्ठस्य शान्तये॥ २५

आदित्यं पूजयित्वा तु ब्राह्मणान्भोजयेत्तः।
दिनं मासं तथा वर्षं वर्षत्रयमथापि वा॥ २६

प्रारब्धं प्रबलं चेत्स्यानश्येद् रोगजरादिकम्।
जपाद्यमिष्टदेवस्य वारादीनां फलं विदुः॥ २७

पापशान्तिर्विशेषेण ह्यादिवारे निवेदयेत्।
आदित्यस्यैव देवानां ब्राह्मणानां विशिष्टदम्॥ २८

सोमवारे च लक्ष्म्यादीन्सम्पदर्थं यजेद् बुधः।
आज्यानेन तथा विप्रान्सपलीकांश्च भोजयेत्॥ २९

काल्यादीन्भौमवारे तु यजेद् रोगप्रशान्तये।
माषमुद्गाढकानेन ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥ ३०

सौम्यवारे तथा विष्णुं दध्यनेन यजेद् बुधः।
पुत्रमित्रकलत्रादिपुष्टिर्भवति सर्वदा॥ ३१

आयुष्कामो गुरोवारे देवानां पुष्टिसिद्धये।
उपवीतेन वस्त्रेण क्षीराज्येन यजेद् बुधः॥ ३२

भोगार्थं भृगुवारे तु यजेद् देवान्समाहितः।
षड्डरसोपेतमनं च दद्याद् ब्राह्मणतृप्तये॥ ३३

स्त्रीणां च तृप्तये तद्वद् देयं वस्त्रादिकं शुभम्।
अपमृत्युहरे मन्दे रुद्रादींश्च यजेद् बुधः॥ ३४

तिलहोमेन दानेन तिलानेन च भोजयेत्।
इत्थं यजेच्च विबुधानारोग्यादिफलं लभेत्॥ ३५

इनमें पूजाके उत्तरोत्तर आधार श्रेष्ठ हैं। पूजा के अभावमें उत्तरोत्तर आधारका अवलम्बन करना चाहिये। दोनों नेत्रों तथा मस्तकके रोग और कुष्ठ रोगकी शान्तिके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तदनन्तर एक दिन, एक मास, एक वर्ष अथवा तीन वर्षतक लगातार ऐसा साधन करना चाहिये। इससे यदि प्रबल प्रारब्धका निर्माण हो जाय तो रोग एवं जरा आदिका नाश हो जाता है। इष्टदेवके नाममन्त्रोंका जप आदि साधन वार आदिके अनुसार फल देते हैं॥ २५—२७॥

रविवारको सूर्यदेवके लिये, अन्य देवताओंके लिये तथा ब्राह्मणोंके लिये विशिष्ट वस्तु अर्पित करे। यह साधन विशिष्ट फल देनेवाला होता है तथा इसके द्वारा विशेषरूपसे पापोंकी शान्ति होती है॥ २८॥

विद्वान् पुरुष सोमवारको सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मी आदिकी पूजा करे तथा सपलीक ब्राह्मणोंको घृतपक्व अन्नका भोजन कराये। मंगलवारके रोगोंकी शान्तिके लिये काली आदिकी पूजा करे तथा उड़द, मूँग एवं अरहरकी दाल आदिसे युक्त अन ब्राह्मणोंको भोजन कराये॥ २९-३०॥

विद्वान् पुरुष बुधवारको दधियुक्त अन्नसे भगवान् विष्णुका पूजन करे—ऐसा करनेसे सदा पुत्र, मित्र और स्त्री आदिकी पुष्टि होती है। जो दीर्घायु होनेकी इच्छा रखता हो, वह गुरुवारको देवताओंकी पुष्टिके लिये वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा घृतमिश्रित खीरसे यजन पूजन करे॥ ३१-३२॥

भोगोंकी प्राप्तिके लिये शुक्रवारको एकाग्रवित होकर देवताओंका पूजन करे और ब्राह्मणोंकी तृप्तिके लिये षड्डरसयुक्त अन्नका दान करे। इसी प्रकार स्त्रियोंकी प्रसन्नताके लिये सुन्दर वस्त्र आदिका दान करे। शनैश्चर अपमृत्युका निवारण करनेवाला है, उस दिन बुद्धिमान् पुरुष रुद्र आदिकी पूजा करे। तिलके होमसे, दानसे देवताओंको सन्तुष्ट करके ब्राह्मणोंको तिलमिश्रित अन्न भोजन कराये। जो इस तरह देवताओंकी पूजा करेगा, वह आरोग्य आदि फलका भागी होगा॥ ३३—३५॥

देवानां नित्ययजने विशेषयजनेऽपि च।
स्नाने दाने जपे होमे ब्राह्मणानां च तर्पणे ॥ ३६
तिथिनक्षत्रयोगे च तत्तदेवप्रपूजने।
आदिवारादिवारेषु सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ ३७
तत्तदरूपेण सर्वेषामारोग्यादिफलप्रदः।
देशकालानुसारेण तथा पात्रानुसारतः ॥ ३८
द्रव्यं श्रद्धानुसारेण तथा लोकानुसारतः।
तारतम्यक्रमाद् देवस्त्वारोग्यादीन्ययच्छति ॥ ३९

शुभादावशुभान्ते च जन्मक्षेषु गृहे गृही।
आरोग्यादिसमृद्ध्यर्थमादित्यादीन्यहान्यजेत् ॥ ४०

तस्माद्वै देवयजनं सर्वाभीष्टफलप्रदम्।
समन्वकं ब्राह्मणानामन्येषां चैव तान्त्रिकम् ॥ ४१

यथाशक्त्यनुरूपेण कर्तव्यं सर्वदा नरैः।
सप्तस्वपि च वारेषु नरैः शुभफलेषुभिः ॥ ४२

दरिद्रस्तपसा देवान्यजेदाद्यो धनेन हि।
पुनश्चैवंविधं धर्मं कुरुते श्रद्धया सह ॥ ४३

पुनश्च भोगान्विविधान्भुक्त्वा भूमौ प्रजायते।
छायां जलाशयं ब्रह्मप्रतिष्ठां धर्मसञ्चयम् ॥ ४४

सर्वं च वित्तवान्कुर्यात्सदा भोगप्रसिद्धये।
कालाच्च पुण्यपाकेन ज्ञानसिद्धिः प्रजायते ॥ ४५

य इमं शृणुतेऽध्यायं पठते वा नरो द्विजाः।
श्रवणस्योपकर्ता च देवयज्ञफलं लभेत् ॥ ४६

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां अग्नियज्ञादिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें अग्नियज्ञ आदिका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

देवताओंके नित्य-पूजन, विशेष-पूजन, स्नान, दान, जप, होम तथा ब्राह्मण-तर्पण आदिमें एवं रवि आदि वारोंमें विशेष तिथि और नक्षत्रोंका योग प्राप्त होनेपर विभिन्न देवताओंके पूजनमें सर्वज्ञ जगदीश्वर भगवान् शिव ही उन-उन देवताओंके रूपमें पूजित होकर सब लोगोंको आरोग्य आदि फल प्रदान करते हैं । देश, काल, पात्र, द्रव्य, श्रद्धा एवं लोकके अनुसार उनके तारतम्य क्रमका ध्यान रखते हुए महादेवजी आराधना करनेवाले लोगोंको आरोग्य आदि फल देते हैं ॥ ३६—३९ ॥

शुभ (मांगलिक कर्म)-के आरम्भमें और अशुभ (अन्त्येष्टि आदि कर्म)-के अन्तमें तथा जन्म-नक्षत्रोंके आनेपर गृहस्थ पुरुष अपने घरमें आरोग्य आदिकी समृद्धिके लिये सूर्य आदि ग्रहोंका पूजन करे । इससे सिद्ध है कि देवताओंका यजन सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है । ब्राह्मणोंका देवयजन कर्म वैदिक मन्त्रके साथ होना चाहिये [यहाँ ब्राह्मण शब्द क्षत्रिय और वैश्यका भी उपलक्षण है] । शूद्र आदि दूसरोंका देवयज्ञ तान्त्रिक विधिसे होना चाहिये । शुभ फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको सातों ही दिन अपनी शक्तिके अनुसार सदा देवपूजन करना चाहिये ॥ ४०—४२ ॥

निर्धन मनुष्य तपस्या (ब्रत आदिके कष्ट-सहन)-द्वारा और धनी धनके द्वारा देवताओंकी आराधना करे । वह बार-बार श्रद्धापूर्वक इस तरहके धर्मका अनुष्ठान करता है और बारम्बार पुण्यलोकोंमें नाना प्रकारके फल भोगकर पुनः इस पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता है । धनवान् पुरुष सदा भोगसिद्धिके लिये मार्गमें वृक्ष आदि लगाकर लोगोंके लिये छायाकी व्यवस्था करे, जलाशय (कुआँ, बावली और पोखरे) बनवाये, वेद-शास्त्रोंकी प्रतिष्ठाके लिये पाठशालाका निर्माण करे तथा अन्यान्य प्रकारसे भी धर्मका संग्रह करता रहे । समयानुसार पुण्यकर्मोंके परिपाकसे [अन्तःकरण शुद्ध होनेपर] ज्ञानकी सिद्धि हो जाती है । द्विजो ! जो इस अध्यायको सुनता, पढ़ता, अथवा दूसरोंको सुनाता है, उसे देवयज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ४३—४६ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

देश, काल, पात्र और दान आदिका विचार

ऋषय ऊचुः

देशादीन्क्रमशो ब्रूहि सूत सर्वार्थविज्ञम् ।

सूत उवाच

शुद्धं गृहं समफलं देवयज्ञादिकर्मसु ॥ १

ततो दशगुणं गोष्ठं जलतीरं ततो दश ।

ततो दशगुणं विल्वतुलस्यश्वत्थमूलकम् ॥ २

ततो देवालयं विद्यात्तीर्थतीरं ततो दश ।

ततो दशगुणं नद्यास्तीर्थनद्यास्ततो दश ॥ ३

सप्तगङ्गानदीतीर्थं तस्या दशगुणं भवेत् ।

गङ्गा गोदावरी चैव कावेरी ताप्रपर्णिका ॥ ४

सिन्धुश्च सरयू रेवा सप्त गङ्गाः प्रकीर्तिताः ।

ततोऽब्धितीरे दश च पर्वताग्रे ततो दश ॥ ५

सर्वस्मादधिकं ज्ञेयं यत्र वा रोचते मनः ।

कृते पूर्णफलं ज्ञेयं यज्ञदानादिकं तथा ॥ ६

त्रेतायुगे त्रिपादं च द्वापरेऽर्थं सदा स्मृतम् ।

कलौ पादं तु विज्ञेयं तत्पादोनं ततोऽर्थके ॥ ७

ऋषिगण बोले—समस्त पदार्थोंके ज्ञाताओंमें
श्रेष्ठ हे सूतजी ! अब आप क्रमशः देश, काल आदिका
वर्णन करें ॥ १/२ ॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो ! देवयज्ञ आदि
कर्मोंमें अपना शुद्ध गृह समान फल देनेवाला होता
है अर्थात् अपने घरमें किये हुए देवयज्ञ आदि
शास्त्रोक्त कर्म फलको सममात्रामें देनेवाले होते हैं।
गोशालाका स्थान घरकी अपेक्षा दसगुना फल तेता
है । जलाशयका तट उससे भी दसगुना महत्त्व रखता
है तथा जहाँ बेल, तुलसी एवं पीपलवृक्षका मूल
निकट हो, वह स्थान जलाशयसे भी दस गुना अधिक
फल देनेवाला होता है ॥ १-२ ॥

देवालयको उससे भी दस गुना महत्त्वका स्थान
जानना चाहिये । तीर्थभूमिका तट देवालयसे भी दस
गुना महत्त्व रखता है और उससे दसगुना श्रेष्ठ है
नदीका किनारा । उससे दस गुना उत्कृष्ट है तीर्थनदीका
तट और उससे भी दस गुना महत्त्व रखता है सप्तगंगा
नामक नदियोंका तीर्थ । गंगा, गोदावरी, कावेरी, ताप्रपर्णी,
सिन्धु, सरयू और नर्मदा—इन सात नदियोंको सप्तगंगा
कहा गया है । समुद्रके तटका स्थान इनसे भी दस
गुना अधिक पवित्र माना गया है और पर्वतके शिखरका
प्रदेश समुद्रतटसे भी दस गुना पावन है । सबसे अधिक
महत्त्वका वह स्थान जानना चाहिये, जहाँ मन ला
जाय [यहाँतक देशका वर्णन हुआ, अब कालका
तारतम्य बताया जाता है—] ॥ ३-५ १/२ ॥

सत्ययुगमें यज्ञ, दान आदि कर्म पूर्ण फल
देनेवाले होते हैं—ऐसा जानना चाहिये । त्रेतायुगमें
उसका तीन चौथाई फल मिलता है । द्वापरमें सदा
आधे ही फलकी प्राप्ति कही गयी है । कलियुगमें एक
चौथाई ही फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये और आधा
कलियुग बीतनेपर उस फलमेंसे भी एक चतुर्थांश कम
हो जाता है ॥ ६-७ ॥

शुद्धात्मनः शुद्धदिने पुण्यं समफलं विदुः ।
तस्माद् दशगुणं ज्ञेयं रविसङ्क्रमणे बुधाः ॥ ८

विषुवे तदशगुणमयने तदश स्मृतम् ।
तदश मृगसङ्क्रान्तौ तच्चन्द्रग्रहणे दश ॥ ९

ततश्च सूर्यग्रहणे पूर्णं कालोत्तमे विदुः ।
जगद्रूपस्य सूर्यस्य विषयोगाच्च रोगदम् ॥ १०

अतस्तद्विषशान्त्यर्थं स्नानदानजपांश्वरेत् ।
विषशान्त्यर्थकालत्वात्स कालः पुण्यदः स्मृतः ॥ ११

जन्मक्षें च व्रतान्ते च सूर्यरागोपमं विदुः ।
महतां सङ्गकालश्च कोट्यकंग्रहणं विदुः ॥ १२

तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा योगिनो यतयस्तथा ।
पूजायाः पात्रमेते हि पापसङ्क्षयकारणम् ॥ १३

चतुर्विंशतिलक्षणं वा गायत्रा जपसंयुतः ।
ब्राह्मणस्तु भवेत्पात्रं सम्पूर्णफलभोगदम् ॥ १४

पतनात्रायत इति पात्रं शास्त्रे प्रयुज्यते ।
दातुश्च पातकात्राणात्पात्रमित्यभिधीयते ॥ १५

शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषको शुद्ध एवं पवित्र दिन सम फल देनेवाला होता है। हे विद्वान् ब्राह्मणो! सूर्य-संक्रान्तिके दिन किया हुआ सत्कर्म पूर्वोक्त शुद्ध दिनकी अपेक्षा दस गुना फल देनेवाला होता है—यह जानना चाहिये। उससे भी दस गुना अधिक महत्व उस कर्मका है, जो विषुव* नामक योगमें किया जाता है। दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन अर्थात् कर्ककी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका महत्व विषुवसे भी दस गुना अधिक माना गया है। उससे भी दसगुना अधिक मकर-संक्रान्तिमें और उससे भी दस गुना अधिक चन्द्रग्रहणमें किये हुए पुण्यका महत्व है। सूर्यग्रहणका समय सबसे उत्तम है। उसमें किये गये पुण्यकर्मका फल चन्द्रग्रहणसे भी अधिक और पूर्णमात्रामें होता है—इस बातको विज्ञ पुरुष जानते हैं। जगद्रूपी सूर्यका राहुरूपी विषसे संयोग होता है, इसलिये सूर्यग्रहणका समय रोग प्रदान करनेवाला है। अतः उस विषकी शान्तिके लिये उस समय स्नान, दान और जप करना चाहिये। वह काल विषकी शान्तिके लिये उपयोगी होनेके कारण पुण्यप्रद माना गया है ॥ ८—११ ॥

जन्म-नक्षत्रके दिन तथा व्रतकी पूर्तिके दिनका समय सूर्यग्रहणके समान ही समझा जाता है। परंतु महापुरुषोंके संगका काल करोड़ों सूर्यग्रहणके समान पावन है—ऐसा ज्ञानी पुरुष मानते हैं ॥ १२ ॥

तपोनिष्ठ योगी और ज्ञाननिष्ठ यति—ये पूजाके पात्र हैं; क्योंकि ये पापोंके नाशमें कारण होते हैं। जिसने चौबीस लाख गायत्रीका जप कर लिया हो, वह ब्राह्मण भी पूजाका पात्र है; उसका पूजन सम्पूर्ण फलों और भोगोंको देनेमें समर्थ है। जो पतनसे त्राण करता अर्थात् नरकमें गिरनेसे बचाता है, उसके लिये [इसी गुणके कारण शास्त्रमें] पात्र शब्दका प्रयोग होता है। वह दाताको पापसे त्राण प्रदान करनेके कारण पात्र कहलाता है ॥ १३—१५ ॥

* ज्योतिषके अनुसार वह समय जबकि सूर्य विषुव रेखापर पहुँचता है और दिन तथा रात दोनों बराबर होते हैं। यह वर्षमें दो बार आता है—एक तो सौर चैत्रमासकी नवमी तिथि या अँगरेजी दिनांक २१ मार्चको और दूसरा आश्विनकी नवमी तिथि या अँगरेजी दिनांक २२ सितम्बरको।

गायकं त्रायते पाताद्गायत्रीत्युच्यते हि सा ।
यथार्थहीनो लोकेऽस्मिन्परस्यार्थं न यच्छति ॥ १६

अर्थवानिह यो लोके परस्यार्थं प्रयच्छति ।
स्वयं शुद्धो हि पूतात्मा नरान्सन्नातुमर्हति ॥ १७

गायत्रीजपशुद्धो हि शुद्धब्राह्मण उच्यते ।
तस्माद् दाने जपे होमे पूजायां सर्वकर्मणि ॥ १८

दानं कर्तुं तथा त्रातुं पात्रत्वं ब्राह्मणोऽर्हति ।
अन्स्य क्षुधितं पात्रं नारीनरमयात्मकम् ॥ १९

ब्राह्मणं श्रेष्ठमाहूय यत्काले सुसमाहितम् ।
तदर्थं शब्दमर्थं वा सद्बोधकमभीष्टदम् ॥ २०

इच्छावतः प्रदानं च सम्पूर्णफलदं विदुः ।
यत्प्रश्नानन्तरं दत्तं तदर्थफलदं विदुः ॥ २१

यत्सेवकाय दत्तं स्यात्तपादफलदं विदुः ।
जातिमात्रस्य विप्रस्य दीनवृत्तेद्विजर्षभाः ॥ २२

दत्तमर्थं हि भोगाय भूर्लोके दशवार्षिकम् ।
वेदयुक्तस्य विप्रस्य स्वर्गे हि दशवार्षिकम् ॥ २३

गायत्रीजपयुक्तस्य सत्ये हि दशवार्षिकम् ।
विष्णुभक्तस्य विप्रस्य दत्तं वैकुण्ठदं विदुः ॥ २४

शिवभक्तस्य विप्रस्य दत्तं कैलासदं विदुः ।
तत्तल्लोकोपभोगार्थं सर्वेषां दानमिष्यते ॥ २५

गायत्री अपना गान करनेवालेका अधोगतिसे त्राण करती है, इसलिये वह गायत्री कहलाती है। जैसे इस लोकमें जो धनहीन है, वह दूसरेको धन नहीं दे सकता—जो यहाँ धनवान् है, वही दूसरेको धन दे सकता है, उसी तरह जो स्वयं शुद्ध और पवित्रात्मा है, वही दूसरे मनुष्योंका त्राण या उद्धार कर सकता है। जो गायत्रीका जप करके शुद्ध हो गया है, वही शुद्ध ब्राह्मण कहा जाता है। इसलिये दान, जप, होम, पूजा—इन सभी कर्मोंके लिये वही शुद्ध पात्र है। ऐसा ब्राह्मण ही दान लेने तथा रक्षा करनेकी पात्रता रखता है ॥ १६—१८१/२ ॥

स्त्री हो या पुरुष—जो भी भूखा हो, वही अन्नदानका पात्र है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको समयपर बुलाकर उसे धन अथवा उत्तम वाणीसे सन्तुष्ट करना चाहिये, इससे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जिसको जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वह वस्तु बिना माँगे ही दे दी जाय, तो दाताको उस दानका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है—ऐसी महर्षियोंकी मान्यता है। जो याचना करनेके बाद दिया गया हो, वह दान आधा ही फल देनेवाला बताया गया है। अपने सेवकको दिया हुआ दान एक चौथाई फल देनेवाला कहा गया है। हे विप्रवरो ! जो जातिमात्रसे ब्राह्मण है और दीनतापूर्ण वृत्तिसे जीवन बिताता है, उसे दिया हुआ धनका दान दाताको इस भूतलपर दस वर्षोंतक भोग प्रदान करनेवाला होता है। वही दान यदि वेदवेत्ता ब्राह्मणको दिया जाय, तो वह स्वर्गलोकमें देवताओंके दस वर्षोंतक दिव्य भोग देनेवाला होता है ॥ १९—२३ ॥

गायत्री-जापक ब्राह्मणको दान देनेसे सत्यलोकमें दस वर्षोंतक पुण्यभोग प्राप्त होता है और विष्णुभक्त ब्राह्मणको दिया गया दान वैकुण्ठकी प्राप्ति करनेवाला जाना जाता है। शिवभक्त विप्रको दिया हुआ दान कैलासकी प्राप्ति कराने वाला कहा गया है। इस प्रकार सबको इन लोकोंमें भोगप्राप्तिके लिये दान देना चाहिये ॥ २४-२५ ॥

दशाङ्गमनं विप्रस्य भानुवारे ददन्नरः।
परजन्मनि चारोग्यं दशवर्षं समश्नुते॥ २६

बहुमानमथाहानमभ्यङ्गं पादसेवनम्।
वासो गन्धाद्यर्चनं च घृतापूपरसोत्तरम्॥ २७

घड्रसं व्यञ्जनं चैव ताम्बूलं दक्षिणोत्तरम्।
नमश्नानुगमश्चैव स्वन्दानं दशाङ्गकम्॥ २८

दशाङ्गमनं विप्रेभ्यो दशभ्यो वै ददन्नरः।
अर्कवारे तथारोग्यं शतवर्षं समश्नुते॥ २९

सोमवारादिवारेषु तत्तद्वारगुणं फलम्।
अन्नदानस्य विज्ञेयं भूलोके परजन्मनि॥ ३०

सप्तस्वपि च वारेषु दशभ्यश्च दशाङ्गकम्।
अन्नं दत्त्वा शतं वर्षमारोग्यादिकमश्नुते॥ ३१

एवं शतेभ्यो विप्रेभ्यो भानुवारे ददन्नरः।
सहस्रवर्षमारोग्यं शर्वलोके समश्नुते॥ ३२

सहस्रेभ्यस्तथा दत्त्वाऽयुतवर्षं समश्नुते।
एवं सोमादिवारेषु विज्ञेयं हि विपश्चिता॥ ३३

भानुवारे सहस्राणां गायत्रीपूतचेतसाम्।
अन्नं दत्त्वा सत्यलोके ह्यारोग्यादि समश्नुते॥ ३४

अयुतानां तथा दत्त्वा विष्णुलोके समश्नुते।
अन्नं दत्त्वा तु लक्षाणां रुद्रलोके समश्नुते॥ ३५

बालानां ब्रह्मबुद्ध्या हि देयं विद्यार्थिभिर्नैः।
यूनां च विष्णुबुद्ध्या हि पुत्रकामार्थिभिर्नैः॥ ३६

वृद्धानां रुद्रबुद्ध्या हि देयं ज्ञानार्थिभिर्नैः।
बालस्त्री भारतीबुद्ध्या बुद्धिकामैर्नरोत्तमैः॥ ३७

लक्ष्मीबुद्ध्या युवस्त्रीषु भोगकामैर्नरोत्तमैः।
वृद्धासु पार्वतीबुद्ध्या देयमात्मार्थिभिर्जनैः॥ ३८

रविवारके दिन ब्राह्मणको दशांग अन्न देनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें दस वर्षोंतक निरोग रहता है। बहुत सम्मानपूर्वक बुलाना, अभ्यंग (चन्दन आदि), पादसेवन, वस्त्र, गन्ध आदिसे पूजन, घीके मालपुण आदि सुन्दर भोजन, छहों रस, व्यंजन, दक्षिणासहित ताम्बूल, नमस्कार और (जाते समय) अनुगमन—ये अन्नदानके दस अंग कहे गये हैं॥ २६—२८॥

दस ब्राह्मणोंको रविवारके दिन दशांग अन्नका दान करनेवाला सौ वर्षोंतक निरोग रहता है। सोमवार आदि विभिन्न वारोंमें अन्नदानका फल उन-उन वारोंके अनुसार दूसरे जन्ममें इस पृथ्वीलोकमें प्राप्त होता है—ऐसा जानना चाहिये। सातों वारोंमें दस-दस ब्राह्मणोंको दशांग अन्नदान करनेसे सौ वर्षोंतक आरोग्यादि फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार रविवारके दिन ब्राह्मणोंको अन्नदान करने वाला मनुष्य हजार वर्षोंतक शिवलोकमें आरोग्यलाभ करता है। इसी प्रकार हजार ब्राह्मणोंको अन्नदान करके मनुष्य दस हजार वर्षोंतक आरोग्यभोग करता है। विद्वान् को सोमवार आदि दिनोंके विषयमें भी ऐसा ही जानना चाहिये॥ २९—३३॥

रविवारको गायत्रीजपसे पवित्र अन्तःकरणवाले एक हजार ब्राह्मणोंको अन्नदान करके मनुष्य सत्यलोकमें आरोग्यादि भोगोंको प्राप्त करता है। इसी प्रकार दस हजार ब्राह्मणोंको दान देनेसे विष्णुलोकमें ऐसी प्राप्ति होती है और एक लाख ब्राह्मणोंको अन्नदान करनेसे रुद्रलोकमें भोगादिकी प्राप्ति होती है॥ ३४-३५॥

विद्याकी कामनावाले मनुष्योंको ब्रह्मबुद्धिसे बालकोंको दशांग अन्नका दान करना चाहिये, पुत्रकी कामनावाले लोगोंको विष्णुबुद्धिसे युवकोंको दान करना चाहिये और ज्ञानप्राप्तिकी इच्छावालोंको रुद्रबुद्धिसे वृद्धजनोंको दान देना चाहिये। इसी प्रकार बुद्धिकी कामना करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्योंको सरस्वतीबुद्धिसे बालिकाओंको दशांग अन्नका दान करना चाहिये। सुखभोगकी कामनावाले श्रेष्ठजनोंको लक्ष्मीबुद्धिसे युवतियोंको दान देना चाहिये। आत्मज्ञानकी इच्छावाले लोगोंको पार्वतीबुद्धिसे वृद्धा स्त्रियोंको अन्नदान करना चाहिये॥ ३६—३८॥

शिलवृत्त्योऽच्छवृत्त्या च गुरुदक्षिणयार्जितम् ।
शुद्धद्रव्यमिति प्राहुस्तत्पूर्णफलदं विदुः ॥ ३९

शुक्लप्रतिग्रहादत्तं मध्यमं द्रव्यमुच्यते ।
कृषिवाणिज्यकोपेतमधमं द्रव्यमुच्यते ॥ ४०

क्षत्रियाणां विशां चैव शौर्यवाणिज्यकार्जितम् ।
उत्तमं द्रव्यमित्याहुः शूद्राणां भृतकार्जितम् ॥ ४१

स्त्रीणां धर्मार्थिनां द्रव्यं पैतृकं भर्तृकं तथा ।
गवादीनां द्वादशानां चैत्रादिषु यथाक्रमम् ॥ ४२

सम्भूय वा पुण्यकाले दद्यादिष्टसमृद्धये ।
गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ॥ ४३

रौप्यं लवणकूष्माण्डं कन्या द्वादशकं तथा ।
गोदानादत्तगव्येन गोमयेनोपकारिणा ॥ ४४

धनधान्याद्याश्रितानां दुरितानां निवारणम् ।
जलस्नेहाद्याश्रितानां दुरितानां तु गोजलैः ॥ ४५

कायिकादित्रयाणां तु क्षीरदध्याज्यकैस्तथा ।
तथा तेषां च पुष्टिश्च विज्ञेया हि विपश्चिता ॥ ४६

भूदानं तु प्रतिष्ठार्थमिह चामुत्र च द्विजाः ।
तिलदानं बलार्थं हि सदा मृत्युजयं विदुः ॥ ४७

ब्राह्मणके लिये शिल तथा उज्ज्ञ* वृत्तिसे लाया हुआ और गुरुदक्षिणामें प्राप्त हुआ अन्न-धन शुद्ध द्रव्य कहलाता है; उसका दान दाताको पूर्ण फल देनेवाला बताया गया है ॥ ३९ ॥

शुद्ध (शुक्ल) प्रतिग्रह (दान)-में मिला हुआ द्रव्य मध्यम द्रव्य कहा जाता है और खेती, व्यापार आदिसे प्राप्त धन अधम द्रव्य कहा जाता है ॥ ४० ॥

क्षत्रियोंका शौर्यसे कमाया हुआ, वैश्योंका व्यापारसे कमाया हुआ और शूद्रोंका सेवावृत्तिसे प्राप्त किया हुआ धन भी उत्तम द्रव्य कहलाता है। धर्मकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंको जो धन पिता एवं पतिसे मिला हुआ हो, उनके लिये वह उत्तम द्रव्य है ॥ ४१ १/२ ॥

गौ आदि बारह वस्तुओंका चैत्र आदि बारह महीनोंमें क्रमशः दान करना चाहिये अथवा किसी पुण्यकालमें एकत्रित करके अपनी अभीष्ट प्राप्तिके लिये इनका दान करना चाहिये। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चाँदी, नमक, कोंहड़ा और कन्या—ये ही वे बारह वस्तुएँ हैं ॥ ४२-४३ १/२ ॥

गोदानमें दी हुई गायके उपकारी गोबरसे धन-धान्यादि ठोस पदार्थोंके आश्रयसे टिके पापोंका नाश होता है और उसके गोमूत्रसे जल-तेल आदि तरल पदार्थोंमें रहनेवाले पापोंका नाश होता है। उसके दूध-दही और घीसे कायिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। उनसे कायिक आदि पुण्यकर्मोंकी पुष्टि भी होती है—ऐसा बुद्धिमात् मनुष्यको जानना चाहिये ॥ ४४—४६ ॥

हे ब्राह्मणो ! भूमिका दान इहलोक और परलोकमें प्रतिष्ठा (आश्रय)-की प्राप्ति करानेवाला है। तिलका दान बलवर्धक एवं मृत्युका निवारक कहा गया है।

* किसानके द्वारा खेतमें बोये हुए अन्नको काटकर ले जानेके बाद उनसे गिरे हुए एक-एक दानेको दोनों अंगुलियोंसे चुनने (उठाने)-को 'उज्ज्ञ' तथा उक्त खेतमें एक-एक बाल (धान्यके गुच्छों)-को चुननेको 'शिल' कहते हैं—'उज्ज्ञ धान्यकणादानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्।' मनुस्मृतिके टीकाकार आचार्य श्रीराघवानन्दजीने बाजार आदिमें क्रय-विक्रयके अनन्तर गिरे हुए अन्नके दानोंके चुननेको 'उज्ज्ञ' और खेत कट जानेके बाद खेतमें पड़े हुए धान्यादिकी बालोंको बीनना 'शिल' कहा है। (मनु० ४।५ की व्याख्या)

हिरण्यं जाठराग्रेस्तु वृद्धिं वीर्यं तथा ।
आज्यं पुष्टिकरं विद्याद्वस्त्रमायुष्करं विदुः ॥ ४८

धान्यमन्नसमृद्ध्यर्थं मधुराहारं गुडम् ।
रौप्यं रेतोऽभिवृद्ध्यर्थं षड्सार्थं तु लावणम् ॥ ४९

सर्वं सर्वसमृद्ध्यर्थं कूष्माणं पुष्टिं विदुः ।
प्राप्तिं सर्वभोगानामिह चामुत्र च द्विजाः ॥ ५०

यावज्जीवनमुक्तं हि कन्यादानं तु भोगदम् ।
पनसाम्रकपित्थानां वृक्षाणां फलमेव च ॥ ५१
कदल्याद्यौषधीनां च फलं गुल्मोद्धवं तथा ।
माषादीनां च मुद्दानां फलं शाकादिकं तथा ॥ ५२
मरीचिसर्षपाद्यानां शाकोपकरणं तथा ।
यदृतौ यत्फलं सिद्धं तदेयं हि विपश्चिता ॥ ५३

श्रोत्रादीन्द्रियतृप्तिश्च सदा देया विपश्चिता ।
शब्दादिदशभोगार्थं दिगादीनां च तुष्टिदा ॥ ५४

वेदशास्त्रं समादाय बुद्ध्वा गुरुमुखात्स्वयम् ।
कर्मणां फलमस्तीति बुद्धिरस्तिक्यमुच्यते ॥ ५५

बन्धुराजभयाद् बुद्धिः श्रद्धा सा च कनीयसी ।

सुवर्णका दान जठराग्निको बढ़ानेवाला तथा वीर्यदायक है। घीके दानको पुष्टिकारक जानना चाहिये। वस्त्रका दान आयुकी वृद्धि करानेवाला है—ऐसा जानना चाहिये। धान्यका दान अन्नकी समृद्धिमें कारण होता है। गुड़का दान मधुर भोजनकी प्राप्ति करानेवाला होता है। चाँदीके दानसे वीर्यकी वृद्धि होती है। लवणका दान षड्स भोजनकी प्राप्ति कराता है। सब प्रकारका दान सम्पूर्ण समृद्धिकी सिद्धिके लिये होता है। विज्ञ पुरुष कूष्माण्डके दानको पुष्टिदायक मानते हैं। कन्याका दान आजीवन भोग देनेवाला कहा गया है। हे ब्राह्मणो! वह लोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाला है ॥ ४७—५० १/२ ॥

कटहल-आम, कैथ आदि वृक्षोंके फल, केला आदि ओषधियोंके फल तथा जो फल लता एवं गुल्मोंसे उत्पन्न हुए हों, मुष्ट (आवरणयुक्त) फल जैसे—नारियल, बादाम आदि, उड़द, मूँग आदि दालें, शक, मिर्च, सरसों आदि, तेल-मसाले और ऋतुओंमें तैयार होनेवाले फल समय-समयपर बुद्धिमान् व्यक्तिद्वारा दान किये जाने चाहिये ॥ ५१—५३ ॥

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिन वस्तुओंसे श्रवण आदि इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उनका सदा दान करे। श्रोत्र आदि दस इन्द्रियोंके जो शब्द आदि दस विषय हैं, उनका दान किया जाय, तो वे भोगोंकी प्राप्ति कराते हैं तथा दिशा आदि इन्द्रिय देवताओंको* सन्तुष्ट करते हैं। वेद और शास्त्रको गुरुमुखसे ग्रहण करके गुरुके उपदेशसे अथवा स्वयं ही बोध प्राप्त करनेके पश्चात् जो बुद्धिका यह निश्चय होता है कि ‘कर्मोंका फल अवश्य मिलता है’, इसीको उच्चकोटिकी ‘आस्तिकता’ कहते हैं। भाई-बन्धु अथवा राजाके भयसे जो आस्तिकता-बुद्धि या श्रद्धा होती है, वह कनिष्ठ श्रेणीकी आस्तिकता है ॥ ५४-५५ १/२ ॥

* श्रवणेन्द्रियके देवता दिशाएँ, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, रसनेन्द्रियके वरुण, त्वगिन्द्रियके वायु, वागिन्द्रियके अग्नि, लिंगके प्रजापति, गुदाके मित्र, हाथोंके इन्द्र और पैरोंके देवता विष्णु हैं।

सर्वभावे दरिद्रस्तु वाचा वा कर्मणा यजेत् ॥ ५६

वाचिकं यजनं विद्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिकम् ।
तीर्थयात्रा व्रताद्यं हि कायिकं यजनं विदुः ॥ ५७

येन केनाप्युपायेन हृल्पं वा यदि वा बहु ।
देवतार्पणबुद्ध्या च कृतं भोगाय कल्पते ॥ ५८

तपश्चर्या च दानं च कर्तव्यमुभयं सदा ।
प्रतिश्रयं प्रदातव्यं स्ववर्णं गुणशोभितम् ॥ ५९

देवानां तृप्तयेऽत्यर्थं सर्वभोगप्रदं बुधैः ।
इहामुत्रोत्तमं जन्म सदा भोगं लभेद् बुधः ।
ईश्वरार्पणबुद्ध्या हि कृत्वा मोक्षफलं लभेत् ॥ ६०

य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति सदा नरः ।

तस्य वै धर्मबुद्धिश्च ज्ञानसिद्धिः प्रजायते ॥ ६१

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां देशकालपात्रादिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें देश-काल-पात्र आदिका वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

मृत्तिका आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके लिये नैवेद्यका विचार,
पूजनके विभिन्न उपचारोंका फल, विशेष मास, वार, तिथि एवं नक्षत्रोंके योगमें
पूजनका विशेष फल तथा लिंगके वैज्ञानिक स्वरूपका विवेचन

ऋषय ऊचुः

पार्थिवप्रतिमापूजाविधानं ब्रूहि सत्तम ।

येन पूजाविधानेन सर्वभीष्टमवाप्यते ॥ १

जो सर्वथा दरिद्र है, जिसके पास सभी वस्तुओंका अभाव है, वह वाणी अथवा कर्म (शरीर)-द्वारा यजन करे। मन्त्र, स्तोत्र और जप आदिको वाणीद्वारा किया गया यजन समझना चाहिये तथा तीर्थयात्रा और व्रत आदिको विद्वान् पुरुष शारीरिक यजन मानते हैं। जिस किसी भी उपायसे थोड़ा हो या बहुत, देवतार्पण-बुद्धिसे जो कुछ भी दिया अथवा किया जाय, वह दान या सत्कर्म भोगोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है ॥ ५६—५८ ॥

तपस्या और दान—ये दो कर्म मनुष्यको सदा करने चाहिये तथा ऐसे गृहका दान करना चाहिये, जो अपने वर्ण (चमक-दमक या सफाई) और गुण (सुख-सुविधा)-से सुशोभित हो। बुद्धिमान् पुरुष देवताओंकी तृप्तिके लिये जो कुछ देते हैं, वह अतिशय मात्रामें और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाला होता है। उस दानसे विद्वान् पुरुष इहलोक और परलोकमें उत्तम जन्म और सदा सुलभ होनेवाला भोग पाता है। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे यज्ञ, दान आदि कर्म करके मनुष्य मोक्ष-फलका भागी होता है ॥ ५९-६० ॥

जो मनुष्य इस अध्यायका सदा पाठ अथवा श्रवण करता है, उसे धार्मिक बुद्धि प्राप्त होती है तथा उसमें ज्ञानका उदय होता है ॥ ६१ ॥

ऋषिगण बोले—हे साधुशिरोमणे ! अब आप पार्थिव प्रतिमाकी पूजाका वह विधान बताइये, जिस पूजा-विधानसे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

सूत उवाच

सुसाधु पृष्ठं युष्माभिः सदा सर्वार्थदायकम् ।
सद्यो दुःखस्य शमनं शृणुत प्रब्रवीमि वः ॥ २

अपमृत्युहरं कालमृत्योश्चापि विनाशनम् ।
सद्यः कलत्रपुत्रादिधनधान्यप्रदं द्विजाः ॥ ३

अन्नादिभोज्यं वस्त्रादि सर्वमृत्यद्यते यतः ।
ततो मृदादिप्रतिमापूजाभीष्टप्रदा भुवि ॥ ४

पुरुषाणां च नारीणामधिकारोऽत्र निश्चितम् ।
नद्यां तडागे कूपे वा जलान्तर्मृदमाहरेत् ॥ ५

संशोध्य गन्धचूर्णेन पेषयित्वा सुमण्डपे ।
हस्तेन प्रतिमां कुर्यात्क्षीरेण च सुसंस्कृताम् ॥ ६

अङ्गप्रत्यङ्गकोपेतामायुधैश्च समन्विताम् ।
पद्मासनस्थितां कृत्वा पूजयेदादरेण हि ॥ ७

विघ्नेशादित्यविष्णूनामम्बायाश्च शिवस्य च ।
शिवस्य शिवलिङ्गं च सर्वदा पूजयेद् द्विजः ॥ ८

षोडशैरुपचारैश्च कुर्यात्तफलसिद्धये ।
पुष्येण प्रोक्षणं कुर्यादभिषेकं समन्वकम् ॥ ९

शाल्यनेनैव नैवेद्यं सर्वं कुडवमानतः ।
गृहे तु कुडवं ज्ञेयं मानुषे प्रस्थमिष्यते ॥ १०

दैवे प्रस्थत्रयं योग्यं स्वयम्भोः प्रस्थपञ्चकम् ।
एवं पूर्णफलं विद्यादधिकं वै द्वयं त्रयम् ॥ ११

सहस्रपूजया सत्यं सत्यलोकं लभेद् द्विजः ।

सूतजी बोले—हे महर्षियो ! तुमलोगोंने बहुत उत्तम बात पूछी है। पार्थिव प्रतिमाका पूजन सदा सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है तथा दुःखका तत्काल निवारण करनेवाला है। मैं उसका वर्णन करता हूँ, [ध्यान देकर] सुनिये ॥ २ ॥

हे द्विजो ! यह पूजा अकाल मृत्युको हरनेवाली तथा काल और मृत्युका भी नाश करनेवाली है। यह शीघ्र ही स्त्री, पुत्र और धन-धान्यको प्रदान करनेवाली है। इसलिये पृथ्वी आदिकी बनी हुई देवप्रतिमाओंकी पूजा इस भूतलपर अभीष्टदायक मर्नी गयी है; निश्चय ही इसमें पुरुषोंका और स्त्रियोंका भी अधिकार है ॥ ३-४१/२ ॥

नदी, पोखरे अथवा कुएँमें प्रवेश करके पानीके भीतरसे मिट्टी ले आये। तत्पश्चात् गन्ध-चूर्णके द्वारा उसका संशोधन करके शुद्ध मण्डपमें रखकर उसे महीन बनाये तथा हाथसे प्रतिमा बनाये और दूधसे उसका सम्यक् संस्कार करे। उस प्रतिमामें अंग-प्रत्यंग अच्छी तरह प्रकट हुए हों तथा वह सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न बनायी गयी हो। तदनन्तर उसे पद्मासनपर स्थापित करके आदर-पूर्वक उसका पूजन करे। गणेश, सूर्य, विष्णु, दुर्गा और शिवजीकी प्रतिमाका एवं शिवजीके शिवलिंगका द्विजको सदा पूजन करना चाहिये। पूजनजनित फलकी सिद्धिके लिये सोलह उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये ॥ ५-८१/२ ॥

पुष्यसे प्रोक्षण और मन्त्रपाठपूर्वक अभिषेक करे। अगहनीके चावलसे नैवेद्य तैयार करे। सारा नैवेद्य एक कुडव (लगभग पावभर) होना चाहिये। घरमें पार्थिव-पूजनके लिये एक कुडव और बाहर किसी मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिंगके पूजनके लिये एक प्रस्थ (सेरभर) नैवेद्य तैयार करना आवश्यक है—ऐसा जानना चाहिये। देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये तीन सेर नैवेद्य अर्पित करना उचित है और स्वयं प्रकट हुए लिंगके लिये पाँच सेर। ऐसा करनेसे पूर्ण फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये। इससे दुगुना या तिगुना करनेपर और अधिक फल प्राप्त होता है। इस प्रकार सहस्र बार पूजन करनेसे द्विज सत्यलोकको प्राप्त कर लेता है ॥ ९-१११/२ ॥

द्वादशाङ्गुलमायामं द्विगुणं च ततोऽधिकम् ॥ १२

प्रमाणमङ्गुलस्यैकं तदूर्ध्वं पञ्चकत्रयम् ।
अयोदारुकृतं पात्रं शिवमित्युच्यते बुधैः ॥ १३

तदष्टभागः प्रस्थः स्यात्तच्चतुष्कुडवं मतम् ।
दशप्रस्थं शतप्रस्थं सहस्रप्रस्थमेव च ॥ १४

जलतैलादिगन्धानां यथायोग्यं च मानतः ।
मानुषार्षस्वयम्भूनां महापूजेति कथ्यते ॥ १५

अभिषेकादात्मशुद्धिर्गन्धात्पुण्यमवाप्यते ।
आयुस्तृप्तिश्च नैवेद्याद् धूपादर्थमवाप्यते ॥ १६

दीपाञ्जानमवाज्ञोति ताम्बूलाद्दोगमाज्ञयात् ।
तस्मात्स्नानादिकं षट्कं प्रयत्नेन प्रसाधयेत् ॥ १७

नमस्कारो जपश्चैव सर्वाभीष्टप्रदावुभौ ।
पूजान्ते च सदा कायौ भोगमोक्षार्थिभिर्नैः ॥ १८

सम्पूर्ज्य मनसा पूर्वं कुर्यात्तत्सदा नरः ।
देवानां पूजया चैव तत्त्वल्लोकमवाज्ञयात् ॥ १९

तदवान्तरलोके च यथेष्टं भोग्यमाप्यते ।
तद्विशेषान्प्रवक्ष्यामि शृणुत श्रद्धया द्विजाः ॥ २०

विघ्नेशपूजया सम्यग्भूलोकेऽभीष्टमाज्ञयात् ।
शुक्रवारे चतुर्थ्याञ्च सिते श्रावणभाद्रके ॥ २१

भिषगृक्षे धनुर्मासे विघ्नेशं विधिवद्यजेत् ।
शतं पूजा सहस्रं वा तत्सद्भ्याकदिनैर्वर्जेत् ॥ २२

बारह अँगुल चौड़ा, इससे दूना और एक अँगुल अधिक अर्थात् पचीस अँगुल लम्बा तथा पन्द्रह अँगुल ऊँचा जो लोहे या लकड़ीका बना हुआ पात्र होता है, उसे विद्वान् पुरुष शिव कहते हैं। उसका आठवाँ भाग प्रस्थ कहलाता है, जो चार कुडवके बराबर माना गया है। मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये दस प्रस्थ, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये सौ प्रस्थ और स्वयम्भू शिवलिंगके लिये एक सहस्र प्रस्थ नैवेद्य निवेदन किया जाय तथा जल, तैल आदि एवं गन्ध द्रव्योंकी भी यथायोग्य मात्रा रखी जाय तो यह उन शिवलिंगोंकी महापूजा बतायी जाती है ॥ १२—१५ ॥

देवताका अभिषेक करनेसे आत्मशुद्धि होती है, गन्धसे पुण्यकी प्राप्ति होती है, नैवेद्य अर्पण करनेसे आयु बढ़ती है और तृप्ति होती है, धूप निवेदन करनेसे धनकी प्राप्ति होती है, दीप दिखानेसे ज्ञानका उदय होता है और ताम्बूल समर्पण करनेसे भोगकी उपलब्धि होती है। इसलिये स्नान आदि छः उपचारोंको यत्पूर्वक अर्पित करे ॥ १६-१७ ॥

नमस्कार और जप—ये दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट फलके देनेवाले हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको पूजाके अन्तमें सदा ही जप और नमस्कार करना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह सदा पहले मनसे पूजा करके फिर उन-उन उपचारोंसे पूजा करे। देवताओंकी पूजासे उन-उन देवताओंके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा उनके अवान्तर लोकमें भी यथेष्ट भोगकी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं ॥ १८-१९ १/२ ॥

हे द्विजो ! अब मैं देवपूजासे प्राप्त होनेवाले विशेष फलोंका वर्णन करता हूँ। आपलोग श्रद्धापूर्वक सुनें। विघ्नराज गणेशकी पूजासे भूलोकमें उत्तम अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। शुक्रवारको, श्रावण और भाद्रपद मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्थीको और पौषमासमें शतभिष्ठ नक्षत्रके आनेपर विधिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। सौ या सहस्र दिनोंमें सौ या सहस्र बार पूजा करे। देवता और अग्निमें श्रद्धा रखते हुए किया जानेवाला उनका नित्य पूजन मनुष्योंको पुत्र एवं अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है। वह समस्त पापोंका शमन तथा भिन-

देवाग्निश्रद्धया नित्यं पुत्रं चेष्टदं नृणाम् ।
सर्वपापप्रशमनं तत्तदुरितनाशनम् ॥ २३

वारपूजां शिवादीनामात्मशुद्धिप्रदां विदुः ।
तिथिनक्षत्रयोगानामाधारं सार्वकामिकम् ॥ २४

तथा वृद्धिक्षयाभावात्पूर्णब्रह्मात्मकं विदुः ।
उदयादुदयं वारो ब्रह्मप्रभृतिकर्मणाम् ॥ २५

तिथ्यादौ देवपूजा हि पूर्णभोगप्रदा नृणाम् ।
पूर्वभागः पितृणां तु निशियुक्तः प्रशस्यते ॥ २६

परभागस्तु देवानां दिवायुक्तः प्रशस्यते ।
उदयव्यापिनी ग्राह्या मध्याह्ने यदि सा तिथिः ॥ २७

देवकार्यं तथा ग्राह्यास्तिथिनक्षत्रादिकाः शुभाः ।
सम्यग्विचार्यं वारादीन्कुर्यात्पूजाजपादिकम् ॥ २८

पूजायिते ह्यनेनेति वेदेष्वर्थस्य योजना ।
पूर्भोगफलसिद्धिश्च जायते तेन कर्मणा ॥ २९

मनोभावांस्तथा ज्ञानमिष्टभोगार्थयोजनात् ।
पूजाशब्दार्थं एवं हि विश्रुतो लोकवेदयोः ॥ ३०

नित्यं नैमित्तिकं कालात्सद्यः काम्ये स्वनुष्ठिते ।
नित्यं मासं च पक्षं च वर्षं चैव यथाक्रमम् ॥ ३१

तत्तत्कर्मफलप्राप्तिस्तादृक्पापक्षयः क्रमात् ।

भिन्न दुष्कर्मोंका विनाश करनेवाला है। विभिन्न वारोंमें की हुई शिव आदिकी पूजाको आत्मशुद्धि प्रदान करनेवाली समझना चाहिये। वार या दिन तिथि, नक्षत्र और योगोंका आधार है। वह समस्त कामनाओंको देनेवाला है। उसमें वृद्धि और क्षय नहीं होता है, इसलिये उसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूप मानना चाहिये। सूर्योदयकालसे लेकर दूसरे सूर्योदयकाल आनेतक एक वारकी स्थिति मानी गयी है, जो ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंके कर्मोंका आधार है। विहित तिथिके पूर्वभागमें की हुई देवपूजा मनुष्योंको पूर्ण भोग प्रदान करनेवाली होती है ॥ २०—२५ १/२ ॥

यदि मध्याह्नके बाद तिथिका आरम्भ होता है, तो रात्रियुक्त तिथिका पूर्वभाग पितरोंके श्राद्ध आदि कर्मके लिये उत्तम बताया जाता है। ऐसी तिथिका परभाग ही दिनसे युक्त होता है, अतः वही देवकर्मके लिये प्रशस्त माना गया है। यदि मध्याह्नकालतक तिथि रहे तो उदयव्यापिनी तिथिको ही देवकार्यमें ग्रहण करना चाहिये। इसी तरह शुभ तिथि एवं नक्षत्र आदि देवकार्यमें ग्राह्य होते हैं। वार आदिका भलीभाँति विचार करके पूजा और जप आदि करने चाहिये ॥ २६—२८ ॥

वेदोंमें पूजा-शब्दके अर्थकी इस प्रकार योजना कही गयी है—‘पूजायिते अनेन इति पूजा।’ यह पूजाशब्दकी व्युत्पत्ति है। पूः का अर्थ है भोग और फलकी सिद्धि—वह जिस कर्मसे सम्पन्न होती है, उसका नाम पूजा है। मनोवाञ्छित वस्तु तथा ज्ञान—ये ही अभीष्ट वस्तुएँ हैं; सकाम भाववालेको अभीष्ट भोग अपेक्षित होता है और निष्काम भाववालेको अर्थ—पारमार्थिक ज्ञान। ये दोनों ही पूजा-शब्दके अर्थ हैं; इनकी योजना करनेसे ही पूजा-शब्दकी सार्थकता है। इस प्रकार लोक और वेदमें पूजा-शब्दका अर्थ विख्यात है। नित्य और नैमित्तिक कर्म कालान्तरमें फल देते हैं, किंतु काम्य कर्मका यदि भलीभाँति अनुष्ठान हुआ हो तो वह तत्काल फलदायक होता है। प्रतिदिन एक पक्ष, एक मास और एक वर्षतक लगातार पूजन करनेसे उन-उन कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और उनसे वैसे ही पापोंका क्रमशः क्षय होता है ॥ २९—३१ १/२ ॥

महागणपते: पूजा चतुर्थ्या कृष्णपक्षके ॥ ३२

पक्षपापक्षयकरी पक्षभोगफलप्रदा ।
चैत्रे चतुर्थ्या पूजा च कृता मासफलप्रदा ॥ ३३

वर्षभोगप्रदा ज्ञेया कृता वै सिंहभाद्रके ।
श्रावणादित्यवारे च सप्तम्यां हस्तभे दिने ॥ ३४

माघशुक्ले च सप्तम्यामादित्ययजनं चरेत् ।
ज्येष्ठभाद्रकसौम्ये च द्वादश्यां श्रवणक्षके ॥ ३५

कृतं श्रीविष्णुयजनमिष्टसम्पत्करं विदुः ।
श्रावणे विष्णुयजनमिष्टारोग्यप्रदं भवेत् ॥ ३६

गवादीन्द्वादशानर्थान्साङ्गान्दत्त्वा तु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाज्ञोति द्वादश्यां विष्णुतर्पणात् ॥ ३७

द्वादश्यां द्वादशान्विप्रान् विष्णोद्वादशनामतः ।
षोडशैरुपचारैश्च यजेत्तत्त्रीतिमाज्ञयात् ॥ ३८

एवं च सर्वदेवानां तत्तद्वादशनामकैः ।
द्वादशब्रह्मयजनं तत्तत्त्रीतिकरं भवेत् ॥ ३९

कर्कटे सोमवारे च नवम्यां मृगशीर्षके ।
अम्बां यजेद् भूतिकामः सर्वभोगफलप्रदाम् ॥ ४०

आश्वयुक्तुक्लनवमी सर्वाभीष्टफलप्रदा ।
आदिवारे चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे विशेषतः ॥ ४१

आद्रायां च महाद्रायां शिवपूजा विशिष्यते ।

प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको को हुई महागणपतिकी पूजा एक पक्षके पापोंका नाश करनेवाली और एक पक्षतक उत्तम भोगरूपी फल देनेवाली होती है। चैत्रमासमें चतुर्थीको की हुई पूजा एक मासतक किये गये पूजनका फल देनेवाली होती है और जब सूर्य सिंह राशिपर स्थित हों, उस समय भाद्रपदमासकी चतुर्थीको की हुई गणेशजीकी पूजाको एक वर्षतक [मनोवांछित] भोग प्रदान करनेवाली जानना चाहिये ॥ ३२-३३ १/२ ॥

श्रावणमासके रविवारको, हस्त नक्षत्रसे युक्त सप्तमी तिथिको तथा माघशुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठ तथा भाद्रपदमासोंके बुधवारको, श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशी तिथिको तथा केवल द्वादशीको भी किया गया भगवान् विष्णुका पूजन अभीष्ट सम्पत्तिको देनेवाला माना गया है। श्रावणमासमें की जानेवाली श्रीहरिकी पूजा अभीष्ट मनोरथ और आरोग्य प्रदान करनेवाली होती है। अंगों एवं उपकरणोंसहित पूर्वोक्त गौ आदि बारह वस्तुओंका दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको द्वादशी तिथिमें आराधनाद्वारा श्रीविष्णुकी तृप्ति करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके बारह नामोंद्वारा बारह ब्राह्मणोंका षोडशैरुपचार पूजन करता है, वह उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके विभिन्न बारह नामोंद्वारा बारह ब्राह्मणोंका किया हुआ पूजन उन-उन देवताओंको प्रसन्न करनेवाला होता है ॥ ३४—३९ ॥

ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको कर्ककी संक्रान्तिसे युक्त श्रावणमासमें नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रके योगमें सम्पूर्ण मनोवांछित भोगों और फलोंको देनेवाली अम्बिकाका पूजन करना चाहिये। आश्विन-मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथि सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। उसी मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको यदि रविवार पड़ा हो तो उस दिनका महत्त्व विशेष बढ़ जाता है। उसके साथ ही यदि आद्रा और महाद्रा (सूर्यसंक्रान्तिसे युक्त आद्रा)-का योग हो तो उक्त अवसरोंपर की हुई शिवपूजाका

माघकृष्णचतुर्दश्यां सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥ ४२

आयुष्करी मृत्युहरा सर्वसिद्धिकरी नृणाम् ।
ज्येष्ठमासे महाद्रायां चतुर्दशीदिनेऽपि च ॥ ४३

मार्गशीर्षाद्रिकायां वा षोडशैरुपचारकैः ।
तत्तन्मूर्तिशिवं पूज्य तस्य वै पाददर्शनम् ॥ ४४

शिवस्य यजनं ज्ञेयं भोगमोक्षप्रदं नृणाम् ।
वारादिदेवयजनं कार्तिके हि विशिष्यते ॥ ४५

कार्तिके मासि सप्ताप्ते सर्वान्देवान्यजेद् बुधः ।
दानेन तपसा होमैर्जपेन नियमेन च ॥ ४६

षोडशैरुपचारैश्च प्रतिमाविप्रमन्त्रकैः ।
ब्राह्मणानां भोजनेन निष्कामार्तिहरो भवेत् ॥ ४७

कार्तिके देवयजनं सर्वभोगप्रदं भवेत् ।
व्याधीनां हरणं चैव भवेद्दूतग्रहक्षयः ॥ ४८

कार्तिकादित्यवारेषु नृणामादित्यपूजनात् ।
तैलकार्पासदानात् भवेत्कुष्ठादिसङ्क्षयः ॥ ४९

हरीतकीमरीचीनां वस्त्रक्षीरादिदानतः ।
ब्रह्मप्रतिष्ठया चैव क्षयरोगक्षयो भवेत् ॥ ५०

दीपसर्पपदानाच्च अपस्मारक्षयो भवेत् ।
कृत्तिकासोमवारेषु शिवस्य यजनं नृणाम् ॥ ५१

महादारिक्ष्यशमनं सर्वसम्पत्करं भवेत् ।
गृहक्षेत्रादिदानाच्च गृहोपकरणादिना ॥ ५२

कृत्तिकाभौमवारेषु स्कन्दस्य यजनानृणाम् ।
दीपघण्टादिदानाद्वै वाक्सिद्धिरचिराद्ववेत् ॥ ५३

विशेष महत्त्व माना गया है। माघ कृष्ण चतुर्दशीको शिवजीकी की हुई पूजा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। वह मनुष्योंकी आयु बढ़ाती है, मृत्युको दूर हटाती है और समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति कराती है ॥ ४०—४२ १/२ ॥

ज्येष्ठमासमें चतुर्दशीको यदि महाद्राका योग हो अथवा मार्गशीर्षमासमें किसी भी तिथिको यदि आर्द्रा नक्षत्र हो तो उस अवसरपर विभिन्न वस्तुओंकी बनी हुई मूर्तिके रूपमें शिवजीकी जो सोलह उपचारोंसे पूजा करता है, उस पुण्यात्माके चरणोंका दर्शन करना चाहिये। भगवान् शिवकी पूजा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाली है—ऐसा जानना चाहिये। कार्तिक मासमें प्रत्येक वार और तिथि आदिमें देवपूजाका विशेष महत्त्व है। कार्तिकमास आनेपर विद्वान् पुरुष दान, तप, होम, जप और नियम आदिके द्वारा समस्त देवताओंका षोडशोपचारोंसे पूजन करे। उस पूजनमें देवप्रतिमा, ब्राह्मण तथा मन्त्रोंका उपयोग आवश्यक है। ब्राह्मणोंको भोजन करनेसे वह पूजन-कर्म सम्पन्न होता है। पूजकको चाहिये कि वह कामनाओंको त्यागकर पीड़ारहित (शान्त) हो देवाराधनमें तत्पर रहे ॥ ४३—४७ ॥

कार्तिकमासमें देवताओंका यजन-पूजन समस्त भोगोंको देनेवाला होता है; यह व्याधियोंको हर लेनेवाला और भूतों तथा ग्रहोंका विनाश भी करनेवाला है। कार्तिकमासके रविवारोंको भगवान् सूर्यकी पूजा करने और तेल तथा कपासका दान करनेसे मनुष्योंके कोढ़ आदि रोगोंका नाश होता है। हरे, काली मिर्च, वस्त्र तथा दूध आदिके दानसे और ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा करनेसे क्षयके रोगका नाश होता है। दीप और सरसोंके दानसे मिरगीका रोग मिट जाता है ॥ ४८—५० १/२ ॥

कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त सोमवारोंको किया हुआ शिवजीका पूजन मनुष्योंके महान् दारिद्र्यको मिटानेवाला और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। घरकी आवश्यक सामग्रियोंके साथ गृह और क्षेत्र आदिका दान करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त मंगलवारोंको श्रीस्कन्दका पूजन करनेसे तथा दीपक एवं घण्टा आदिका दान देनेसे मनुष्योंको शीघ्र ही वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ५१—५३ ॥

कृत्तिकासौम्यवारेषु विष्णोर्वै यजनं नृणाम्।
दध्योदनस्य दानं च सत्सन्तानकरं भवेत्॥ ५४

कृत्तिकागुरुवारेषु ब्रह्मणो यजनाद्वैः।
मधुस्वर्णाज्यदानेन भोगवृद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ५५

कृत्तिकाशुक्रवारेषु गजतुण्डस्य याजनात्।
गन्धपुष्पान्दानेन भोगवृद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ५६

वन्ध्या सुपुत्रं लभते स्वर्णरौप्यादिदानतः।
कृत्तिकाशनिवारेषु दिक्पालानां च वन्दनम्॥ ५७

दिग्गजानां च नागानां सेतुपानां च पूजनम्।
ऋम्बकस्य च रुद्रस्य विष्णोः पापहरस्य च॥ ५८

ज्ञानदं ब्रह्मणश्चैव धन्वन्तर्यश्चिनोस्तथा।
रोगापमृत्युहरणं तत्कालव्याधिशान्तिदम्॥ ५९

लवणायस्तैलानां माषादीनां च दानतः।
त्रिकटुफलगन्धानां जलादीनां च दानतः॥ ६०

द्रवाणां कठिनानां च प्रस्थेन पलमानतः।
स्वर्गप्राप्तिर्धनुर्मासे ह्रुषःकाले च पूजनम्॥ ६१

शिवादीनां च सर्वेषां क्रमाद्वै सर्वसिद्धये।
शाल्यनस्य हविष्यस्य नैवेद्यं शस्तमुच्यते॥ ६२

विविधानस्य नैवेद्यं धनुर्मासे विशिष्यते।

मार्गशीर्षेऽन्दस्यैव सर्वमिष्टफलं भवेत्॥ ६३

पापक्षयं चेष्टसिद्धिं चारोग्यं धर्ममेव च।
सम्यग्वेदपरिज्ञानं सदनुष्ठानमेव च॥ ६४

इहामुत्र महाभोगानन्ते योगं च शाश्वतम्।
वेदान्तज्ञानसिद्धिं च मार्गशीर्षानन्दो लभेत्॥ ६५

कृत्तिकायुक्त बुधवारोंको किया हुआ श्रीविष्णुका यजन तथा दही-भातका दान मनुष्योंको उत्तम सन्तानकी प्राप्ति करानेवाला होता है। कृत्तिकायुक्त गुरुवारोंको धनसे ब्रह्माजीका पूजन तथा मधु, सोना और घीका दान करनेसे मनुष्योंके भोग-वैभवकी वृद्धि होती है॥ ५४-५५॥

कृत्तिकायुक्त शुक्रवारोंको गजानन गणेशजीकी पूजा करनेसे तथा गन्ध, पुष्प एवं अन्नका दान देनेसे मानवोंके सुख भोगनेयोग्य पदार्थोंकी वृद्धि होती है। उस दिन सोना, चाँदी आदिका दान करनेसे वन्ध्याको भी उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त शनिवारोंको दिक्पालोंकी वन्दना, दिग्गजों-नागों-सेतुपालोंका पूजन और त्रिनेत्रधारी रुद्र तथा पापहारी विष्णुका पूजन ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाला है। ब्रह्मा, धन्वन्तरि एवं दोनों अश्विनीकुमारोंका पूजन करनेसे रोग तथा अपमृत्युका निवारण होता है और तात्कालिक व्याधियोंकी शान्ति हो जाती है। नमक, लोहा, तेल और उड़द आदिका; त्रिकटु (सोंठ, पीपल और गोल मिर्च), फल, गन्ध और जल आदिका तथा [घृत आदि] द्रव-पदार्थोंका और [सुवर्ण, मोती, धान्य आदि] ठोस वस्तुओंका भी दान देनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। इनमेंसे नमक आदिका मान कम-से-कम एक प्रस्थ (सेर) और सुवर्ण आदिका मान कम-से-कम एक पल होना चाहिये। धनुकी संक्रान्तिसे युक्त पौषमासमें उषःकालमें शिव आदि समस्त देवताओंका पूजन क्रमशः समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला होता है। इस पूजनमें अगहनीके चावलसे तैयार किये गये हविष्यका नैवेद्य उत्तम बताया जाता है। पौषमासमें नाना प्रकारके अन्नका नैवेद्य विशेष महत्त्व रखता है॥ ५६—६२ १/२॥

मार्गशीर्षमासमें केवल अन्नका दान करनेवाले मनुष्यको सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति हो जाती है। मार्गशीर्षमासमें अन्नका दान करनेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, वह अभीष्ट-सिद्धि, आरोग्य, धर्म, वेदका सम्यक् ज्ञान, उत्तम अनुष्ठानका फल, इहलोक और परलोकमें महान् भोग तथा अन्तर्में सनातन योग (मोक्ष) तथा वेदान्तज्ञानकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो भोगकी इच्छा रखनेवाला है, वह

मार्गशीर्षे हुषःकाले दिनत्रयमथापि वा ।
यजेद् देवाभोगकामो नाधनुर्मासिको भवेत् ॥ ६६

यावत्सङ्घवकालं तु धनुर्मासो विधीयते ।
धनुर्मासे निराहारो मासमात्रं जितेन्द्रियः ॥ ६७

आमध्याहं जपेद् विप्रो गायत्रीं वेदमातरम् ।
पञ्चाक्षरादिकान्मन्त्रान्यश्चादासुप्तिकं जपेत् ॥ ६८

ज्ञानं लब्ध्वा च देहान्ते विप्रो मुक्तिमवाप्नुयात् ।
अन्येषां नरनारीणां त्रिःस्नानेन जपेन च ॥ ६९

सदा पञ्चाक्षरस्यैव विशुद्धं ज्ञानमाप्यते ।
इष्टमन्त्रान्सदा जप्त्वा महापापक्षयं लभेत् ॥ ७०

धनुर्मासे विशेषेण महानैवेद्यमाचरेत् ।
शालितण्डुलभारेण मरीचप्रस्थकेन च ॥ ७१

गणनाद् द्वादशं सर्वं मध्वाज्यकुडवेन हि ।
द्रोणयुक्तेन मुद्रेन द्वादशव्यञ्जनेन च ॥ ७२

घृतपवैरपूपैश्च मोदकैः शालिकादिभिः ।
द्वादशैश्च दधिक्षीर्द्वादशप्रस्थकेन च ॥ ७३

नारिकेलफलादीनां तथा गणनया सह ।
द्वादशक्रमुकैर्युक्तं षट्त्रिंशत्पत्रकैर्युतम् ॥ ७४

कर्पूरखुरचूर्णेन पञ्चसौगद्धिकैर्युतम् ।
ताम्बूलयुक्तं तु यदा महानैवेद्यलक्षणम् ॥ ७५

महानैवेद्यमेतद्वै देवतार्पणपूर्वकम् ।
वर्णानुकमपूर्वेण तद्वक्तेभ्यः प्रदापयेत् ॥ ७६

एवं चौदननैवेद्याद्धूमौ राष्ट्रपतिर्भवेत् ।
महानैवेद्यदानेन नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ७७

महानैवेद्यदानेन सहस्रेण द्विजर्षभाः ।
सत्यलोकं च तल्लोके पूर्णमायुरवाप्नुयात् ॥ ७८

सहस्राणां च त्रिंशत्या महानैवेद्यदानतः ।
तदूर्ध्वलोकमाप्यैव न पुनर्जन्मभागभवेत् ॥ ७९

मनुष्य मार्गशीर्षमास आनेपर कम-से-कम तीन दिन भी उषःकालमें अवश्य देवताओंका पूजन करे और पौषमासको पूजनसे खाली न जाने दे । उषःकालसे लेकर संगवकालतक ही पौषमासमें पूजनका विशेष महत्त्व बताया गया है । पौषमासमें पूरे महीनेभर जितेन्द्रिय और निराहार रहकर द्विज प्रातःकालसे मध्याह्नकालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे । तत्पश्चात् रातको सोनेके समयतक पंचाक्षर आदि मन्त्रोंका जप करे । ऐसा करनेवाला ब्राह्मण ज्ञान पाकर शरीर छूटनेके बाद मोक्ष प्राप्त कर लेता है । द्विजेतर नर-नारियोंको त्रिकाल स्नान और पंचाक्षर मन्त्रके ही निरन्तर जपसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है । इष्ट मन्त्रोंका सदा जप करनेसे बड़े-से-बड़े पापोंका भी नाश हो जाता है ॥ ६३—७० ॥

पौषमासमें विशेषरूपसे महानैवेद्य चढ़ाना चाहिये । यहाँ बतायी सभी वस्तुएँ बारहकी संख्यामें समझनी चाहिये—चावल (बारह) भार॑, काली मिर्च (बारह) प्रस्थ॒, मधु और घृत (बारह) कुडवै॒, मूँग (बारह) द्रोण॑, बारह प्रकारके व्यंजन, धीमें तले हुए पूए, लड्डू और चावलके मिष्ठान (बारह) प्रस्थ, दही और दूध और बारह नारियल आदि फल, बारह सुपारी, कर्पूर, कत्था और पाँच प्रकारके सुगन्धद्रव्योंसे युक्त छत्तीस पत्ते पानसे महानैवेद्य बनता है ॥ ७१—७५ ॥

इस महानैवेद्यको देवताओंको अर्पण करके वर्णानुसार उस देवताके भक्तोंको दे देना चाहिये । इस प्रकारके ओदन-नैवेद्यसे मनुष्य पृथ्वीपर राष्ट्रका स्वामी होता है । महानैवेद्यके दानसे स्वर्गप्राप्ति होती है । हे द्विजश्रेष्ठो ! एक हजार महानैवेद्योंके दानसे सत्यलोक प्राप्त होता है और उस लोकमें पूर्णायु प्राप्त होती है एवं तीस हजार महानैवेद्योंके दानसे उसके ऊपरके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा पुनर्जन्म नहीं होता ॥ ७६—७९ ॥

१—४-चार धानकी एक गुंजी या एक रत्ती होती है । पाँच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक), आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक पल (ढाई छटाँकके लगभग), सौ पल (सोलह सेरके लगभग)-की एक तुला होती है, बीस तुलाका एक भार होता है, अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है । पावभरका एक कुडव होता है, चार कुडवका एक प्रस्थ अर्थात् एक सेर होता है । चार सेर (प्रस्थ)-का एक आढक और आठ आढक (३२ सेर)-का एक द्रोण होता है । तीन द्रोणकी एक खारी और आठ द्रोणका एक वाह होता है ।

सहस्राणां च षट्त्रिंशज्जन्मनैवेद्यमीरितम्।
तावनैवेद्यदानं तु महापूर्णं तदुच्यते॥८०
महापूर्णस्य नैवेद्यं जन्मनैवेद्यमिष्यते।
जन्मनैवेद्यदानेन पुनर्जन्म न विद्यते॥८१
ऊर्जे मासि दिने पुण्ये जन्मनैवेद्यमाचरेत्।
सङ्क्रान्तिपातजन्मक्षपौर्णमास्यादिसंयुते ॥८२
अब्दजन्मदिने कुर्याज्जन्मनैवेद्यमुत्तमम्।
मासान्तरेषु जन्मक्षपूर्णयोगदिनेऽपि च॥८३
मेलने च शनैर्वापि तावत्साहस्रमाचरेत्।
जन्मनैवेद्यदानेन जन्मार्पणफलं लभेत्॥८४
जन्मार्पणाच्छिवः प्रीतः स्वसायुज्यं ददाति हि।
इदं तज्जन्मनैवेद्यं शिवस्यैव प्रदापयेत्॥८५
योनिलिङ्गस्वरूपेण शिवो जन्मनिरूपकः।
तस्माज्जन्मनिवृत्यर्थं जन्मपूजा शिवस्य हि॥८६
बिन्दुनादात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
बिन्दुः शक्तिः शिवो नादः शिवशक्त्यात्मकं जगत्॥८७
नादाधारमिदं बिन्दुर्बिन्द्वाधारमिदं जगत्।
जगदाधारभूतौ हि बिन्दुनादौ व्यवस्थितौ॥८८
बिन्दुनादयुतं सर्वं सकलीकरणं भवेत्।
सकलीकरणाज्जन्म जगत्प्राप्नोत्यसंशयम्॥८९
बिन्दुनादात्मकं लिङ्गं जगत्कारणमुच्यते।
बिन्दुर्देवी शिवो नादः शिवलिङ्गं तु कथ्यते॥९०
तस्माज्जन्मनिवृत्यर्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्।
माता देवी बिन्दुरूपा नादरूपः शिवः पिता॥९१
पूजिताभ्यां पितृभ्यां तु परमानन्द एव हि।
परमानन्दलाभार्थं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत्॥९२

छत्तीस हजार महानैवेद्योंको जन्मनैवेद्य कहा गया है। उतने नैवेद्योंका दान महापूर्ण कहलाता है। महापूर्ण नैवेद्य ही जन्मनैवेद्य कहा गया है। जन्मनैवेद्यके दानसे पुनर्जन्म नहीं होता॥८०-८१॥

कार्तिक मासमें संक्रान्ति, व्यतीपात, जन्मनक्षत्र, पूर्णिमा आदि किसी पवित्र दिनको जन्मनैवेद्य चढ़ाना चाहिये। संवत्सरके प्रारम्भिक दिनको भी उत्तम जन्मनैवेद्यका अर्पण करना चाहिये। किसी अन्य महीनेमें भी जन्मनक्षत्रके पूर्ण योगके दिन तथा अधिक पुण्ययोगोंके मिलनेपर धीरे-धीरे छत्तीस हजार महानैवेद्य अर्पण करे। जन्मनैवेद्यके दानसे जन्मार्पणका फल प्राप्त होता है। जन्मार्पणसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर अपना सायुज्य प्रदान करते हैं। इसलिये इस जन्मनैवेद्यको शिवको ही अर्पण करना चाहिये। योनि और लिंगरूपमें विराजमान शिव जन्मको देनेवाले हैं, अतः पुनर्जन्मकी निवृत्तिके लिये जन्मनैवेद्यसे शिवकी पूजा करनी चाहिये॥८२—८६॥

सारा चराचर जगत् बिन्दु-नादस्वरूप है। बिन्दु शक्ति है और नाद शिव। इस तरह यह जगत् शिव-शक्तिस्वरूप ही है। नाद बिन्दुका और बिन्दु इस जगत्का आधार है, ये बिन्दु और नाद (शक्ति और शिव) सम्पूर्ण जगत्के आधाररूपसे स्थित हैं। बिन्दु और नादसे युक्त सब कुछ शिवस्वरूप है; क्योंकि वही सबका आधार है। आधारमें ही आधेयका समावेश अथवा लय होता है। यही सकलीकरण है। इस सकलीकरणकी स्थितिसे ही सृष्टिकालमें जगत्का प्रादुर्भाव होता है; इसमें संशय नहीं है। शिवलिंग बिन्दुनादस्वरूप है, अतः उसे जगत्का कारण बताया जाता है। बिन्दु देवी है और नाद शिव, इन दोनोंका संयुक्तरूप ही शिवलिंग कहलाता है। अतः जन्मके संकटसे छुटकारा पानेके लिये शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये। बिन्दुरूपा देवी उमा माता हैं और नादस्वरूप भगवान् शिव पिता। इन माता-पिताके पूजित होनेसे परमानन्दकी ही प्राप्ति होती है। अतः परमानन्दका लाभ लेनेके लिये शिवलिंगका विशेषरूपसे पूजन करे॥८७—९२॥

सा देवी जगतां माता स शिवो जगतः पिता ।
पित्रोः शुश्रूषके नित्यं कृपाधिक्यं हि वर्धते ॥ १३

कृपयान्तर्गतैश्वर्यं पूजकस्य ददाति हि ।
तस्मादन्तर्गतानन्दलाभार्थं मुनिपुङ्गवाः ॥ १४

पितृमातृस्वरूपेण शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ।
भर्गः पुरुषरूपो हि भर्गा प्रकृतिरुच्यते ॥ १५

अव्यक्तान्तरधिष्ठानं गर्भः पुरुष उच्यते ।
सुव्यक्तान्तरधिष्ठानं गर्भः प्रकृतिरुच्यते ॥ १६

पुरुषस्त्वादिगर्भोः हि गर्भवाञ्छनको यतः ।
पुरुषात्प्रकृतौ युक्तं प्रथमं जन्म कथ्यते ॥ १७

प्रकृतेव्यक्ततां यातं द्वितीयं जन्म कथ्यते ।
जन्म जन्मुर्मृत्युजन्म पुरुषात्प्रतिपद्यते ॥ १८

अन्यतो भाव्यतेऽवश्यं मायथा जन्म कथ्यते ।
जीर्यते जन्मकालाद्यत्समाजीव इति स्मृतः ॥ १९

जन्यते तन्यते पाशीर्जीवशब्दार्थं एव हि ।
जन्मपाशनिवृत्यर्थं जन्मलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ १००

भं वृद्धिं गच्छतीत्यर्थाद्दग्नः प्रकृतिरुच्यते ।
प्राकृतैः शब्दमात्राद्यैः प्राकृतेन्द्रियभोजनात् ॥ १०१

भगस्येदं भोगमिति शब्दार्थो मुख्यतः श्रुतः ।
मुख्यो भगस्तु प्रकृतिर्भगवाज्जिव उच्यते ॥ १०२

भगवान्भोगदाता हि नान्यो भोगप्रदायकः ।
भगस्वामी च भगवान्भर्ग इत्युच्यते बुधैः ॥ १०३

भगेन सहितं लिङ्गं भगं लिङ्गेन संयुतम् ।
इहामुत्र च भोगार्थं नित्यभोगार्थमेव च ॥ १०४

भगवन्तं महादेवं शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ।

वे देवी उमा जगत्की माता हैं और भगवान् शिव जगत्के पिता । जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्रपर इन दोनों माता-पिताकी कृपा नित्य अधिकाधिक बढ़ती रहती है । वे पूजकपर कृपा करके उसे अपना आन्तरिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । अतः हे मुनीश्वरो ! आन्तरिक आनन्दकी प्राप्तिके लिये शिवलिंगको माता-पिताका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करनी चाहिये । भर्ग (शिव) पुरुषरूप है और भर्गा (शिवा अथवा शक्ति) प्रकृति कहलाती है । अव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानरूप गर्भको पुरुष कहते हैं और सुव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानभूत गर्भको प्रकृति । पुरुष आदिगर्भ है, वह प्रकृतिरूप गर्भसे युक्त होनेके कारण गर्भवान् है; क्योंकि वही प्रकृतिका जनक है । प्रकृतिमें जो पुरुषका संयोग होता है, यही पुरुषसे उसका प्रथम जन्म कहलाता है । अव्यक्त प्रकृतिसे महत्त्वादिके क्रमसे जो जगत्का व्यक्त होना है, यही उस प्रकृतिका द्वितीय जन्म कहलाता है । जीव पुरुषसे ही बार-बार जन्म और मृत्युको प्राप्त होता है । मायाद्वारा अन्यरूपसे प्रकट किया जाना ही उसका जन्म कहलाता है । जीवका शरीर जन्मकालसे ही जीर्ण (छः भावविकारोंसे युक्त) होने लगता है, इसीलिये उसे 'जीव' यह संज्ञा दी गयी है । जो जन्म लेता और विविध पाशोंद्वारा बन्धनमें पड़ता है, उसका नाम जीव है, जन्म और बन्धन जीव-शब्दका ही अर्थ है । अतः जन्ममृत्युरूपी बन्धनकी निवृत्तिके लिये जन्मके अधिष्ठानभूत माता-पितृस्वरूप शिवलिंगका भली-भाँति पूजन करना चाहिये ॥ १३—१०० ॥

शब्दादि पञ्चतन्मात्राओं तथा पंचेन्द्रियोंसे विषय ग्रहण करनेसे 'भ' अर्थात् वृद्धिको 'गच्छति' अर्थात् प्राप्त होती है, इसलिये 'भग' शब्दका अर्थ प्रकृति है । भोग ही भगका मुख्य शब्दार्थ है । मुख्य 'भग' प्रकृति है और 'भगवान्' शिव कहे जाते हैं ॥ १०१-१०२ ॥

भगवान् ही भोग प्रदान करते हैं, दूसरा कोई नहीं दे सकता । भग (प्रकृति)-का स्वामी भगवान् ही विद्वानोंद्वारा भर्ग कहा जाता है । भग-प्रकृतिसे संयुक्त परमात्मलिंग और लिंगसंयुक्त भग-प्रकृति ही इस लोक और परलोकमें नित्य भोग प्रदान करते हैं, अतः भगवान् महादेवके शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये ॥ १०३-१०४ ॥

लोकप्रसविता सूर्यस्तच्चिह्नं प्रसवाद्वत् ॥ १०५

लिङ्गे प्रसूतिकर्तारं लिङ्गिनं पुरुषो यजेत् ।

लिङ्गार्थगमकं चिह्नं लिङ्गमित्यभिधीयते ॥ १०६

लिङ्गमर्थं हि पुरुषं शिवं गमयतीत्यदः ।

शिवशक्त्योश्च चिह्नस्य मेलनं लिङ्गमुच्यते ॥ १०७

स्वचिह्नपूजनात्प्रीतश्चिह्नकार्यं न वीयते ।

चिह्नकार्यं तु जन्मादि जन्माद्यं विनिवर्तते ॥ १०८

प्राकृतैः पुरुषैश्चापि बाह्याभ्यन्तरसम्भवैः ।

षोडशैरुपचारैश्च शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥ १०९

एवमादित्यवारे हि पूजा जन्मनिवर्तिका ।

आदिवारे महालिङ्गं प्रणवेनैव पूजयेत् ॥ ११०

आदिवारे पञ्चगव्यैरभिषेको विशिष्यते ।

गोमयं गोजलं क्षीरं दध्याज्यं पञ्चगव्यकम् ॥ १११

क्षीराद्यं च पृथक्चैव मधुना चेक्षुसारकैः ।

गव्यक्षीरान्ननैवेद्यं प्रणवेनैव कारयेत् ॥ ११२

प्रणवं ध्वनिलिङ्गं तु नादलिङ्गं स्वयम्भुवः ।

बिन्दुलिङ्गं तु यन्त्रं स्यान्मकारं तु प्रतिष्ठितम् ॥ ११३

उकारं चरलिङ्गं स्यादकारं गुरुविग्रहम् ।

संसारको उत्पन्न करनेवाले सूर्य हैं और उत्पन्न करनेके कारण जगत् ही उनका (प्रत्यक्ष) चिह्न है। [इसलिये उनका एक नाम भग भी है।] पुरुषको लिंगमें जगत् को उत्पन्न करनेवाले लिंगीकी ही पूजा करनी चाहिये। सृष्टिके अर्थको बतानेवाले चिह्नके रूपमें ही उसे लिंग कहा जाता है ॥ १०५-१०६ ॥

लिंग परमपुरुष शिवका बोध कराता है। इस प्रकार शिव और शक्तिके मिलनके प्रतीकको ही शिवलिंग कहा गया है। अपने चिह्नके पूजनसे प्रसन्न होकर महादेव उस चिह्नके कार्यरूप जन्मादिको समाप्त कर देते हैं तथा पूजकको पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती। अतः सभी लोगोंको यथाप्राप्त बाह्य और मानसिक षोडशोपचारोंसे शिवलिंगका पूजन करना चाहिये ॥ १०७—१०९ ॥

रविवारको की गयी पूजा पुनर्जन्मका निवारण कर देती है। रविवारको महालिंगकी प्रणव (ॐ)-से ही पूजा करनी चाहिये। उस दिन पंचगव्यसे किया गया अभिषेक विशेष महत्वका होता है। गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध, उसका दही और गोधृत—ये पंचगव्य कहे जाते हैं ॥ ११०-१११ ॥

गायका दूध, गायका दही और गायका घी—इन तीनोंको पूजनके लिये शहद और शक्करके साथ पृथक-पृथक् भी रखे और इन सबको मिलाकर सम्मिलितरूपसे पंचामृत भी तैयार कर ले। (इनके द्वारा शिवलिंगका अभिषेक एवं स्नान कराये), फिर गायके दूध और अन्नके मेलसे नैवेद्य तैयार करके प्रणव मन्त्रके उच्चारणपूर्वक उसे भगवान् शिवको अर्पित करे। सम्पूर्ण प्रणवको ध्वनिलिंग कहते हैं। स्वयम्भूलिंग नादस्वरूप होनेके कारण नादलिंग कहा गया है। यन्त्र या अर्धा बिन्दुस्वरूप होनेके कारण बिन्दुलिंगके रूपमें विच्छात है। उसमें अचलरूपसे प्रतिष्ठित जो शिवलिंग है, वह मकार-स्वरूप है, इसलिये मकारलिंग कहलाता है। सवारी निकालने आदिके लिये जो चरलिंग होता है, वह उकारस्वरूप होनेसे उकारलिंग कहा गया है तथा पूजाकी दीक्षा देनेवाले जो गुरु या आचार्य हैं, उनका विग्रह अकारका प्रतीक होनेसे अकारलिंग माना गया है।

षडलिङ्गपूजया नित्यं जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ ११४

शिवस्य भक्त्या पूजा हि जम्मुक्तिकरी नृणाम् ।
रुद्राक्षधारणात्पादमर्थं वै भूतिधारणात् ॥ ११५
त्रिपादं मन्त्रजाप्याच्य पूजया पूर्णभक्तिमान् ।
शिवलिङ्गं च भक्तं च पूज्य मोक्षं लभेन्नरः ॥ ११६
य इमं पठते अध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ।
तस्यैव शिवभक्तिश्च वर्धते सुदृढा द्विजाः ॥ ११७

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां पार्थिवपूजाप्रकारादिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें पार्थिव पूजा आदिका प्रकार वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

षडलिंगस्वरूप प्रणवका माहात्म्य, उसके सूक्ष्म रूप (ॐकार) और स्थूल रूप (पंचाक्षर मन्त्र)-का विवेचन, उसके जपकी विधि एवं महिमा, कार्यब्रह्मके लोकोंसे लेकर कारणरुद्रके लोकोंतकका विवेचन करके कालातीत, पंचावरणविशिष्ट शिवलोकके अनिर्वचनीय वैभवका निरूपण तथा शिवभक्तोंके सत्कारकी महत्ता

ऋषय ऊचुः

प्रणवस्य च माहात्म्यं षडलिङ्गस्य महामुने ।
शिवभक्तस्य पूजां च क्रमशो ब्रूहि नः प्रभो ॥ १ ॥

सूत उवाच

तपोधनैर्भवद्दिश्च सम्यक् प्रश्नस्त्वयं कृतः ।
अस्योत्तरं महादेवो जानाति स्म न चापरः ॥ २ ॥
तथापि वक्ष्ये तप्महं शिवस्य कृपयैव हि ।
शिवोऽस्माकं च युष्माकं रक्षां गृह्णातु भूरिशः ॥ ३ ॥

प्रो हि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः ।
नवं नावांतरमिति प्रणवं वै विदुर्बुधाः ॥ ४ ॥

इस प्रकार प्रणवमें प्रतिष्ठित अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद और ध्वनिके रूपमें लिंगके छः भेद हैं । इन छहों लिंगोंकी नित्य पूजा करनेसे साधक जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ११२—११४ ॥

भक्तिपूर्वक की गयी शिवपूजा मनुष्योंको पुनर्जन्मसे छुटकारा दिलाती है । रुद्राक्षधारणसे एक चौथाई, विभूति (भस्म)-धारणसे आधा, मन्त्रजपसे तीन चौथाई और पूजासे पूर्ण फल प्राप्त होता है । शिवलिंग और शिवभक्तकी पूजा करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है । हे द्विजो ! जो इस अध्यायको ध्यानपूर्वक पढ़ता-सुनता है, उसकी शिवभक्ति सुदृढ़ होकर बढ़ती रहती है ॥ ११५—११७ ॥

ऋषिगण बोले—हे महामुने ! हे प्रभो ! आप

हमारे लिये क्रमशः षडलिंगस्वरूप प्रणवका माहात्म्य तथा शिवभक्तके पूजनकी विधि बताइये ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—महर्षियो ! आपलोग तपस्याके धनी हैं, आपने यह बड़ा सुन्दर प्रश्न उपस्थित किया है । किंतु इसका ठीक-ठीक उत्तर महादेवजी ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं । तथापि भगवान् शिवकी कृपासे ही मैं इस विषयका वर्णन करूँगा । वे भगवान् शिव हमारी और आपलोगोंकी रक्षाका महान् भार बारम्बार स्वयं ही ग्रहण करें ॥ २-३ ॥

‘प्र’ नाम है प्रकृतिसे उत्पन्न संसाररूपी महासागरका । ‘प्रणव’ इसे पार करनेके लिये दूसरी (नव) नाव है । इसलिये विद्वान् इस ओंकारको ‘प्रणव’ की संज्ञा देते हैं । [ॐकार अपने जप करनेवाले

प्रः प्रपञ्चो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः ।
प्रकर्षेण नयेद्यस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः ॥ ५

स्वमन्त्रजापकानां च पूजकानां च योगिनाम् ।
सर्वकर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम् ॥ ६

तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते ।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम् ॥ ७

नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः ।

प्रणवं द्विविधं प्रोक्तं सूक्ष्मस्थूलविभेदतः ॥ ८

सूक्ष्ममेकाक्षरं विद्यात्स्थूलं पञ्चाक्षरं विदुः ।
सूक्ष्ममव्यक्तपञ्चार्णं सुव्यक्तार्णं तथेतरत् ॥ ९

जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हितस्य हि ।
मन्त्रेणार्थानुसन्धानं स्वदेहविलयावधि ॥ १०

स्वदेहे गलिते पूर्णं शिवं प्राप्नोति निश्चयः ।

केवलं मन्त्रजापी तु योगं प्राप्नोति निश्चयः ॥ ११

षट्ट्रिंशत्कोटिजापी तु निश्चयं योगमानुयात् ।
सूक्ष्मं च द्विविधं ज्ञेयं हस्वदीर्घविभेदतः ॥ १२

साधकोंसे कहता है—] ‘प्र-प्रपंच, न—नहीं है, वः—
तुमलोगोंके लिये ।’ अतः इस भावको लेकर भी ज्ञानी
पुरुष ‘ओम्’ को ‘प्रणव’ नामसे जानते हैं । इसका दूसरा
भाव यह है—‘प्र-प्रकर्षेण, न-नयेत्, वः-युष्मान् मोक्षम्
इति वा प्रणवः । अर्थात् यह तुम सब उपासकोंको
बलपूर्वक मोक्षतक पहुँचा देगा ।’ इस अभिप्रायसे भी
इसे ऋषि-मुनि ‘प्रणव’ कहते हैं ॥ ४-५ ॥

अपना जप करनेवाले योगियोंके तथा अपने मन्त्रकी
पूजा करनेवाले उपासकके समस्त कर्मोंका नाश करके
यह दिव्य नूतन ज्ञान देता है; इसलिये भी इसका नाम
प्रणव है । उन मायारहित महेश्वरको ही नव अर्थात्
नूतन कहते हैं । वे परमात्मा प्रकृष्टरूपसे नव अर्थात्
शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये ‘प्रणव’ कहलाते हैं । प्रणव
साधकको नव अर्थात् नवीन (शिवस्वरूप) कर देता है।
इसलिये भी विद्वान् पुरुष उसे ‘प्रणव’ कहते हैं । अथवा
प्रकृष्टरूपसे नव—दिव्य परमात्मज्ञान प्रकट करता है,
इसलिये वह प्रणव कहा गया है ॥ ६-७१/२ ॥

प्रणवके दो भेद बताये गये हैं—स्थूल और सूक्ष्म ।
एक अक्षररूप जो ‘ओम्’ है, उसे सूक्ष्म प्रणव जानना
चाहिये और ‘नमः शिवाय’ इस पाँच अक्षरवाले मन्त्रको
स्थूल प्रणव समझना चाहिये । जिसमें पाँच अक्षर व्यक्त
नहीं हैं, वह सूक्ष्म है और जिसमें पाँचों अक्षर सुस्पष्टरूपसे
व्यक्त हैं, वह स्थूल है । जीवन्मुक्त पुरुषके लिये सूक्ष्म
प्रणवके जपका विधान है । वही उसके लिये समस्त
साधनोंका सार है । (यद्यपि जीवन्मुक्तके लिये किसी
साधनकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सिद्धरूप
है, तथापि दूसरोंकी दृष्टिमें जबतक उसका शरीर रहता
है, तबतक उसके द्वारा प्रणव-जपकी सहज साधना
स्वतः होती रहती है ।) वह अपनी देहका विलय होनेतक
सूक्ष्म प्रणव मन्त्रका जप और उसके अर्थभूत परमात्म-
तत्त्वका अनुसंधान करता रहता है । जब शरीर नष्ट हो
जाता है, तब वह पूर्ण ब्रह्मस्वरूप शिवको प्राप्त कर
लेता है—यह सुनिश्चित है ॥ ८-१०१/२ ॥

जो केवल मन्त्रका जप करता है, उसे निश्चय ही
योगकी प्राप्ति होती है । जिसने छत्तीस करोड़ मन्त्रका
जप कर लिया हो, उसे अवश्य ही योग प्राप्त हो जाता
है । सूक्ष्म प्रणवके भी हस्त और दीर्घके भेदसे दो रूप

अकारश्च उकारश्च मकारश्च ततः परम्।
बिन्दुनादयुतं तद्धि शब्दकालकलान्वितम्॥ १३

दीर्घप्रणवमेवं हि योगिनामेव हृदगतम्।
मकारं तन्त्रितत्वं हि हस्वप्रणव उच्यते॥ १४

शिवः शक्तिस्तयोरैक्यं मकारं तु त्रिकात्मकम्।
हस्वमेवं हि जाप्यं स्यात्सर्वपापक्षयैषिणाम्॥ १५

भूवायुकनकाणोद्यौः शब्दाद्याश्च तथा दश।
आशान्वये दश पुनः प्रवृत्ता इति कथ्यते॥ १६

हस्वमेव प्रवृत्तानां निवृत्तानां तु दीर्घकम्।
व्याहृत्यादौ च मन्त्रादौ कामं शब्दकलायुतम्॥ १७

वेदादौ च प्रयोज्यं स्याद्गुद्दने सन्ध्ययोरपि।

नवकोटिजपाञ्चप्त्वा संशुद्धः पुरुषो भवेत्॥ १८

पुनश्च नवकोट्या तु पृथिवीजयमान्युयात्।
पुनश्च नवकोट्या तु ह्यपां जयमवान्युयात्॥ १९

पुनश्च नवकोट्या तु तेजसां जयमान्युयात्।
पुनश्च नवकोट्या तु वायोर्जयमवान्युयात्।
आकाशजयमान्योति नवकोटिजपेन वै॥ २०

गन्धादीनां क्रमेणैव नवकोटिजपेन वै।
अहङ्कारस्य च पुनर्नवकोटिजपेन वै॥ २१

सहस्रमन्त्रजपेन नित्यशुद्धो भवेत्पुमान्।
ततः परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजाः॥ २२

जानने चाहिये। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला—इनसे युक्त जो प्रणव है, उसे 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं। वह योगियोंके ही हृदयमें स्थित होता है। मकारपर्यन्त जो ओम् है, वह अ उ म्—इन तीन तत्त्वोंसे युक्त है। इसीको 'हस्व प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनोंकी एकता है; वह त्रितत्त्वरूप है, ऐसा समझकर हस्व प्रणवका जप करना चाहिये। जो अपने समस्त पापोंका क्षय करना चाहते हैं, उनके लिये इस हस्व प्रणवका जप अत्यन्त आवश्यक है॥ ११—१५॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत तथा शब्द, स्पर्श आदि इनके पाँच विषय—ये सब मिलकर दस वस्तुएँ मनुष्योंकी कामनाके विषय हैं। इनकी आशा मनमें लेकर जो कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न होते हैं, वे दस प्रकारके पुरुष प्रवृत्त अथवा प्रवृत्तिमार्गों कहलाते हैं तथा जो निष्कामभावसे शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे निवृत्त अथवा निवृत्तिमार्गों कहे गये हैं। प्रवृत्त पुरुषोंको हस्व प्रणवका ही जप करना चाहिये और निवृत्त पुरुषोंको दीर्घ प्रणवका। व्याहृतियों तथा अन्य मन्त्रोंके आदिमें इच्छानुसार शब्द और कलासे युक्त प्रणवका उच्चारण करना चाहिये। वेदके आदिमें और दोनों संध्याओंकी उपासनाके समय भी ओंकारका उच्चारण करना चाहिये॥ १६-१७१/२॥

प्रणवका नौ करोड़ जप करनेसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। पुनः नौ करोड़का जप करनेसे वह पृथ्वीतत्त्वपर विजय पा लेता है। तत्पश्चात् पुनः नौ करोड़का जप करके वह जल-तत्त्वको जीत लेता है। पुनः नौ करोड़ जपसे वह अग्नितत्त्वपर विजय पाता है। तदनन्तर फिर नौ करोड़का जप करके वह वायु-तत्त्वपर विजयी होता है और फिर नौ करोड़के जपसे आकाशको अपने अधिकारमें कर लेता है। इसी प्रकार नौ-नौ करोड़का जप करके वह क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दपर विजय पाता है, इसके बाद फिर नौ करोड़का जप करके अहंकारको भी जीत लेता है॥ १८—२१॥

हे द्विजो! मनुष्य एक हजार मन्त्रोंके जप करनेसे नित्य शुद्ध होता है, इसके अनन्तर अपनी सिद्धिके लिये जप किया जाता है॥ २२॥

एवमष्टोत्तरशतकोटिजसेन वै पुनः।
प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवान्युयात्॥ २३

शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः।
सदा जपन्सदा ध्यायज्ञिवं प्रणवरूपिणम्॥ २४

समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः।
ऋषिच्छन्दो देवतादि न्यस्य देहे पुनर्जपेत्॥ २५

प्रणवं मातृकायुक्तं देहे न्यस्य ऋषिर्भवेत्।
दशमातृष्ठडध्वादि सर्वं न्यासफलं लभेत्॥ २६

प्रवृत्तानां च मिश्राणां स्थूलप्रणवमिष्यते।

इस तरह एक सौ आठ करोड़ प्रणवका जप करके उत्कृष्ट बोधको प्राप्त हुआ पुरुष शुद्ध योग प्राप्त कर लेता है। शुद्ध योगसे युक्त होनेपर वह जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। सदा प्रणवका जप और प्रणवरूपी शिवका ध्यान करते-करते समाधिमें स्थित हुआ महायोगी पुरुष साक्षात् शिव ही है; इसमें संशय नहीं है। पहले अपने शरीरमें प्रणवके ऋषि, छन्द और देवता आदिका न्यास करके फिर जप आरम्भ करना चाहिये। अकारादि मातृकावण्डसे युक्त प्रणवका अपने अंगोंमें न्यास करके मनुष्य ऋषि हो जाता है। मन्त्रोंके दशविध* संस्कार, मातृकान्यास तथा षडध्वशोधन^१ आदिके साथ सम्पूर्ण न्यासका फल उसे प्राप्त हो जाता है। प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति-निवृत्तिसे मिश्रित भाववाले पुरुषोंके लिये स्थूल प्रणवका जप ही अभीष्टका साधक होता है॥ २३—२६^{१/२}॥

* मन्त्रोंके दस संस्कार ये हैं—जनन, दीपन, बोधन, ताड़न, अभिषेचन, विमलीकरण, जीवन, तर्पण, गोपन और आप्यायन। इनकी विधि इस प्रकार है—

भोजपत्रपर गोरोचन, कुंकुम, चन्दनादिसे आत्माभिमुख त्रिकोण लिखे, फिर तीनों कोणोंमें छः-छः समान रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेपर ४९ त्रिकोण कोष्ठ बनेंगे। उनमें ईशानकोणसे मातृकावर्ण लिखकर देवताका आवाहन-पूजन करके मन्त्रका एक-एक वर्ण उच्चारण करके अलग पत्रपर लिखे। ऐसा करनेपर 'जनन' नामका प्रथम संस्कार होगा।

हंसमन्त्रका सम्पुट करनेसे एक हजार जपद्वारा मन्त्रका दूसरा 'दीपन' संस्कार होता है। यथा—हंसः रामाय नमः सोऽहम्।

हूँ-बीज-सम्पुटित मन्त्रका पाँच हजार जप करनेसे 'बोधन' नामक तीसरा संस्कार होता है। यथा—हूँ रामाय नमः हूँ।

फट-सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'ताड़न' नामक चतुर्थ संस्कार होता है। यथा—फट् रामाय नमः फट्।

भूर्जपत्रपर मन्त्र लिखकर 'रों हंसः ओं' इस मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करे और उस अभिमन्त्रित जलसे अश्वत्थपत्रादिद्वारा मन्त्रका अभिषेक करे। ऐसा करनेपर 'अभिषेक' नामक पाँचवाँ संस्कार होता है।

'ओं त्रों वषट्' इन वर्णोंसे सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'विमलीकरण' नामक छठा संस्कार होता है यथा—ओं त्रों वषट् रामाय नमः वषट् त्रों ओं।

स्वधा-वषट्-सम्पुटित मूलमन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'जीवन' नामक सातवाँ संस्कार होता है। यथा—स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा।

दुग्ध, जल एवं घृतके द्वारा मूलमन्त्रसे सौ बार तर्पण करना ही 'तर्पण' संस्कार है।

हीं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'गोपन' नामक नवम संस्कार होता है। यथा—हीं रामाय नमः हीं।

हीं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'आप्यायन' नामक दसवाँ संस्कार होता है। यथा—हीं रामाय नमः हीं।

इस प्रकार संस्कृत किया हुआ मन्त्र शीघ्र सिद्धिप्रद होता है।

१. षडध्व-शोधनका कार्य हौत्री दीक्षाके अन्तर्गत है। उसमें पहले कुण्डमें या वेदीपर अग्निस्थापन होता है। वहाँ षडध्वाका शोधन करके होमसे ही दीक्षा सम्पन्न होती है। विस्तार-भयसे अधिक विवरण नहीं दिया जा रहा है।

क्रियातपोजपैर्युक्तास्त्रिविधाः शिवयोगिनः ॥ २७

धनादिविभवैश्वैव कराद्यद्वैर्नमादिभिः ।
क्रियया पूजया युक्तः क्रियायोगीति कथ्यते ॥ २८

पूजायुक्तश्च मितभुग्बाह्येन्द्रियजयान्वितः ।
परद्रोहादिरहितस्तपोयोगीति कथ्यते ॥ २९

एतैर्युक्तः सदा शुद्धः सर्वकामादिवर्जितः ।
सदा जपपरः शान्तो जपयोगीति तं विदुः ॥ ३०

उपचारैः षोडशभिः पूजया शिवयोगिनाम् ।
सालोक्यादिक्रमेणैव शुद्धो मुक्तिं लभेन्नरः ॥ ३१

जपयोगमथो वक्ष्ये गदतः शृणुत द्विजाः ।
तपःकर्तुर्जपः प्रोक्तो यज्जपन्परिमार्जते ॥ ३२

शिवनाम नमःपूर्वं चतुर्थ्यां पञ्चतत्त्वकम् ।
स्थूलप्रणवरूपं हि शिवपञ्चाक्षरं द्विजाः ॥ ३३

पञ्चाक्षरजपेनैव सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ।
प्रणवेनादिसंयुक्तं सदा पञ्चाक्षरं जपेत् ॥ ३४

गुरुपदेशं सङ्गम्य सुखवासे सुभूतले ।
पूर्वपक्षे समारभ्य कृष्णभूतावधि द्विजाः ॥ ३५

माघं भाद्रं विशिष्टं तु सर्वकालोत्तमोत्तमम् ।

क्रिया, तप और जपके योगसे शिवयोगी तीन प्रकारके होते हैं—[वे क्रमशः क्रियायोगी, तपोयोगी और जपयोगी कहलाते हैं।] जो धन आदि वैभवोंसे पूजा-सामग्रीका संचय करके हाथ आदि अंगोंसे नमस्कारादि क्रिया करते हुए इष्टदेवकी पूजामें लगा रहता है, वह 'क्रियायोगी' कहलाता है। पूजामें संलग्न रहकर जो परिमित भोजन करता हुआ बाह्य इन्द्रियोंको जीतकर वशमें किये रहता है और मनको भी वशमें करके परद्रोह आदिसे दूर रहता है, वह 'तपोयोगी' कहलाता है। इन सभी सद्गुणोंसे युक्त होकर जो सदा शुद्धभावसे रहता तथा समस्त काम आदि दोषोंसे रहित हो शान्तचित्तसे निरन्तर जप किया करता है, उसे महात्मा पुरुष 'जपयोगी' मानते हैं। जो मनुष्य सोलह प्रकारके उपचारोंसे शिवयोगी महात्माओंकी पूजा करता है, वह शुद्ध होकर सालोक्य आदिके क्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ॥ २७—३१ ॥

हे द्विजो! अब मैं जपयोगका वर्णन करता हूँ, आप सब लोग ध्यान देकर सुनें। तपस्या करनेवालेके लिये जपका उपदेश किया गया है; क्योंकि वह जप करते-करते अपने आपको सर्वथा शुद्ध (निष्पाप) कर लेता है। हे ब्राह्मणो! पहले 'नमः' पद हो, उसके बाद चतुर्थी विभक्तिमें 'शिव' शब्द हो, तो पंचतत्त्वात्मक 'नमः शिवाय' मन्त्र होता है। इसे 'शिव-पंचाक्षर' कहते हैं। यह स्थूल प्रणवरूप है। इस पंचाक्षरके जपसे ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। पंचाक्षरमन्त्रके आदिमें ओंकार लगाकर ही सदा उसका जप करना चाहिये। हे द्विजो! गुरुके मुखसे पंचाक्षरमन्त्रका उपदेश पाकर जहाँ सुखपूर्वक निवास किया जा सके, ऐसी उत्तम भूमिपर महीनेके पूर्वपक्ष (शुक्ल)-में प्रतिपदासे आरम्भ करके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक निरन्तर जप करता रहे। माघ और भाद्रोंके महीने अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। यह समय सब समयोंसे उत्तमोत्तम माना गया है ॥ ३२—३५ ॥

एकवारं मिताशी तु वाग्यतो नियतेन्द्रियः ॥ ३६

स्वस्य राजपितृणां च नित्यं शुश्रूषणं चरेत् ।
सहस्रजपमात्रेण भवेच्छुद्धोऽन्यथा ऋणी ॥ ३७

पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षं जपेच्छिवमनुस्मरन् ।
पद्मासनस्थं शिवदं गङ्गाचन्द्रकलान्वितम् ॥ ३८

वामोरुस्थितशक्त्या च विराजन्तं महागणैः ।
मृगटङ्कधरं देवं वरदाभयपाणिकम् ॥ ३९

सदानुग्रहकर्तारं सदाशिवमनुस्मरन् ।
सम्पूज्य मनसा पूर्वं हृदि वा सूर्यमण्डले ॥ ४०

जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यां प्राइमुखः शुद्धकर्मकृत् ।
प्रातः कृष्णचतुर्दश्यां नित्यकर्म समाप्य च ॥ ४१

मनोरमे शुचौ देशे नियतः शुद्धमानसः ।
पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य सहस्रं द्वादशं जपेत् ॥ ४२

वरयेच्च सपलीकान् शैवान्वै ब्राह्मणोत्तमान् ।
एकं गुरुवरं शिष्टं वरयेत्साम्बमूर्तिकम् ॥ ४३

ईशानं चाथ पुरुषमधोरं वाममेव च ।
सद्योजातं च पञ्चैव शिवभक्तान्द्विजोत्तमान् ॥ ४४

पूजाद्रव्याणि सम्पाद्य शिवपूजां समारभेत् ।
शिवपूजां च विधिवत्कृत्वा होमं समारभेत् ॥ ४५

मुखान्तं च स्वसूत्रेण कृत्वा होमं समाचरेत् ।
दशैकं वा शतैकं वा सहस्रैकमथापि वा ॥ ४६

साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इन्द्रियोंको वशमें रखे, अपने स्वामी एवं माता-पिताकी नित्य सेवा करे। इस नियमसे रहकर जप करनेवाला पुरुष एक हजार जपसे ही शुद्ध हो जाता है, अन्यथा वह ऋणी होता है। भगवान् शिवका निरन्तर चिन्तन करते हुए पंचाक्षर-मन्त्रका पाँच लाख जप करे। [जपकालमें इस प्रकार ध्यान करे] कल्याणदाता भगवान् शिव कमलके आसनपर विराजमान हैं, उनका मस्तक श्रीगंगाजी तथा चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित है, उनकी बायीं जाँघपर आदिशक्ति भगवती उमा बैठी हैं, वहाँ खड़े हुए बड़े-बड़े गण भगवान् शिवकी शोभा बढ़ा रहे हैं, महादेवजी अपने चार हाथोंमें मृगमुद्रा, टंक तथा वर एवं अभयकी मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। इस प्रकार सदा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् सदाशिवका बार-बार स्मरण करते हुए हृदय अथवा सूर्यमण्डलमें पहले उनकी मानसिक पूजा करके फिर पूर्वाभिमुख हो पूर्वोक्त पंचाक्षरी विद्याका जप करे। उन दिनों साधक सदा शुद्ध कर्म ही करे। जपकी समाप्तिके दिन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको प्रातःकाल नित्यकर्म सम्पन्न करके शुद्ध एवं सुन्दर स्थानमें [शौच-संतोषादि] नियमोंसे युक्त होकर शुद्ध हृदयसे पंचाक्षर-मन्त्रका बारह हजार जप करे ॥ ३६—४२ ॥

तत्पश्चात् सपलीक पाँच ब्राह्मणोंका, जो श्रेष्ठ एवं शिवभक्त हों, वरण करे। इनके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ आचार्यका भी वरण करे और उसे साम्बसदाशिवका स्वरूप समझे। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—इन पाँचोंके प्रतीकस्वरूप श्रेष्ठ और शिवभक्त ब्राह्मणोंका वरण करनेके पश्चात् पूजन-सामग्रीको एकत्र करके भगवान् शिवका पूजन आरम्भ करे। विधिपूर्वक शिवकी पूजा सम्पन्न करके होम आरम्भ करे। अपने गृह्यसूत्रके अनुसार मुखान्त कर्म करनेके [अर्थात् परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, मृद-उद्धरण और अभ्युक्षण—इन पंच भू-संस्कारोंके पश्चात् वेदीपर स्वाभिमुख अग्निको स्थापित करके कुशकण्ठिका करनेके अनन्तर प्रज्वलित अग्निमें आज्यभागात् आहुति देकर] पश्चात् होमका कार्य आरम्भ करे।

कापिलेन घृतेनैव जुहुयात्स्वयमेव हि।
कारयेच्छिवभक्तैर्वाप्यष्टोत्तरशतं बुधः ॥ ४७

होमान्ते दक्षिणा देया गुरोगांमिथुनं तथा।
ईशानादिस्वरूपांस्तानुरुं साम्बं विभाव्य च ॥ ४८

तेषां पत्सिक्ततोयेन स्वशिरः स्नानमाचरेत्।
षट्त्रिंशत्कोटितीर्थेषु सद्यः स्नानफलं लभेत् ॥ ४९

दशाङ्गमनं तेषां वै दद्याद्वै भक्तिपूर्वकम्।
पराबुद्ध्या गुरोः पत्नीमीशानादिक्रमेण तु ॥ ५०

परमानेन सम्पूज्य यथाविभवविस्तरम्।
रुद्राक्षवस्त्रपूर्वं च वटकापूपकैर्युतम् ॥ ५१

बलिदानं ततः कृत्वा भूरि भोजनमाचरेत्।
ततः सम्प्रार्थ्य देवेशं जपं तावत्समापयेत् ॥ ५२

पुरश्चरणमेवं तु कृत्वा मन्त्री भवेन्नरः।
पुनश्च पञ्चलक्षेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ५३

अतलादि समारभ्य सत्यलोकावधि क्रमात्।
पञ्चलक्षजपात्तत्त्वलोकैश्वर्यमवाप्नुयात् ॥ ५४

मध्ये मृतश्चेद्धोगान्ते भूमौ तज्जापको भवेत्।
पुनश्च पञ्चलक्षेण ब्रह्मसामीप्यमाप्नुयात् ॥ ५५

पुनश्च पञ्चलक्षेण सारूप्यैश्वर्यमाप्नुयात्।
आहत्य शतलक्षेण साक्षाद् ब्रह्मसमो भवेत् ॥ ५६

कार्यब्रह्मण एवं हि सायुज्यं प्रतिपद्य वै।
यथेष्टु भोगमाप्नोति तद् ब्रह्म प्रलयावधि ॥ ५७

कपिला गायके धीसे ग्यारह, एक सौ एक अथवा एक हजार एक आहुतियाँ स्वयं ही दे अथवा विद्वान् पुरुष शिवभक्त ब्राह्मणोंसे एक सौ आठ आहुतियाँ दिलाये ॥ ४३—४७ ॥

होमकर्म समाप्त होनेपर गुरुको दक्षिणाके रूपमें एक गाय और बैल देने चाहिये। ईशान आदिके प्रतीकरूप जिन पाँच ब्राह्मणोंका वरण किया गया हो, उनको ईशान आदिका ही स्वरूप समझे तथा आचार्यको साम्बसदाशिवका स्वरूप माने। इसी भावनाके साथ उन सबके चरण धोये और उनके चरणोदक्षसे अपने मस्तकको सींचे। ऐसा करनेसे वह साधक छत्तीस करोड़ तीर्थोंमें स्नान करनेका फल तत्काल प्राप्त कर लेता है। उन ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक दशांग अन्न देना चाहिये। गुरुपत्नीको पराशक्ति मानकर उनका भी पूजन करे। ईशानादि-क्रमसे उन सभी ब्राह्मणोंका उत्तम अन्नसे पूजन करके अपने वैभव-विस्तारके अनुसार रुद्राक्ष, वस्त्र, बड़ा और पूआ आदि अर्पित करे। तदनन्तर दिक्पालादिको बलि देकर ब्राह्मणोंको भरपूर भोजन कराये। इसके बाद देवेश्वर शिवसे प्रार्थना करके अपना जप समाप्त करे। इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है। फिर पाँच लाख जप करनेसे उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है। तदनन्तर पुनः पाँच लाख जप करनेपर मनुष्य अतलसे लेकर सत्यलोकतकके लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है ॥ ४८—५४ ॥

यदि अनुष्ठान पूर्ण होनेके पहले बीचमें ही साधककी मृत्यु हो जाय तो वह परलोकमें उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर पंचाक्षर-मन्त्रके जपका अनुष्ठान करता है। [समस्त लोकोंका ऐश्वर्य पानेके पश्चात् मन्त्रको सिद्ध करनेवाला] वह पुरुष यदि पुनः पाँच लाख जप करे तो उसे ब्रह्माजीका सामीप्य प्राप्त होता है। पुनः पाँच लाख जप करनेसे उसे सारूप्य नामक ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सौ लाख जप करनेसे वह साक्षात् ब्रह्माके समान हो जाता है। इस तरह कार्य-ब्रह्म (हिरण्यगर्भ)-का

पुनः कल्पान्तरे वृत्ते ब्रह्मपुत्रः स जायते ।
पुनश्च तपसा दीप्तः क्रमान्मुक्तो भविष्यति ॥ ५८

पृथ्व्यादिकार्यभूतेभ्यो लोका वै निर्मिताः क्रमात् ।
पातालादि च सत्यान्तं ब्रह्मलोकाश्तुर्दश ॥ ५९
सत्यादूर्ध्वं क्षमान्तं वै विष्णुलोकाश्तुर्दश ।
क्षमालोके कार्यविष्णुवैकुण्ठे वरपत्तने ॥ ६०
कार्यलक्ष्या महाभोगी रक्षां कृत्वाधितिष्ठति ।
तदूर्ध्वगाश्च शुच्यन्ता लोकाष्टाविंशतिः स्थिताः ॥ ६१
शुचौ लोके तु कैलासे रुद्रो वै भूतहृत्स्थितः ।
षडुत्तराश्च पञ्चाशदहिंसान्तास्तदूर्ध्वगाः ॥ ६२
अहिंसालोकमास्थाय ज्ञानकैलासके पुरे ।
कार्येश्वरस्तिरोभावं सर्वान्कृत्वाधितिष्ठति ॥ ६३
तदन्ते कालचक्रं हि कालातीतस्ततः परम् ।
शिवेनाधिष्ठितस्तत्र कालश्वकेश्वराह्वयः ॥ ६४
माहिषं धर्ममास्थाय सर्वान्कालेन युज्ञति ।

असत्यश्वाशुचिश्वैव हिंसा चैवाथ निर्वृणा ॥ ६५
असत्यादिचतुष्पादः सर्वाशः कामरूपधृक् ।
नास्तिक्यलक्ष्मीर्दुःसङ्गो वेदबाह्यध्वनिः सदा ॥ ६६
क्रोधसङ्गः कृष्णवर्णो महामहिषवेषवान् ।
तावान्महेश्वरः प्रोक्तस्तिरोधास्तावदेव हि ॥ ६७
तदर्वाक्कर्मभोगो हि तदूर्ध्वं ज्ञानभोगकम् ।
तदर्वाक्कर्ममाया हि ज्ञानमाया तदूर्ध्वकम् ॥ ६८

मा लक्ष्मीः कर्मभोगो वै याति मायेति कथ्यते ।
मा लक्ष्मीज्ञानभोगो वै याति मायेति कथ्यते ॥ ६९

सायुज्य प्राप्त करके वह उस ब्रह्माका प्रलय होनेतक उस लोकमें यथेष्ट भोग भोगता है। फिर दूसरे कल्पका आरम्भ होनेपर वह ब्रह्माजीका पुत्र होता है। उस समय फिर तपस्या करके दिव्य तेजसे प्रकाशित होकर वह क्रमशः मुक्त हो जाता है ॥ ५५—५८ ॥

पृथ्वी आदि कार्यस्वरूप भूतोद्धारा पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त ब्रह्माजीके चौदह लोक क्रमशः निर्मित हुए हैं। सत्यलोकसे ऊपर क्षमालोकतक जो चौदह भुवन हैं, वे भगवान् विष्णुके लोक हैं। उस क्षमालोक वाले श्रेष्ठ वैकुण्ठमें महाभोगी कार्यविष्णु कार्यलक्ष्मीसहित सबकी रक्षा करते हुए विराजमान रहते हैं। क्षमालोकसे ऊपर शुचिलोकपर्यन्त अद्वाईस भुवन स्थित हैं। शुचिलोकके अन्तर्गत कैलासमें प्राणियोंका संहार करनेवाले रुद्रदेव विराजमान हैं। शुचिलोकसे ऊपर अहिंसालोकपर्यन्त छप्पन भुवनोंकी स्थिति है। अहिंसालोकका आश्रय लेकर जो ज्ञानकैलास नामक नगर शोभा पाता है, उसमें कार्यभूत महेश्वर सबको अदृश्य करके रहते हैं। अहिंसालोकके अन्तमें कालचक्रकी स्थिति है। तदनन्तर कालातीत स्थित है; जहाँ कालचक्रेश्वर नामक शिव माहिषधर्मका आश्रय लेकर सबको कालसे संयुक्त किये रहते हैं ॥ ५९—६४९/२ ॥

असत्य, अशुचि, हिंसा, निर्दयता—ये असत्य आदि चार पाद कामरूप धारण करनेवाले शिवके अंश हैं। नास्तिकतायुक्त लक्ष्मी, दुःसंग, वेदबाह्य शब्द, क्रोधका संग, कृष्ण वर्ण—ये महामहिषके रूपवाले हैं। यहाँतक महेश्वरके विराट्-स्वरूपका वर्णन किया गया। वहींतक लोकोंका तिरोधान अथवा लय होता है। उससे नीचे कर्मोंका भोग है और उससे ऊपर ज्ञानका भोग, उसके नीचे कर्ममाया है और उसके ऊपर ज्ञानमाया ॥ ६५—६८ ॥

[अब मैं कर्ममाया और ज्ञानमायाका तात्पर्य बता रहा हूँ—] ‘मा’ का अर्थ है लक्ष्मी; उससे कर्मभोग यात—प्राप्त होता है, इसलिये वह माया अथवा कर्ममाया कहलाती है। इसी तरह मा अर्थात् लक्ष्मीसे ज्ञानभोग यात अर्थात् प्राप्त होता है, इसलिये

तदूर्ध्वं नित्यभोगो हि तदर्वाङ् नश्चरं विदुः ।
 तदर्वाक्वचं तिरोधानं तदूर्ध्वं न तिरोधनम् ॥ ७०
 तदर्वाक् पाशबन्धो हि तदूर्ध्वं नहि बन्धनम् ।
 तदर्वाक् परिवर्तन्ते काम्यकर्मानुसारिणः ॥ ७१
 निष्कामकर्मभोगस्तु तदूर्ध्वं परिकीर्तिः ।

तदर्वाक् परिवर्तन्ते बिन्दुपूजापरायणाः ॥ ७२
 तदूर्ध्वं हि व्रजन्त्येव निष्कामा लिङ्गपूजकाः ।
 तदर्वाक् परिवर्तन्ते शिवान्यसुरपूजकाः ॥ ७३
 शिवैकनिरता ये च तदूर्ध्वं सम्प्रयान्ति ते ।
 तदर्वाग्जीवकोटिः स्यात्तदूर्ध्वं परकोटिकाः ॥ ७४

सांसारिकास्तदर्वाक् च मुक्ताः खलु तदूर्ध्वगाः ।
 तदर्वाक् परिवर्तन्ते प्राकृतद्रव्यपूजकाः ॥ ७५
 तदूर्ध्वं हि व्रजन्त्येते पौरुषद्रव्यपूजकाः ।
 तदर्वाक्छक्तिलिङ्गं तु शिवलिङ्गं तदूर्ध्वकम् ॥ ७६
 तदर्वागावृतं लिङ्गं तदूर्ध्वं हि निराकृति ।
 तदर्वाक्कल्पितं लिङ्गं तदूर्ध्वं वै न कल्पितम् ॥ ७७
 तदर्वाग्बाह्यलिङ्गं स्यादन्तरङ्गं तदूर्ध्वकम् ।
 तदर्वाक्छक्तिलोका हि शतं वै द्वादशाधिकम् ॥ ७८
 तदर्वाग्बिन्दुरूपं हि नादरूपं तदुत्तरम् ।
 तदर्वाक्कर्मलोकस्तु तदूर्ध्वं ज्ञानलोककः ॥ ७९

नमस्कारस्तदूर्ध्वं हि मदाहङ्कारनाशनः ।
 जनं तस्मात् तिरोधानं प्रत्यायाति न ना यतः ॥ ८०

ज्ञानशब्दार्थं एवं हि तिरोधाननिवारणात् ।
 तदर्वाक् परिवर्तन्ते ह्याधिभौतिकपूजकाः ॥ ८१
 आध्यात्मिकार्चका एव तदूर्ध्वं सम्प्रयान्ति वै ।

उसे माया या ज्ञानमाया कहा गया है। उपर्युक्त सीमासे नीचे नश्वर भोग हैं और ऊपर नित्य भोग। उससे नीचे ही तिरोधान अथवा लय है, ऊपर तिरोधान नहीं है। वहाँसे नीचे ही कर्ममय पाशोंद्वारा बन्धन होता है। ऊपर बन्धनका सदा अभाव है। उससे नीचे ही जीव सकाम कर्मोंका अनुसरण करते हुए विभिन्न लोकों और योनियोंमें चक्कर काटते हैं। उससे ऊपरके लोकोंमें निष्काम कर्मका ही भोग बताया गया है ॥ ६९—७१ १/२ ॥

बिन्दुपूजामें तत्पर रहनेवाले उपासक वहाँसे नीचेके लोकोंमें ही घूमते हैं। उसके ऊपर तो निष्कामभावसे शिवलिंगकी पूजा करनेवाले उपासक ही जाते हैं। उसके नीचे शिवके अतिरिक्त अन्य देवताओंकी पूजा करनेवाले घूमते रहते हैं। जो एकमात्र शिवकी ही उपासनामें तत्पर हैं, वे उससे ऊपरके लोकोंमें जाते हैं। वहाँसे नीचे जीवकोटि है और ऊपर ईश्वरकोटि ॥ ७२—७४ ॥

नीचे संसारी जीव रहते हैं और ऊपर मुक्त लोग। प्राकृत द्रव्योंसे पूजा करनेवाले उसके नीचे रहते हैं और पौरुष द्रव्योंसे पूजा करने वाले उससे ऊपर जाते हैं। उसके नीचे शक्तिलिंग है और उसके ऊपर शिवलिंग। उसके नीचे सगुण लिंग है और उसके ऊपर निर्गुण लिंग। उसके नीचे कल्पित लिंग है और उसके ऊपर कल्पित नहीं है। उसके नीचे आधिभौतिक लिंग और उसके ऊपर आध्यात्मिक लिंग है। उसके नीचे एक सौ बारह शक्ति-लोक हैं। उसके नीचे बिन्दुरूप और उसके ऊपर नादरूप है। उसके नीचे कर्मलोक है और उसके ऊपर ज्ञानलोक ॥ ७५—७९ ॥

इसी प्रकार उसके ऊपर मद और अहंकारका नाश करनेवाली नम्रता है, वहाँ जन्मजनित तिरोधान नहीं है। उसका निवारण किये बिना वहाँ किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है। इस प्रकार तिरोधानका निवारण करनेसे वहाँ ज्ञानशब्दका अर्थ ही प्रकाशित होता है। आधिभौतिक पूजा करनेवाले लोग उससे नीचेके लोकोंमें ही चक्कर काटते हैं। जो आध्यात्मिक उपासना करनेवाले हैं, वे ही उससे ऊपरको जाते हैं।

तावद्वै वेदिभागं तन्महालोकात्मलिङ्गके ॥ ८२
 प्रकृत्याद्यष्टबन्धोऽपि वेद्यते सम्प्रतिष्ठितः ।
 एवमेतादृशं ज्ञेयं सर्वं लौकिकवैदिकम् ॥ ८३

अधर्महिषारूढं कालचक्रं तरन्ति ते ।
 सत्यादिधर्मयुक्ता वे शिवपूजापराश्र ये ॥ ८४
 तदूर्ध्वं वृषभो धर्मो ब्रह्मचर्यस्वरूपधृक् ।
 सत्यादिपादयुक्तस्तु शिवलोकाग्रतः स्थितः ॥ ८५
 क्षमाशृङ्गः शमश्रोत्रो वेदध्वनिविभूषितः ।
 आस्तिक्यचक्षुर्निश्चासगुरुबुद्धिमना वृषः ॥ ८६
 क्रियादिवृषभा ज्ञेयाः कारणादिषु सर्वदा ।
 तं क्रियावृषभं धर्मं कालातीतोऽधितिष्ठति ॥ ८७

ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्वस्वायुर्दिनमुच्यते ।
 तदूर्ध्वं न दिनं रात्रिं जन्ममरणादिकम् ॥ ८८
 पुनः कारणसत्यान्ताः कारणब्रह्मणस्तथा ।
 गन्धादिभ्यस्तु भूतेभ्यस्तदूर्ध्वं निर्मिताः सदा ॥ ८९
 सूक्ष्मगन्धस्वरूपा हि स्थिता लोकाश्चतुर्दश ।

पुनः कारणविष्णोर्वै स्थिता लोकाश्चतुर्दश ॥ ९०
 पुनः कारणरुद्रस्य लोकाष्टविंशका मताः ।
 पुनश्च कारणेशस्य षट्पञ्चाशत्तदूर्ध्वगाः ॥ ९१
 ततः परं ब्रह्मचर्यलोकाख्यं शिवसम्मतम् ।
 तत्रैव ज्ञानकैलासे पञ्चावरणसंयुते ॥ ९२
 पञ्चमण्डलसंयुक्तं पञ्चब्रह्मकलान्वितम् ।
 आदिशक्तिसमायुक्तमादिलिङ्गं तु तत्र वै ॥ ९३
 शिवालयमिदं प्रोक्तं शिवस्य परमात्मनः ।
 परशक्त्या समायुक्तस्तत्रैव परमेश्वरः ॥ ९४
 सृष्टिः स्थितिश्च संहारस्तिरोभावोऽप्यनुग्रहः ।
 पञ्चकृत्यप्रवीणोऽसौ सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ९५

इस प्रकार वहाँतक महालोकरूपी आत्मलिंगम् विभागको जानना चाहिये और प्रकृति आदि (प्रकृति, महत्, अहंकार, पंच तन्मात्राएँ) आठ बन्धोंको भी जाने। इस प्रकार सब लौकिक तथा वैदिक स्वरूपको जानना चाहिये ॥ ८०—८३ ॥

जो सत्य-अहिंसा आदि धर्मोंसे युक्त होकर भगवान् शिवके पूजनमें तत्पर रहते हैं, वे अधर्मरूप भौंसेपर आरूढ़ कालचक्रको पार कर जाते हैं। कालचक्रेश्वरकी सीमातक जो विराट् महेश्वरलोक बताया गया है, उससे ऊपर वृषभके आकारमें धर्मकी स्थिति है। वह ब्रह्मचर्यका मूर्तिमान् रूप है। उसके सत्य, शौच, अहिंसा और दया—ये चार पाद हैं। वह शिवलोकके आगे स्थित है। क्षमा उसके सींग हैं, शम कान हैं, वे वेदध्वनिरूपी शब्दसे विभूषित हैं। आस्तिकता उसके दोनों नेत्र हैं, निःश्वास ही उसकी श्रेष्ठ बुद्धि एवं मन है। क्रिया आदि धर्मरूपी जो वृषभ हैं, वे कारण आदिमें सर्वदा स्थित हैं—ऐसा जानना चाहिये। उस क्रियारूप वृषभाकार धर्मपर कालातीत शिव आरूढ़ होते हैं ॥ ८४—८७ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी जो अपनी-अपनी आयु है, उसीको दिन कहते हैं। जहाँ धर्मरूपी वृषभकी स्थिति है, उससे ऊपर न दिन है, न रात्रि और वहाँ जन्म-मरण आदि भी नहीं है। फिर कारणस्वरूप ब्रह्माके भी कारण सत्यलोकपर्यन्त चौदह लोक स्थित हैं, जो पंचभौतिक गन्ध आदिसे परे हैं। उनकी सनातन स्थिति है। सूक्ष्म गन्ध ही उनका स्वरूप है ॥ ८८-८९ ॥

इसके ऊपर कारणरूप विष्णुके चौदह लोक स्थित हैं। उनसे भी ऊपर फिर कारणरूपी रुद्रके अद्वाईस लोकोंकी स्थिति मानी गयी है। फिर उनसे भी ऊपर कारणेश शिवके छप्पन लोक विद्यमान हैं। तदनन्तर शिवसम्मत ब्रह्मचर्यलोक है और वहीं पाँच आवरणोंसे युक्त ज्ञानमय कैलास है; वहाँपर पाँच मण्डलों, पाँच ब्रह्मकलाओं और आदिशक्तिसे संयुक्त आदिलिंग प्रतिष्ठित है। उसे परमात्मा शिवका शिवालय कहा गया है। वहीं पराशक्तिसे युक्त परमेश्वर शिव निवास करते हैं। वे सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पाँचों कृत्योंमें प्रवीण हैं। उनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दस्वरूप है ॥ ९०—९५ ॥

ध्यानधर्मः सदा यस्य सदानुग्रहतत्परः ।
समाध्यासनमासीनः स्वात्मारामो विराजते ॥ १६

तस्य सन्दर्शनं साध्यं कर्मध्यानादिभिः क्रमात् ।
नित्यादिकर्मयजनाच्छिवकर्ममतिर्भवेत् ॥ १७

क्रियादिशिवकर्मभ्यः शिवज्ञानं प्रसाधयेत् ।
तद्वर्णनगताः सर्वे मुक्ता एव न संशयः ॥ १८

मुक्तिरात्मस्वरूपेण स्वात्मारामत्वमेव हि ।
क्रियातपोजपज्ञानध्यानधर्मेषु सुस्थितः ॥ १९

शिवस्य दर्शनं लब्ध्वा स्वात्मारामत्वमेव हि ।
यथा रविः स्वकिरणादशुद्धिमपनेष्यति ॥ १००

कृपाविचक्षणः शम्भुरज्ञानमपनेष्यति ।
अज्ञानविनिवृत्तौ तु शिवज्ञानं प्रवर्तते ॥ १०१

शिवज्ञानात्स्वस्वरूपमात्मारामत्वमेष्यति ।
आत्मारामत्वसंसिद्धौ कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ १०२

पुनश्च शतलक्षेण ब्रह्मणः पदमान्जुयात् ।
पुनश्च शतलक्षेण विष्णोः पदमवान्जुयात् ॥ १०३

पुनश्च शतलक्षेण रुद्रस्य पदमान्जुयात् ।
पुनश्च शतलक्षेण ऐश्वर्यं पदमान्जुयात् ॥ १०४

पुनश्चैवंविधेनैव जपेन सुसमाहितः ।
शिवलोकादिभूतं हि कालचक्रमवान्जुयात् ॥ १०५

वे सदा ध्यानरूपी धर्ममें ही स्थित रहते हैं और सदा सबपर अनुग्रह किया करते हैं। वे स्वात्माराम हैं और समाधिरूपी आसनपर आसीन हो सुशोभित होते हैं। कर्म एवं ध्यान आदिका अनुष्ठान करनेसे क्रमशः साधनपथमें आगे बढ़नेपर उनका दर्शन साध्य होता है। नित्य-नैमित्तिक आदि कर्मोद्घारा देवताओंका यजन करनेसे भगवान् शिवके समाराधन-कर्ममें मन लगता है। क्रिया आदि जो शिवसम्बन्धी कर्म हैं, उनके द्वारा शिवज्ञान सिद्ध करे। जिन्होंने शिवतत्त्वका साक्षात्कार कर लिया है अथवा जिनपर शिवकी कृपादृष्टि पड़ चुकी है, वे सब मुक्त ही हैं; इसमें संशय नहीं है ॥ १६—१८ ॥

आत्मस्वरूपसे जो स्थिति है, वही मुक्ति है। एकमात्र अपने आत्मामें रमण या आनन्दका अनुभव करना ही मुक्तिका स्वरूप है। जो पुरुष क्रिया, तप, जप, ज्ञान और ध्यानरूपी धर्ममें भलीभाँति स्थित है, वह शिवका साक्षात्कार करके स्वात्मारामत्वस्वरूप मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अशुद्धिको दूर कर देते हैं, उसी प्रकार कृपा करनेमें कुशल भगवान् शिव अपने भक्तके अज्ञानको मिटा देते हैं। अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर शिवज्ञान स्वतः प्रकट हो जाता है। शिवज्ञानसे अपना विशुद्ध स्वरूप आत्मारामत्व प्राप्त होता है और आत्मारामत्वकी सम्यक् सिद्धि हो जानेपर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥ १९—१०२ ॥

(शिव मन्त्रका) सौ लाख जप करनेसे ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है और फिर सौ लाख जप करनेसे विष्णुपद प्राप्त होता है ॥ १०३ ॥

पुनः सौ लाख (शिवमन्त्रका) जप करनेसे रुद्रका पद प्राप्त होता है। उसके बाद फिर सौ लाख जप करनेपर ऐश्वर्यमय पदकी प्राप्ति हो जाती है ॥ १०४ ॥

फिर इसी प्रकार सम्यक् रूपसे जप करनेपर शिवलोकके आदिभूत अर्थात् शिवलोकके आधारभूत निर्माता कालचक्रको प्राप्त किया जा सकता है ॥ १०५ ॥

कालचक्रं पञ्चचक्रमेकैकेन क्रमोत्तरे।
सृष्टिमोहौ ब्रह्मचक्रं भोगमोहौ तु वैष्णवम्॥ १०६
कोपमोहौ रौद्रचक्रं भ्रमणं चैश्वरं विदुः।
शिवचक्रं ज्ञानमोहौ पञ्चचक्रं विदुर्बुधाः॥ १०७

पुनश्च दशकोट्या हि कारणब्रह्मणः पदम्।
पुनश्च दशकोट्या हि तत्पदैश्वर्यमाजुयात्॥ १०८

एवं क्रमेण विष्णवादेः पदं लब्ध्वा महौजसः।
क्रमेण तत्पदैश्वर्यं लब्ध्वा चैव महात्मनः॥ १०९

शतकोटिमनुं जप्त्वा पञ्चोत्तरमन्द्रितः।
शिवलोकमवाजोति पञ्चमावरणाद् बहिः॥ ११०

राजसं मण्डपं तत्र नन्दिसंस्थानमुत्तमम्।
तपोरूपश्च वृषभस्तत्रैव परिदृश्यते॥ १११

सद्योजातस्य तत्स्थानं पञ्चमावरणं परम्।
वामदेवस्य च स्थानं चतुर्थावरणं पुनः॥ ११२

अघोरनिलयं पश्चात् तृतीयावरणं परम्।
पुरुषस्यैव साम्बस्य द्वितीयावरणं शुभम्॥ ११३

ईशानस्य परस्यैव प्रथमावरणं ततः।
ध्यानधर्मस्य च स्थानं पञ्चमं मण्डपं ततः॥ ११४

बलिनाथस्य संस्थानं तत्र पूर्णमृतप्रदम्।
चतुर्थं मण्डपं पश्चाच्छेष्ठरमूर्तिमत्॥ ११५

सोमस्कन्दस्य च स्थानं तृतीयं मण्डपं परम्।
द्वितीयं मण्डपं नृत्यमण्डपं प्राहुरास्तिकाः॥ ११६

प्रथमं मूलमायायाः स्थानं तत्रैव शोभनम्।
तत परं गर्भगृहं लिङ्गस्थानं परं शुभम्॥ ११७

यह कालचक्र पंचचक्रोंसे युक्त है, जो एको पश्चात् एकमें स्थित हैं। सृष्टि और मोहसे युक्त ब्रह्मचक्र, भोग तथा मोहसे युक्त वैष्णवचक्र, कोप एवं मोहसे युक्त रौद्रचक्र, भ्रमणसे युक्त ईश्वरचक्र और ज्ञान तथा मोहसे युक्त शिवचक्र है। ऐसा इन पाँच चक्रोंके विषयमें बुद्धिमानोंका कहना है॥ १०६-१०७॥

पुनः दस करोड़ (शिवमन्त्रका) जप करनेपर कारणब्रह्मका पद प्राप्त होता है। तदनन्तर दस करोड़ जप करनेसे ऐश्वर्ययुक्त पदकी प्राप्ति होती है॥ १०८॥

इस प्रकार क्रमशः जप करता हुआ प्राणी महान् ओजस्वी विष्णुके पदको प्राप्तकर पुनः उसी क्रमसे जपता हुआ महात्माओंके उस ऐश्वर्यपदको प्राप्त करता है॥ १०९॥

बिना असावधानी किये १०५ करोड़ मन्त्रोंका जप करनेके पश्चात् वह प्राणी पाँच आवरणों (पशु, पाश, माया, शक्ति, रोध)-से बाहर स्थित शिवलोक प्राप्त करता है॥ ११०॥

वहाँ (उस शिवलोकमें) राजसमण्डप है, नन्दीश्वरका उत्तम निवास है। तपस्यारूपी वृषभ वहींपर दिखायी देता है॥ १११॥

वहींपर पाँचों आवरणोंसे बाहर सद्योजात (अर्थात् तत्काल आवरणरहित हुए भगवान् शिव)-का स्थान है। पुनः चतुर्थ आवरणमें वामदेवका स्थान है॥ ११२॥

उसके पश्चात् तृतीयावरणमें अघोर शिवका, दूसरे आवरणमें साम्बशिवका मंगलमय तथा प्रथमावरणमें ईशान शिवका निवासस्थान है। उसके पश्चात् पंचम मण्डप है, जहाँ ध्यान और धर्मका निवास रहता है॥ ११३-११४॥

तदनन्तर चतुर्थ मण्डप है, वहाँपर चन्द्रशेखरकी मूर्तिसे युक्त भगवान् बलिनाथका वासस्थान है, जो पूर्ण अमृतको प्रदान करनेवाला है॥ ११५॥

तृतीय मण्डपमें सोमस्कन्दका परम निवासस्थान है। उसके पश्चात् द्वितीय मण्डप है, आस्तिक लोग जिसे नृत्यमण्डप कहते हैं॥ ११६॥

प्रथम मण्डपमें मूलमायाका स्थान है, वहाँपर अत्यन्त शोभा वास करती है। उसके परे गर्भगृह है, जहाँपर शिवका लिंगस्थान है॥ ११७॥

नन्दिसंस्थानतः पश्चान् विदुः शिववैभवम् ।
नन्दीश्वरो बहिस्तिष्ठन्पञ्चाक्षरमुपासते ॥ ११८

एवं गुरुक्रमाल्लब्धं नन्दीशाच्च मया पुनः ।
ततः परं स्वसंवेद्यं शिवेनैवानुभावितम् ॥ ११९

शिवस्य कृपया साक्षाच्छिवलोकस्य वैभवम् ।
विज्ञातुं शक्यते सर्वैर्नान्यथेत्याहुरास्तिकाः ॥ १२०

एवं क्रमेण मुक्ताः स्युब्राह्मणा वै जितेन्द्रियाः ।
अन्येषां च क्रमं वक्ष्ये गदतः शृणुतादरात् ॥ १२१

गुरुपदेशाज्ञाय्यं वै ब्राह्मणानां नमोऽन्तकम् ।
पञ्चाक्षरं पञ्चलक्ष्मायुष्यं प्रजपेद्विधिः ॥ १२२

स्त्रीत्वापनयनार्थं तु पञ्चलक्ष्मं जपेत्युनः ।
मन्त्रेण पुरुषो भूत्वा क्रमान्मुक्तो भवेद् बुधः ॥ १२३

क्षत्रियः पञ्चलक्ष्मेण क्षत्रत्वमपनेष्यति ।
पुनश्च पञ्चलक्ष्मेण क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत् ॥ १२४

मन्त्रसिद्धिर्जपाच्चैव क्रमान्मुक्तो भवेन्नरः ।
वैश्यस्तु पञ्चलक्ष्मेण वैश्यत्वमपनेष्यति ॥ १२५

पुनश्च पञ्चलक्ष्मेण मन्त्रक्षत्रिय उच्यते ।
पुनश्च पञ्चलक्ष्मेण क्षत्रत्वमपनेष्यति ॥ १२६

पुनश्च पञ्चलक्ष्मेण मन्त्रब्राह्मण उच्यते ।
शूद्रश्वैव नमोऽन्तेन पञ्चविंशतिलक्ष्मतः ॥ १२७

नन्दीस्थानके पश्चात् शिवके वैभवको कोई नहीं जान सकता है। नन्दीश्वर (गर्भगृहसे) बाहर रहकर शिवके पंचाक्षर मन्त्रकी उपासना करते हैं ॥ ११८ ॥

इस प्रकार गुरुपरम्परासे नन्दीश्वर और सनत्कुमारके संवादकी जानकारी मुझे हुई है। उसके पश्चात्का परम रहस्य स्वसंवेद्य है, जिसका अनुभव स्वयं शिव करते हैं ॥ ११९ ॥

आस्तिकजनोंका कहना है कि साक्षात् शिवकी कृपासे ही शिवलोकके ऐश्वर्यको लोग जान सकते हैं, अन्यथा असम्भव है ॥ १२० ॥

इस प्रकारसे शिवका साक्षात्कार प्राप्तकर जितेन्द्रिय ब्राह्मण मुक्त हो जाते हैं अर्थात् मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। अब मैं अन्य क्षत्रियादि वर्णोंके विषयमें कहूँगा। उसे आदरपूर्वक आप सब सुनें ॥ १२१ ॥

यदि ब्राह्मणको आयु प्राप्त करनेकी इच्छा है तो उसे गुरुके द्वारा बताये गये उपदेशके अनुसार इस शिवके पंचाक्षरमन्त्रका विधिपूर्वक पाँच लाख जप करना चाहिये ॥ १२२ ॥

यदि स्त्री स्त्रीत्व अर्थात् स्त्रीयोनिसे मुक्त होना चाहती है तो वह भी पाँच लाख पंचाक्षर मन्त्रोंका जप करे। उन मन्त्रोंके प्रभावसे पुरुषका जन्म लेकर वह क्रमशः मुक्त हो जाती है ॥ १२३ ॥

क्षत्रिय पाँच लाख मन्त्रोंका जप करके क्षत्रियत्वको दूर कर लेता है अर्थात् क्षत्रियवर्णमें रहनेवाले गुणोंसे वह मुक्त हो जाता है। तदनन्तर पुनः पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेपर वह ब्राह्मण हो जाता है। फिर उतनेही मन्त्रोंके जपसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है और तत्पश्चात् उसी क्रमसे पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेपर वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। वैश्य पंचलक्ष्म मन्त्रोंका जप करनेसे अपने वैश्यत्व (गुण)-का परित्याग कर देता है। पुनः पंचलक्ष मन्त्रका जप करनेपर वह मन्त्र-क्षत्रिय कहलानेका अधिकारी हो जाता है। उसके बाद पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेसे क्षत्रियत्वको दूर कर देता है। तदनन्तर पुनः पंचलक्ष मन्त्रका जप करके मन्त्र-ब्राह्मण कहलानेका अधिकारी हो जाता है। इसी प्रकार शूद्र भी मन्त्रके अन्तमें नमः

मन्त्रविप्रत्वमापद्य पश्चाच्छुद्धो भवेद् द्विजः ।
नारी वाथ नरो वाथ ब्राह्मणो वान्य एव वा ॥ १२८

नमोऽन्तं वा नमः पूर्वमातुरः सर्वदा जपेत् ।
तत्र स्त्रीणां तथैवोह्य गुरुनिर्दर्शयेत्क्रमात् ॥ १२९

साधकः पञ्चलक्षान्ते शिवप्रीत्यर्थमेव हि ।
महाभिषेकनैवेद्यं कृत्वा भक्तांश्च पूजयेत् ॥ १३०

पूजया शिवभक्तस्य शिवः प्रीततरो भवेत् ।
शिवस्य शिवभक्तस्य भेदो नास्ति शिवो हि सः ॥ १३१

शिवस्वरूपमन्त्रस्य धारणाच्छिव एव हि ।
शिवभक्तशरीरे हि शिवे तत्परमो भवेत् ॥ १३२

शिवभक्ताः क्रियाः सर्वा वेद सर्वक्रियां विदुः ।
यावद्यावच्छिवं मन्त्रं येन जपतं भवेत्क्रमात् ॥ १३३
तावद्वै शिवसानिध्यं तस्मिन्देहे न संशयः ।
देवीलिङ्गं भवेद् रूपं शिवभक्तस्त्रियास्तथा ॥ १३४
यावन्मन्त्रं जपेद्व्यास्तावत्सानिध्यमस्ति हि ।

शिवं सम्पूजयेद्वीमान्स्वयं वै शब्दरूपभाक् ॥ १३५

स्वयं चैव शिवो भूत्वा परां शक्तिं प्रपूजयेत् ।
शक्तिं वेरं च लिङ्गं च ह्यालेख्यामायया यजेत् ॥ १३६

शब्द लगाकर यदि २५ लाख मन्त्रोंका जप करता है तो वह शूद्र मन्त्रविप्रत्वको प्राप्त द्विज (ब्राह्मण) हो जाता है। चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, ब्राह्मण हो या अन्य ही कोई वर्ण हो, पंचाक्षर मन्त्रका जप करनेसे सभी शुद्ध हो जाते हैं ॥ १२४—१२८ ॥

जो कामनापूर्तिके लिये आतुर है, उसे चाहिये कि वह नमः को आदि-अन्तमें लगाकर शिवमन्त्रका सदैव जप करता रहे। स्त्रियों तथा शूद्रोंके लिये मन्त्रजपका जैसा स्वरूप कहा गया है, उसीके अनुसार गुरुको भी चाहिये कि वह उन्हें निर्देश दे ॥ १२९ ॥

साधकको चाहिये कि वह पाँच लाख जप करनेके पश्चात् भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये महाभिषेक एवं नैवेद्य निवेदन करके शिवभक्तोंका पूजन करे ॥ १३० ॥

शिवभक्तकी पूजासे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिव और उनके भक्तमें कोई भेद नहीं है। वह साक्षात् शिवस्वरूप ही है ॥ १३१ ॥

शिवस्वरूप मन्त्रको धारण करके वह शिव ही हो जाता है, शिवभक्तका शरीर शिवरूप ही है। अतः उसकी सेवामें तत्पर रहना चाहिये ॥ १३२ ॥

जो शिवके भक्त हैं, वे लोक और वेदकी सारी क्रियाओंको जानते हैं। जो क्रमशः जितना-जितना शिवमन्त्रका जप कर लेता है, उसके शरीरको उतना ही उतना शिवका सामीप्य प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। शिवभक्त स्त्रीका रूप देवी पार्वतीका ही स्वरूप है। वह जितना मन्त्र जपती है, उसे उतना ही देवीका सानिध्य प्राप्त होता जाता है ॥ १३३-१३४ ॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको शिवका पूजन करना चाहिये, इससे वह साक्षात् मन्त्ररूप हो जाता है। साधक स्वयं शिवस्वरूप होकर पराशक्तिका पूजन करे। शक्ति, वेर (मूर्ति) तथा लिंगका चित्र बनाकर अथवा मिट्ठी आदिसे इनकी आकृतिका निर्माण करके प्राणप्रतिष्ठापूर्वक निष्कपट भावसे इनका पूजन करे ॥ १३५-१३६ ॥

शिवलिङ्गं शिवं मत्वा स्वात्मानं शक्तिरूपकम् ।
शक्तिलिङ्गं च देवीं च मत्वा स्वं शिवरूपकम् ॥ १३७

शिवलिङ्गं नादरूपं बिन्दुरूपं सशक्तिकम् ।
उपप्रधानभावेन अन्योन्यासक्तलिङ्गकम् ॥ १३८

पूजयेच्च शिवं शक्तिं स शिवो मूलभावनात् ।
शिवभक्ताज्ञिष्ठमन्त्ररूपकाज्ञिष्ठरूपकान् ॥ १३९

षोडशैरूपचारैश्च पूजयेदिष्टमानुयात् ।
येन शुश्रूषणाद्यैश्च शिवभक्तस्य लिङ्गिनः ॥ १४०

आनन्दं जनयेद्विद्वाज्ञिष्ठः प्रीततरो भवेत् ।
शिवभक्तान्सपलीकान्पत्या सह सदैव तत् ॥ १४१

पूजयेद्वोजनाद्यैश्च पञ्च वा दश वा शतम् ।
धने देहे च मन्त्रे च भावनायामवञ्चकः ॥ १४२

शिवशक्तिस्वरूपेण न पुनर्जायते भुवि ।

नाभेरथो ब्रह्मभागमाकण्ठं विष्णुभागकम् ॥ १४३

मुखं लिङ्गमिति प्रोक्तं शिवभक्तशरीरकम् ।
मृतान्दाहादियुक्तान्वा दाहादिरहितान्मृतान् ॥ १४४

उद्दिश्य पूजयेदादिपितरं शिवमेव हि ।
पूजां कृत्वादिमातुश्च शिवभक्तांश्च पूजयेत् ॥ १४५

पितृलोकं समासाद्य क्रमान्मुक्तो भवेन्मृतः ।
क्रियायुक्तदशभ्यश्च तपोयुक्तो विशिष्यते ॥ १४६

तपोयुक्तशतेभ्यश्च जपयुक्तो विशिष्यते ।
जपयुक्तसहस्रेभ्यः शिवज्ञानी विशिष्यते ॥ १४७

शिवज्ञानिषु लक्षेषु ध्यानयुक्तो विशिष्यते ।
ध्यानयुक्तेषु कोटिभ्यः समाधिस्थो विशिष्यते ॥ १४८

शिवलिंगको शिव मानकर अपनेको शक्तिरूप समझकर, शक्तिलिंगको देवी और अपनेको शिवरूप समझकर शिवलिंगको नादरूप तथा शक्तिको बिन्दुरूप मानकर परस्पर सटे हुए शक्तिलिंग और शिवलिंगके प्रति उपप्रधान और प्रधानकी भावना रखते हुए जो शिव और शक्तिका पूजन करता है, वह मूलरूपी भावना करनेके कारण शिवरूप ही है । शिवभक्त शिवमन्त्ररूप होनेके कारण शिवके ही स्वरूप हैं ॥ १३७—१३९ ॥

जो सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करता है, उसे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है । जो शिवलिंगोपासक शिवभक्तकी सेवा आदि करके उसे आनन्द प्रदान करता है, उस विद्वान् पर भगवान् शिव बड़े प्रसन्न होते हैं । पाँच, दस या सौ सपलीक शिवभक्तोंको बुलाकर भोजन आदिके द्वारा पलीसहित उनका सदैव समादर करे । धनमें, देहमें और मन्त्रमें शिवभावना रखते हुए उन्हें शिव और शक्तिका स्वरूप जानकर निष्कपटभावसे उनकी पूजा करे । ऐसा करनेवाला पुरुष शिवशक्तिस्वरूप होकर इस भूतलपर फिर जन्म नहीं लेता है ॥ १४०—१४२ ॥

शिवभक्तकी नाभिके नीचेका भाग ब्रह्मभाग तथा नाभिसे ऊपर कण्ठपर्यन्त तकका भाग विष्णुभाग और मुख शिवलिंगस्वरूप कहा गया है । मृत्युके पश्चात् (जिनका) दाहादि संस्कार हुआ हो अथवा जो दाहादि संस्कारसे रहित हों, उन पितरोंके उद्देश्यसे शिवको ही आदिपितर मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये । पुनः आदिमाता शिवकी शक्तिकी पूजाकर शिवभक्तोंका पूजन करना चाहिये । ऐसा करनेवाला पुरुष मरनेके पश्चात् क्रमशः पितृलोकको प्राप्त करता है । तदनन्तर उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है । दस क्रियावान् पुरुषोंसे युक्त योगियोंकी अपेक्षा एक तपोयुक्त प्राणी श्रेष्ठ है ॥ १४३—१४६ ॥

सौ तपोयुक्तों (तपस्वियों)-की अपेक्षा एक जपयुक्त जापक विशिष्ट है । सहस्र जपयुक्त जापकोंकी अपेक्षा एक शिवज्ञानीका विशेष महत्व है ॥ १४७ ॥

एक लाख शिवज्ञानियोंसे शिवका ध्यान करनेवाला एक ध्यानी श्रेष्ठ है और करोड़ ध्यानियोंकी अपेक्षा शिवके लिये एक समाधिस्थ श्रेष्ठ है ॥ १४८ ॥

उत्तरोत्तरवैशिष्ठ्यात्पूजायामुत्तरोत्तरम् ।
 फलं वैशिष्ठ्यरूपं च दुर्विज्ञेयं मनीषिभिः ॥ १४९
 तस्माद्वै शिवभक्तस्य माहात्म्यं वेत्ति को नरः ।
 शिवशक्त्योः पूजनं च शिवभक्तस्य पूजनम् ॥ १५०
 कुरुते यो नरो भक्त्या स शिवः शिवमेधते ।
 य इमं पठतेऽध्यायमर्थवद्वेदसम्मतम् ॥ १५१
 शिवज्ञानी भवेद्विप्रः शिवेन सह मोदते ।
 श्रावयेच्छिवभक्तांश्च विशेषज्ञो मुनीश्वराः ॥ १५२

शिवप्रसादसिद्धिः स्याच्छिवस्य कृपया बुधाः ॥ १५३
 इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां प्रणवपञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥
 ॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें प्रणवयुक्त पञ्चाक्षर मन्त्रका
 माहात्म्य-वर्णन नामक सब्रह्माँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

इस प्रकार उत्तरोत्तर वैशिष्ठ्य-क्रमसे की जानेवाली पूजासे प्राप्त फलमें भी विशिष्टता आ जाती है, जिसको जानना विद्वानोंके लिये भी कठिन है। इस कारणसे शिवभक्तकी महिमाको कौन मनुष्य जान सकता है। जो मनुष्य शिवशक्ति और शिवभक्तकी पूजा भक्तिपूर्वक करता है, वह शिवस्वरूप होकर सदैव कल्याणको प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण इस वेदसम्मत अध्यायको अर्थसहित पढ़ता है, वह शिवज्ञानी होकर शिवके साथ आनन्द प्राप्त करता है। हे मुनीश्वरो! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि यह अध्याय वह शिवभक्तोंको सुनाये ॥ १४९—१५२ ॥

हे बुधजनो! ऐसा करनेसे भगवान् शिवकी कृपासे उनका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है ॥ १५३ ॥

कृपासे उनका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है ॥ १५३ ॥
 ॥ १७ ॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

बन्धन और मोक्षका विवेचन, शिवपूजाका उपदेश, लिंग आदिमें शिवपूजनका विधान, भस्मके स्वरूपका निरूपण और महत्त्व, शिवके भस्मधारणका रहस्य, शिव एवं गुरु शब्दकी व्युत्पत्ति तथा विघ्नशान्तिके उपाय और शिवधर्मका निरूपण

ऋषय ऊचुः

बन्धमोक्षस्वरूपं हि ब्रूहि सर्वार्थविज्ञम् ।
 सूत उवाच
 बन्धं मोक्षं तथोपायं वक्ष्येऽहं शृणुतादरात् ॥ १

प्रकृत्याद्यष्टबन्धेन बद्धो जीवः स उच्यते ।
 प्रकृत्याद्यष्टबन्धेन निर्मुक्तो मुक्त उच्यते ॥ २

प्रकृत्यादिवशीकारो मोक्ष इत्युच्यते स्वतः ।
 बद्धजीवस्तु निर्मुक्तो मुक्तजीवः स कथ्यते ॥ ३

प्रकृत्यग्रे ततो बुद्धिरहङ्कारो गुणात्मकः ।
 पञ्चतन्मात्रमित्येतत्प्रकृत्याद्यष्टकं विदुः ॥ ४

ऋषिगण बोले—हे सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ! बन्धन और मोक्षका स्वरूप क्या है? यह हमें बताइये ॥ १/२ ॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] मैं बन्धन और मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षके उपायका वर्णन करूँगा। आपलोग आदरपूर्वक सुनें। जो प्रकृति आदि आठ बन्धनोंसे बँधा हुआ है, वह जीव बद्ध कहलाता है और जो उन आठों बन्धनोंसे छूटा हुआ है, उसे मुक्त कहते हैं। प्रकृति आदिको वशमें कर लेना मोक्ष कहलाता है। बन्धन आगन्तुक है और मोक्ष स्वतःसिद्ध है। बद्ध जीव जब बन्धनसे मुक्त हो जाता है, तब उसे मुक्त जीव कहते हैं ॥ १—३ ॥

प्रकृति, बुद्धि (महत्त्व), त्रिगुणात्मक अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ—इन्हें ज्ञानी पुरुष प्रकृत्याद्यष्टक मानते हैं। प्रकृति आदि आठ तत्त्वोंके समूहसे देहकी

प्रकृत्याद्यष्टजो देहो देहजं कर्म उच्यते ।
पुनश्च कर्मजो देहो जन्म कर्म पुनः पुनः ॥ ५

शरीरं त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं च कारणम् ।
स्थूलं व्यापारदं प्रोक्तं सूक्ष्ममिन्द्रियभोगदम् ॥ ६
कारणं त्वात्प्रभोगार्थं जीवकर्मानुरूपतः ।
सुखं दुःखं पुण्यपापैः कर्मभिः फलमशनुते ॥ ७
तस्माद्विकर्मरज्ज्वा हि बद्धो जीवः पुनः पुनः ।
शरीरत्रयकर्मभ्यां चक्रवद् भ्राम्यते सदा ॥ ८

उत्पत्ति हुई है। देहसे कर्म उत्पन्न होता है और फिर कर्मसे नूतन देहकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार बार-बार जन्म और कर्म होते रहते हैं ॥ ४-५ ॥

शरीरको स्थूल, सूक्ष्म और कारणके भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिये। स्थूल शरीर (जाग्रत्-अवस्थामें) व्यापार करानेवाला, सूक्ष्म शरीर (जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थाओंमें) इन्द्रिय-भोग प्रदान करनेवाला तथा कारणशरीर (सुषुप्तावस्थामें) आत्मानन्दकी अनुभूति करानेवाला कहा गया है। जीवको उसके प्रारब्ध-कर्मानुसार सुख-दुःख प्राप्त होते हैं। वह अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप सुख और पापकर्मोंके फलस्वरूप दुःख प्राप्त करता है। अतः कर्मपाशसे बँधा हुआ जीव अपने त्रिविध शरीरसे होनेवाले शुभाशुभ कर्मोंद्वारा सदा चक्रकी भाँति बार-बार घुमाया जाता है ॥ ६—८ ॥

इस चक्रवत् भ्रमणकी निवृत्तिके लिये चक्रकर्ताका स्तवन एवं आराधन करना चाहिये। प्रकृति आदि जो आठ पाश बतलाये गये हैं, उनका समुदाय ही महाचक्र है और जो प्रकृतिसे परे हैं, वे परमात्मा शिव हैं। भगवान् महेश्वर ही प्रकृति आदि महाचक्रके कर्ता हैं; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे हैं। जैसे बकायन नामक वृक्षका थाला जलको पीता और उगलता है, उसी प्रकार शिव प्रकृति आदिको अपने वशमें करके उसपर शासन करते हैं। उन्होंने सबको वशमें कर लिया है, इसीलिये वे शिव कहे गये हैं। शिव ही सर्वज्ञ, परिपूर्ण तथा निःस्पृह हैं ॥ ९—११ ॥

सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्ति आदिसे संयुक्त होना और अपने भीतर अनन्त शक्तियोंको धारण करना—महेश्वरके इन छः प्रकारके मानसिक ऐश्वर्योंको केवल वेद जानता है। अतः भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही प्रकृति आदि आठों तत्त्व वशमें होते हैं। भगवान् शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये उन्हींका पूजन करना चाहिये ॥ १२-१३ ॥

शिव तो परिपूर्ण हैं, निःस्पृह हैं; उनकी पूजा कैसे हो सकती है? [इसका उत्तर यह है कि] भगवान् शिवके उद्देश्यसे—उनकी प्रसन्नताके लिये किया हुआ

चक्रभ्रमनिवृत्यर्थं चक्रकर्तारमीडयेत् ।
प्रकृत्यादिमहाचक्रं प्रकृतेः परतः शिवः ॥ ९
चक्रकर्ता महेशो हि प्रकृतेः परतो यतः ।
पिबति वाथ वमति जीवाबालो जलं यथा ॥ १०
शिवस्तथा प्रकृत्यादि वशीकृत्याधितिष्ठति ।
सर्वं वशीकृतं यस्मात्तस्माच्छ्व इति स्मृतः ।
शिव एव हि सर्वज्ञः परिपूर्णश्च निःस्पृहः ॥ ११

सर्वज्ञता	तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता	नित्यमलुप्तशक्तिः ।
अनन्तशक्तिश्च	महेश्वरस्य
यस्मानसैश्वर्यमवैति	वेदः ॥ १२

अतः शिवप्रसादेन प्रकृत्यादि वशं भवेत् ।
शिवप्रसादलाभार्थं शिवमेव प्रपूजयेत् ॥ १३

निःस्पृहस्य च पूर्णस्य तस्य पूजा कथं भवेत् ।
शिवोद्देशकृतं कर्म प्रसादजनकं भवेत् ॥ १४

लिङ्गे वेरे भक्तजने शिवमुद्दिश्य पूजयेत् ।
कायेन मनसा वाचा धनेनापि प्रपूजयेत् ॥ १५
पूजया तु महेशो हि प्रकृतेः परमः शिवः ।
प्रसादं कुरुते सत्यं पूजकस्य विशेषतः ॥ १६

शिवप्रसादात्कर्माद्यं क्रमेण स्ववशं भवेत् ।
कर्मारभ्य प्रकृत्यन्तं यदा सर्वं वशं भवेत् ॥ १७
तदा मुक्त इति प्रोक्तः स्वात्मारामो विराजते ।
प्रसादात्परमेशस्य कर्मदेहो यदा वशः ॥ १८
तदा वै शिवलोके तु वासः सालोक्यमुच्यते ।
सामीप्यं याति साम्बस्य तन्मात्रे च वशं गते ॥ १९
तदा तु शिवसायुज्यमायुधाद्यैः क्रियादिभिः ।
महाप्रसादलाभे च बुद्धिश्चापि वशा भवेत् ॥ २०
बुद्धिस्तु कार्यं प्रकृतेस्तत्सार्थिरिति कथ्यते ।
पुनर्महाप्रसादेन प्रकृतिर्वशमेष्यति ॥ २१

शिवस्य मानसैश्वर्यं तदाऽयत्नं भविष्यति ।
सार्वज्ञाद्यं शिवैश्वर्यं लब्ध्वा स्वात्मनि राजते ॥ २२

तत्सायुज्यमिति प्राहुर्वेदागमपरायणाः ।
एवं क्रमेण मुक्तिः स्यालिङ्गादौ पूजया स्वतः ॥ २३

अतः शिवप्रसादार्थं क्रियाद्यैः पूजयेच्छिवम् ।
शिवक्रिया शिवतपः शिवमन्त्रजपः सदा ॥ २४

शिवज्ञानं शिवध्यानमुत्तरोत्तरमभ्यसेत् ।
आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वै शिवचिन्तया ॥ २५

सद्यादिभिश्च कुसुमैर्चर्चयेच्छिवमेष्यति ।

सत्कर्म उनके कृपाप्रसादको प्राप्त करानेवाला होता है। शिवलिंगमें, शिवकी प्रतिमामें तथा शिवभक्तजनोंमें शिवकी भावना करके उनकी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। वह पूजन शरीरसे, मनसे, वाणीसे और धनसे भी किया जा सकता है। उस पूजासे प्रकृतिसे परे महेश्वर पूजकपर विशेष कृपा करते हैं; यह सत्य है ॥ १४—१६ ॥

शिवकी कृपासे कर्म आदि सभी बन्धन अपने वशमें हो जाते हैं। कर्मसे लेकर प्रकृतिपर्यन्त सब कुछ जब वशमें हो जाता है, तब वह जीव मुक्त कहलाता है और स्वात्मारामरूपसे विराजमान होता है। परमेश्वर शिवकी कृपासे जब कर्मजनित शरीर अपने वशमें हो जाता है, तब भगवान् शिवके लोकमें निवास प्राप्त होता है; इसीको सालोक्यमुक्ति कहते हैं। जब तन्मात्राएँ वशमें हो जाती हैं, तब जीव जगद्म्बासहित शिवका सामीप्य प्राप्त कर लेता है। यह सामीप्यमुक्ति है, उसके आयुध आदि और क्रिया आदि सब कुछ भगवान् शिवके समान हो जाते हैं। भगवान्का महाप्रसाद प्राप्त होनेपर बुद्धि भी वशमें हो जाती है। बुद्धि प्रकृतिका कार्य है। उसका वशमें होना सार्थिमुक्ति कही गयी है। पुनः भगवान्का महान् अनुग्रह प्राप्त होनेपर प्रकृति वशमें हो जायगी ॥ १७—२१ ॥

उस समय भगवान् शिवका मानसिक ऐश्वर्य बिना यत्नके ही प्राप्त हो जायगा। सर्वज्ञता आदि जो शिवके ऐश्वर्य हैं, उन्हें पाकर मुक्त पुरुष अपनी आत्मामें ही विराजमान होता है। वेद और शास्त्रोंमें विश्वास रखनेवाले विद्वान् पुरुष इसीको सायुज्यमुक्ति कहते हैं। इस प्रकार लिंग आदिमें शिवकी पूजा करनेसे क्रमशः मुक्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है। इसलिये शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये तत्सम्बन्धी क्रिया आदिके द्वारा उन्हींका पूजन करना चाहिये। शिवक्रिया, शिवतप, शिवमन्त्र-जप, शिवज्ञान और शिवध्यानके लिये सदा उत्तरोत्तर अभ्यास बढ़ाना चाहिये। प्रतिदिन प्रातःकालसे रातको सोते समयतक और जन्मकालसे लेकर मृत्युपर्यन्त सारा समय भगवान् शिवके चिन्तनमें ही बिताना चाहिये। सद्योजातादि मन्त्रों तथा नाना प्रकारके पुष्टोंसे जो शिवकी पूजा करता है, वह शिवको ही प्राप्त होगा ॥ २२—२५ ॥

ऋषय ऊचुः

लिङ्गादौ शिवपूजाया विधानं ब्रूहि सुव्रत ॥ २६
सूत उवाच

लिङ्गानां च क्रमं वक्ष्ये यथावच्छृणुत द्विजाः ।
तदेव लिङ्गं प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम् ॥ २७

सूक्ष्मप्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम् ।
स्थूललिङ्गं हि सकलं तत्पञ्चाक्षरमुच्यते ॥ २८

तयोः पूजा तपः प्रोक्तं साक्षात्मोक्षप्रदे उभे ।
पौरुषप्रकृतिभूतानि लिङ्गानि सुबहूनि च ॥ २९
तानि विस्तरतो वक्तुं शिवो वेत्ति न चापरः ।
भूविकाराणि लिङ्गानि ज्ञातानि प्रब्रवीमि वः ॥ ३०

स्वयम्भूलिङ्गं प्रथमं बिन्दुलिङ्गं द्वितीयकम् ।
प्रतिष्ठितं चरं चैव गुरुलिङ्गं तु पञ्चमम् ॥ ३१
देवर्षितपसा तुष्टः सानिध्यार्थं तु तत्र वै ।
पृथिव्यन्तर्गतः शर्वो बीजं वै नादरूपतः ॥ ३२
स्थावराङ्गुरवद्धमिमुद्दिद्य व्यक्त एव सः ।
स्वयम्भूतं जातमिति स्वयम्भूरिति तं विदुः ॥ ३३

तलिङ्गपूजया ज्ञानं स्वयमेव प्रवर्धते ।
सुवर्णरजतादौ वा पृथिव्यां स्थणिडलेऽपि वा ॥ ३४

स्वहस्तालिलिखितं लिङ्गं शुद्धप्रणवमन्त्रकम् ।
यन्त्रलिङ्गं समालिख्य प्रतिष्ठावाहनं चरेत् ॥ ३५

बिन्दुनादमयं लिङ्गं स्थावरं जडमं च यत् ।
भावनामयमेतद्धि शिवदृष्टं न संशयः ॥ ३६

यत्र विश्वस्यते शम्भुस्तत्र तस्मै फलप्रदः ।
स्वहस्तालिलिखिते यन्त्रे स्थावरादावकृत्रिमे ॥ ३७

आवाह्य पूजयेच्छम्भुं घोडशैरुपचारकैः ।
स्वयमैश्वर्यमाजोति ज्ञानमध्यासतो भवेत् ॥ ३८

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत! अब आप लिंग आदिमें शिवजीकी पूजाका विधान बताइये ॥ २६ ॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! मैं लिंगोंके क्रमका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सुनिये। वह प्रणव ही समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला प्रथम लिंग है। उसे सूक्ष्म प्रणवरूप समझिये। सूक्ष्मलिंग निष्कल होता है और स्थूललिंग सकल। पंचाक्षर मन्त्रको ही स्थूललिंग कहते हैं। उन दोनों प्रकारके लिंगोंका पूजन तप कहलाता है। वे दोनों ही लिंग साक्षात् मोक्ष देनेवाले हैं। पौरुषलिंग और प्रकृतिलिंगके रूपमें बहुत-से लिंग हैं। उन्हें भगवान् शिव ही विस्तारपूर्वक बता सकते हैं; दूसरा कोई नहीं जानता। पृथ्वीके विकारभूत जो-जो लिंग ज्ञात हैं, उन-उनको मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ ॥ २७—३० ॥

उनमें प्रथम स्वयम्भूलिंग, दूसरा बिन्दुलिंग, तीसरा प्रतिष्ठित लिंग, चौथा चरलिंग और पाँचवाँ गुरुलिंग है। देवर्षियोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उनके समीप प्रकट होनेके लिये पृथ्वीके अन्तर्गत बीजरूपसे व्याप्त हुए भगवान् शिव वृक्षोंके अंकुरकी भाँति भूमिको भेदकर नादलिंग रूपमें व्याप्त हो जाते हैं। वे स्वतः व्यक्त हुए शिव ही स्वयं प्रकट होनेके कारण स्वयम्भू नाम धारण करते हैं। ज्ञानीजन उन्हें स्वयम्भूलिंगके रूपमें जानते हैं ॥ ३१—३३ ॥

उस स्वयम्भूलिंगकी पूजासे उपासकका ज्ञान स्वयं ही बढ़ने लगता है। सोने-चाँदी आदिके पत्रपर, भूमिपर अथवा वेदीपर अपने हाथसे लिखित जो शुद्ध प्रणव मन्त्ररूप लिंग है, उसमें तथा यन्त्रलिंगका आलेखन करके उसमें भगवान् शिवकी प्रतिष्ठा और आवाहन करे। ऐसा बिन्दुनादमय लिंग स्थावर और जंगम दोनों ही प्रकारका होता है। इसमें शिवका दर्शन भावनामय ही है; इसमें सन्देह नहीं है। जिसको जहाँ भगवान् शंकरके प्रकट होनेका विश्वास हो, उसके लिये वहीं प्रकट होकर वे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। अपने हाथसे लिखे हुए यन्त्रमें अथवा अकृत्रिम स्थावर आदिमें भगवान् शिवका आवाहन करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेसे साधक स्वयं ही ऐश्वर्यको प्राप्त कर लेता है और इस साधनके अभ्याससे उसको ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है ॥ ३४—३८ ॥

देवैश्च ऋषिभिश्चापि स्वात्मसिद्ध्यर्थमेव हि ।
समन्वेणात्महस्तेन कृतं यच्छुद्धमण्डले ॥ ३९
शुद्धभावनया चैव स्थापितं लिङ्गमुत्तम् ।
तल्लिङ्गं पौरुषं प्राहुस्तत्प्रतिष्ठितमुच्यते ॥ ४०
तल्लिङ्गपूजया नित्यं पौरुषैश्वर्यमाज्ञयात् ।
महद्विब्राह्मणैश्चापि राजभिश्च महाधनैः ॥ ४१
शिल्पिना कल्पितं लिङ्गं मन्त्रेण स्थापितं च यत् ।
प्रतिष्ठितं प्राकृतं हि प्राकृतैश्वर्यभोगदम् ॥ ४२
यदूर्जितं च नित्यं च तद्धि पौरुषमुच्यते ।
यद दुर्बलमनित्यं च तद्धि प्राकृतमुच्यते ॥ ४३

लिङ्गं नाभिस्तथा जिह्वा नासाग्रं च शिखा क्रमात् ।
कठ्यादिषु त्रिलोकेषु लिङ्गमाध्यात्मिकं चरम् ॥ ४४
पर्वतं पौरुषं प्रोक्तं भूतलं प्राकृतं विदुः ।
वृक्षादि पौरुषं ज्ञेयं गुल्मादि प्राकृतं विदुः ॥ ४५
षष्ठिकं प्राकृतं ज्ञेयं शालिगोधूमपौरुषम् ।
ऐश्वर्यं पौरुषं विद्यादणिमाद्यष्टसिद्धिदम् ॥ ४६
सुस्त्रीधनादिविषयं प्राकृतं प्राहुरास्तिकाः ।

प्रथमं चरलिङ्गेषु रसलिङ्गं प्रकथ्यते ॥ ४७
रसलिङ्गं ब्राह्मणानां सर्वाभीष्टप्रदं भवेत् ।
बाणलिङ्गं क्षत्रियाणां महाराज्यप्रदं शुभम् ॥ ४८
स्वर्णलिङ्गं तु वैश्यानां महाधनपतित्वदम् ।
शिलालिङ्गं तु शूद्राणां महाशुद्धिकरं शुभम् ॥ ४९
स्फटिकं बाणलिङ्गं च सर्वेषां सर्वकामदम् ।
स्वीयाभावेऽन्यदीयं तु पूजायां न निषिद्ध्यते ॥ ५०
स्त्रीणां तु पार्थिवं लिङ्गं सर्वतृणां विशेषतः ।

देवताओं और ऋषियोंने आत्मसिद्धिके लिये अपने हाथसे वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक शुद्ध मण्डलमें शुद्ध भावनाद्वारा जिस उत्तम शिवलिंगकी स्थापना की है, उसे पौरुषलिंग कहते हैं तथा वही प्रतिष्ठित लिंग कहलाता है। उस लिंगकी पूजा करनेसे सदा पौरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। महान् ब्राह्मणों और महाधनी राजाओंद्वारा किसी शिल्पीसे शिवलिंगका निर्माण कराकर मन्त्रपूर्वक जिस लिंगकी स्थापना तथा प्रतिष्ठा की गयी हो, वह प्राकृतलिंग है, वह [शिवलिंग] प्राकृत ऐश्वर्य-भोगको देनेवाला होता है। जो शक्तिशाली और नित्य होता है, उसे पौरुषलिंग कहते हैं और जो दुर्बल तथा अनित्य होता है, वह प्राकृतलिंग कहलाता है ॥ ३९—४३ ॥

लिंग, नाभि, जिह्वा, नासिकाका अग्र भाग और शिखाके क्रमसे कटि, हृदय और मस्तक तीनों स्थानोंमें जो लिंगकी भावना की गयी है, उस आध्यात्मिक लिंगको ही चरलिंग कहते हैं। पर्वतको पौरुषलिंग बताया गया है और भूतलको विद्वान् पुरुष प्राकृतलिंग मानते हैं। वृक्ष आदिको पौरुषलिंग जानना चाहिये। गुल्म आदिको प्राकृतलिंग कहा गया है। साठी नामक धान्यको प्राकृतलिंग समझना चाहिये और शालि (अगहनी) एवं गेहूँको पौरुषलिंग। अणिमा आदि आठों सिद्धियोंको देनेवाला जो ऐश्वर्य है, उसे पौरुष ऐश्वर्य जानना चाहिये। सुन्दर स्त्री तथा धन आदि विषयोंको आस्तिक पुरुष प्राकृत ऐश्वर्य कहते हैं ॥ ४४—४६ १/२ ॥

चरलिंगोंमें सबसे प्रथम रसलिंगका वर्णन किया जाता है। रसलिंग ब्राह्मणोंको उनकी सारी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। शुभकारक बाणलिंग क्षत्रियोंको महान् राज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। सुवर्णलिंग वैश्योंको महाधनपतिका पद प्रदान करानेवाला है तथा सुन्दर शिलालिंग शूद्रोंको महाशुद्धि देनेवाला है। स्फटिकलिंग तथा बाणलिंग सब लोगोंको उनकी समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। अपना न हो तो दूसरेका स्फटिक या बाणलिंग भी पूजाके लिये निषिद्ध नहीं है। स्त्रियों, विशेषतः सधवाओंके लिये

विधवानां प्रवृत्तानां स्फटिकं परिकीर्तितम् ॥ ५१

विधवानां निवृत्तानां रसलिङ्गं विशिष्यते ।
बाल्ये वा यौवने वापि वार्धके वापि सुव्रताः ॥ ५२

शुद्धस्फटिकलिङ्गं तु स्त्रीणां तत्सर्वभोगदम् ।
प्रवृत्तानां पीठपूजा सर्वाभीष्टप्रदा भुवि ॥ ५३

पात्रेणैव प्रवृत्तस्तु सर्वपूजां समाचरेत् ।
नैवेद्यं चाभिषेकान्ते शाल्यन्नेन समाचरेत् ॥ ५४

पूजान्ते स्थापयेलिङ्गं सम्पुटेषु पृथग्गृहे ।
करपूजानिवृत्तानां स्वभोज्यं तु निवेदयेत् ॥ ५५

निवृत्तानां परं सूक्ष्मं लिङ्गमेव विशिष्यते ।
विभूत्यश्चर्चनं कुर्याद्द्विभूतिं च निवेदयेत् ॥ ५६

पूजां कृत्वाथ तल्लिङ्गं शिरसा धारयेत्सदा ।

विभूतिस्त्रिविधा प्रोक्ता लोकवेदशिवाग्निभिः ॥ ५७

लोकाग्निजमथो भस्म द्रव्यशुद्ध्यर्थमावहेत् ।
मृद्घरुलोहरूपाणां धान्यानां च तथैव च ॥ ५८

तिलादीनां च द्रव्याणां वस्त्रादीनां तथैव च ।
तथा पर्युषितानां च भस्मना शुद्धिरिष्यते ॥ ५९

श्वादिभिर्दूषितानां च भस्मना शुद्धिरिष्यते ।
सजलं निर्जलं भस्म यथायोग्यं तु योजयेत् ॥ ६०

वेदाग्निजं तथा भस्म तत्कर्मन्तेषु धारयेत् ।
मन्त्रेण क्रियया जन्यं कर्माग्नौ भस्मरूपधृक् ॥ ६१

तद्दस्मधारणात्कर्म स्वात्मन्यारोपितं भवेत् ।
अधोरेणात्ममन्त्रेण बिल्वकाष्ठं प्रदाहयेत् ॥ ६२

शिवाग्निरिति सम्प्रोक्तस्तेन दर्थं शिवाग्निजम् ।

पार्थिवलिंगकी पूजाका विधान है । प्रवृत्तिमार्गमें स्थित विधवाओंके लिये स्फटिकलिंगकी पूजा बतायी गयी है । परंतु विरक्त विधवाओंके लिये रसलिंगकी पूजाको ही श्रेष्ठ कहा गया है । हे सुव्रतो ! बचपनमें, युवावस्थामें और बुढ़ापेमें भी शुद्ध स्फटिकमय शिवलिंगका पूजन स्त्रियोंको समस्त भोग प्रदान करनेवाला है । गृहासक्त स्त्रियोंके लिये पीठपूजा भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाली है ॥ ४७—५३ ॥

प्रवृत्तिमार्गमें चलनेवाला पुरुष सुपात्र गुरुके सहयोगसे ही समस्त पूजाकर्म सम्पन्न करे । इष्टदेवका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनीके चावलसे बने हुए [खीर आदि पकवानोंद्वारा] नैवेद्य अर्पण करे । पूजाके अन्तमें शिवलिंगको पधारकर घरके भीतर पृथक् सम्पुटमें स्थापित करे । जो निवृत्तिमार्गी पुरुष हैं, उनके लिये हाथपर ही शिवलिंग-पूजाका विधान है । उन्हें भिक्षादिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित करना चाहिये । निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्मलिंग ही श्रेष्ठ बताया जाता है । वे विभूतिके द्वारा पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें । पूजा करके उस लिंगको सदा अपने मस्तकपर धारण करें ॥ ५४—५६ ॥

विभूति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—
लोकाग्निजनित, वेदाग्निजनित और शिवाग्निजनित ।
लोकाग्निजनित या लौकिक भस्मको द्रव्योंकी शुद्धिके लिये लाकर रखे । मिट्टी, लकड़ी और लोहेके पात्रोंकी, धान्योंकी, तिल आदि द्रव्योंकी, वस्त्र आदिकी तथा पर्युषित वस्तुओंकी शुद्धि भस्मसे होती है । कुत्ते आदिसे दूषित हुए पात्रोंकी भी शुद्धि भस्मसे ही मानी गयी है । वस्तु-विशेषकी शुद्धिके लिये यथायोग्य सजल अथवा निर्जल भस्मका उपयोग करना चाहिये ॥ ५७—६० ॥

वेदाग्निजनित जो भस्म है, उसको उन-उन वैदिक कर्मोंके अन्तमें धारण करना चाहिये । मन्त्र और क्रियासे जनित जो होमकर्म है, वह अग्निमें भस्मका रूप धारण करता है । उस भस्मको धारण करनेसे वह कर्म आत्मामें आरोपित हो जाता है । अघोर-मूर्तिधारी शिवका जो अपना मन्त्र है, उसे पढ़कर बेलकी लकड़ीको जलाये । उस मन्त्रसे अभिमन्त्रित अग्निको शिवाग्नि कहा गया

कपिलागोमयं पूर्वं केवलं गव्यमेव वा ॥ ६३
 शम्यश्वत्थपलाशान्वा वटारगवधबिल्वकान् ।
 शिवाग्निना दहेच्छुद्धं तद्वै भस्म शिवाग्निजम् ॥ ६४
 दर्भाग्नौ वा दहेत्काष्ठं शिवमन्तं समुच्चरन् ।
 सम्यक्संशोध्य वस्त्रेण नवकुम्भे निधापयेत् ॥ ६५
 दीप्त्यर्थं तत्तु सङ्ग्राहां मन्यते पूज्यतेऽपि च ।

भस्मशब्दार्थं एवं हि शिवः पूर्वं तथाकरोत् ॥ ६६
 यथा स्वविषये राजा सारं गृह्णाति यत्करम् ।
 यथा मनुष्याः सम्यादीन्दगध्वा सारं भजन्ति वै ॥ ६७
 यथा हि जाठराग्निश्च भक्ष्यादीन्विविधान्बहून् ।
 दग्ध्वा सारतरं सारात्स्वदेहं परिपुष्यति ॥ ६८
 तथा प्रपञ्चकर्तापि स शिवः परमेश्वरः ।
 स्वाधिष्ठेयप्रपञ्चस्य दग्ध्वा सारं गृहीतवान् ॥ ६९
 दग्ध्वा प्रपञ्चं तद्वस्म स्वात्मन्यारोपयेच्छिवः ।
 उद्धूलनस्य व्याजेन जगत्सारं गृहीतवान् ॥ ७०

स्वरतं स्थापयामास स्वकीये हि शरीरके ।
 केशमाकाशसारेण वायुसारेण वै मुखम् ॥ ७१
 हृदयं चाग्निसारेण त्वपां सारेण वै कटिम् ।
 जानुं चावनिसारेण तद्वत्सर्वं तदङ्गकम् ॥ ७२

ब्रह्मविष्वोश्च रुद्राणां सारं चैव त्रिपुण्ड्रकम् ।
 तथा तिलकरूपेण ललाटान्ते महेश्वरः ॥ ७३
 भूवृद्ध्या सर्वमेतद्विद्धि मन्यते स्वयमित्यसौ ।
 प्रपञ्चसारसर्वस्वमनेनैव वशीकृतम् ॥ ७४

है। उसके द्वारा जले हुए काष्ठका जो भस्म है, वह शिवाग्निजनित है। कपिला गायके गोबर अथवा गायमात्रके गोबरको तथा शमी, पीपल, पलाश, बट, अमलतास और बिल्व—इनकी लकड़ियोंको शिवाग्निसे जलाये। वह शुद्ध भस्म शिवाग्निजनित माना गया है अथवा कुशकी अग्निमें शिवमन्तके उच्चारणपूर्वक काष्ठको जलाये। फिर उस भस्मको कपड़ेसे अच्छी तरह छानकर नये घड़ेमें भरकर रख दे। उसे समय-समयपर अपनी कान्ति या शोभाकी वृद्धिके लिये धारण करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्मानित एवं पूजित होता है ॥ ६१—६५१/२ ॥

पूर्वकालमें भगवान् शिवने भस्म शब्दका ऐसा ही अर्थ प्रकट किया था। जैसे राजा अपने राज्यमें सारभूत करको ग्रहण करता है, जैसे मनुष्य सस्य आदिको जलाकर (पकाकर) उसका सार ग्रहण करते हैं तथा जैसे जठरानल नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंको भारी मात्रामें ग्रहण करके उसे जलाकर सारतर वस्तु ग्रहण करता और उस सारतर वस्तुसे स्वदेहका पोषण करता है, उसी प्रकार प्रपञ्चकर्ता परमेश्वर शिवने भी अपनेमें आधेय रूपसे विद्यमान प्रपञ्चको जलाकर भस्मरूपसे उसके सारतत्त्वको ग्रहण किया है। प्रपञ्चको दग्ध करके शिवने उसके भस्मको अपने शरीरमें लगाया है। उन्होंने विभूति (भस्म) पोतनेके बहाने जगत्के सारको ही ग्रहण किया है ॥ ६६—७० ॥

शिवने अपने शरीरमें अपने लिये रत्नस्वरूप भस्मको इस प्रकार स्थापित किया है—आकाशके सारतत्त्वसे केश, वायुके सारतत्त्वसे मुख, अग्निके सारतत्त्वसे हृदय, जलके सारतत्त्वसे कटिभाग और पृथ्वीके सारतत्त्वसे घुटनेको धारण किया है। इसी तरह उनके सारे अंग विभिन्न वस्तुओंके साररूप हैं ॥ ७१-७२ ॥

महेश्वरने अपने ललाटके मध्यमें तिलकरूपसे जो त्रिपुण्ड्र धारण किया है, वह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका सारतत्त्व है। वे इन सब वस्तुओंको जगत्के अभ्युदयका हेतु मानते हैं। इन भगवान् शिवने ही प्रपञ्चके सार-सर्वस्वको अपने वशमें किया है। अतः इन्हें अपने

तस्मादस्य वशीकर्ता नान्योऽस्ति स शिवः स्मृतः ।
यथा सर्वमृगाणां च हिंसको मृगहिंसकः ॥ ७५
अस्य हिंसामृगो नास्ति तस्मात्सिंह इतीरितः ।

शं नित्यं सुखमानन्दमिकारः पुरुषः स्मृतः ॥ ७६

वकारः शक्तिरमृतं मेलनं शिव उच्यते ।
तस्मादेवं स्वमात्मानं शिवं कृत्वार्चयेच्छिवम् ॥ ७७

तस्मादुद्धूलनं पूर्वं त्रिपुण्ड्रं धारयेत्परम् ।
पूजाकाले हि सजलं शुद्ध्यर्थं निर्जलं भवेत् ॥ ७८

दिवा वा यदि वा रात्रौ नारी वाथ नरोऽपि वा ।
पूजार्थं सजलं भस्मं त्रिपुण्ड्रेणैव धारयेत् ॥ ७९

त्रिपुण्ड्रं सजलं भस्मं धृत्वा पूजां करोति यः ।
शिवपूजाफलं साङ्गं तस्यैव हि सुनिश्चितम् ॥ ८०

भस्मं वै शिवमन्त्रेण धृत्वा हुच्चाश्रमी भवेत् ।
शिवाश्रमीति सम्प्रोक्तः शिवैकपरमो यतः ॥ ८१

शिवव्रतैकनिष्ठस्य नाशौचं न च सूतकम् ।
ललाटेऽग्रे सितं भस्मं तिलकं धारयेन्मृदा ॥ ८२

स्वहस्ताद् गुरुहस्ताद्वा शिवभक्तस्य लक्षणम् ।

गुणान्कन्थं इति प्रोक्तो गुरुशब्दस्य विग्रहः ॥ ८३

सविकारानाजसादीनानुणान्कन्थे व्यपोहति ।
गुणातीतः परशिवो गुरुरूपं समाश्रितः ॥ ८४

गुणत्रयं व्यपोह्याग्रे शिवं बोधयतीति सः ।
विश्वस्तानां तु शिष्याणां गुरुरित्यभिधीयते ॥ ८५

वशमें करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, इसीलिये वे शिव कहे जाते हैं। जैसे समस्त मृगोंका हिंसक मृग (पशु) सिंह कहलाता है और उसकी हिंसा करनेवाला दूसरा कोई मृग नहीं है, अतएव उसे सिंह कहा गया है ॥ ७३—७५ १/२ ॥

शकारका अर्थ है नित्यसुख एवं आनन्द। इकारको पुरुष और वकारको अमृतस्वरूपा शक्ति कहा गया है। इन सबका सम्मिलित रूप ही शिव कहलाता है। अतः इस रूपमें भगवान् शिवको अपनी आत्मा मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये। [साधक] पहले अपने अंगोंमें भस्म लगाये, फिर ललाटमें उत्तम त्रिपुण्ड्र धारण करे। पूजाकालमें सजल भस्मका उपयोग होता है और द्रव्यशुद्धिके लिये निर्जल भस्मका ॥ ७६—७८ ॥

दिन हो अथवा रात्रि, नारी हो या पुरुष; पूजा करनेके लिये उसे भस्म जलसहित ही त्रिपुण्ड्ररूपमें (ललाटपर) धारण करना चाहिये। जलमिश्रित भस्मको त्रिपुण्ड्ररूपमें धारणकर जो व्यक्ति शिवकी पूजा करता है, उसे सांग शिवकी पूजाका फल तुरंत प्राप्त होता है, यह सुनिश्चित है। जो (प्राणी) शिवमन्त्रके द्वारा भस्मको धारण करता है, वह सभी (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) आश्रमोंमें श्रेष्ठ होता है। उसे शिवाश्रमी कहा जाता है; क्योंकि वह एकमात्र शिवको ही परम श्रेष्ठ मानता है। शिव-व्रतमें एकमात्र शिवमें ही निष्ठा रखनेवालेको न तो अशौचका दोष लगता है और न तो सूतकका। ललाटके अग्रभागमें अपने हाथसे या गुरुके हाथसे श्वेत भस्म या मिट्टीसे तिलक लगाना चाहिये, यह शिवभक्तका लक्षण है ॥ ७९—८२ १/२ ॥

जो गुणोंका रोध करता है, वह गुरु है—यह ‘गुरु’ शब्दका विग्रह कहा गया है। गुणातीत परम शिव राजस आदि सविकार गुणोंका अवरोध करते हैं—दूर हटाते हैं, इसलिये वे सबके गुरुरूपका आश्रय लेकर स्थित हैं। गुरु विश्वासी शिष्योंके तीनों गुणोंको पहले दूर करके उन्हें शिवतत्त्वका बोध कराते हैं, इसीलिये गुरु कहलाते हैं ॥ ८३—८५ ॥

तस्माद् गुरुशरीरं तु गुरुलिङ्गं भवेद् बुधः ।
गुरुलिङ्गस्य पूजा तु गुरुशुश्रूषणं भवेत् ॥ ८६

श्रुतं करोति शुश्रूषा कायेन मनसा गिरा ।
उक्तं यद् गुरुणा पूर्वं शक्यं वाऽशक्यमेव वा ॥ ८७

करोत्येव हि पूतात्मा प्राणैरपि धनैरपि ।
तस्माद्वै शासने योग्यः शिष्य इत्यभिधीयते ॥ ८८

शरीराद्यर्थकं सर्वं गुरोदत्त्वा सुशिष्यकः ।
अग्रपाकं निवेद्याग्रे भुञ्जीयाद् गुर्वनुज्ञया ॥ ८९

शिष्यः पुत्र इति प्रोक्तः सदा शिष्यत्वयोगतः ।
जिह्वालिङ्गान्मन्त्रशुक्रं कर्णयोनौ निषिद्ध्य वै ॥ ९०

जातः पुत्रो मन्त्रपुत्रः पितरं पूजयेद् गुरुम् ।
निमज्जयति पुत्रं वै संसारे जनकः पिता ॥ ९१

सन्तारयति संसाराद् गुरुवै बोधकः पिता ।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा पितरं गुरुमर्चयेत् ॥ ९२

अङ्गशुश्रूषया चापि धनाद्यैः स्वार्जितैर्गुरुम् ।
पादादिकेशपर्यन्तं लिङ्गान्यङ्गानि यद्गुरोः ॥ ९३

धनरूपैः पादुकाद्यैः पादसङ्ग्रहणादिभिः ।
स्नानाभिषेकनैवेद्यभोजनैश्च प्रपूजयेत् ॥ ९४

गुरुपूजैव पूजा स्याच्छिवस्य परमात्मनः ।
गुरुसेवा तु यत्सर्वमात्मशुद्धिकरी भवेत् ॥ ९५

गुरोः शेषः शिवोच्छिष्टं जलमन्नादिनिर्मितम् ।
शिष्याणां शिवभक्तानां ग्राह्यं भोज्यं भवेद् द्विजाः ॥ ९६

गुर्वनुज्ञाविरहितं चोरवत्सकलं भवेत् ।
गुरोरपि विशेषज्ञं यत्नाद् गृह्णीत वै गुरुम् ॥ ९७

अज्ञानमोचनं साध्यं विशेषज्ञो हि मोचकः ।

अतः बुद्धिमान् शिष्यको उन गुरुके शरीरको गुरुलिंग समझना चाहिये । गुरुजीकी सेवा-शुश्रूषा ही गुरुलिंगकी पूजा होती है । शरीर, मन और वाणीसे को गयी गुरुसेवासे शास्त्रज्ञान प्राप्त होता है । अपनी शक्तिसे शक्य अथवा अशक्य जिस बातका भी आदेश गुरुने दिया हो, उसका पालन प्राण और धन लगाकर पवित्रात्मा शिष्य करता है, इसीलिये इस प्रकार अनुशासित रहनेवालेको शिष्य कहा जाता है ॥ ८६—८८ ॥

सुशील शिष्यको शरीर-धारणके सभी साधन गुरुको अर्पित करके तथा अन्नका पहला पाक उन्हें समर्पित करके उनकी आज्ञा लेकर भोजन करना चाहिये । शिष्यको निरन्तर गुरुके सान्निध्यके कारण पुत्र कहा जाता है । जिह्वारूप लिंगसे मन्त्ररूपी शुक्रका कानरूपी योनिमें आधान करके जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे मन्त्रपुत्र कहते हैं । उसे अपने पितास्वरूप गुरुकी सेवा करनी ही चाहिये । शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता तो संसारप्रपंचमें पुत्रको डुबोता है । ज्ञान देनेवाला गुरुरूप पिता संसारसागरसे पार कर देता है । इन दोनों पिताओंके अन्तरको जानकर गुरुरूप पिताकी अपने कमाये धनसे तथा अपने शरीरसे विशेष सेवा-पूजा करनी चाहिये । पैरसे केशपर्यन्त जो गुरुके शरीरके अंग हैं, उनकी भिन्न-भिन्न प्रकारसे यथा—स्वयं अर्जित धनके द्वारा उपयोगकी सामग्री प्राप्त कराकर, अपने हाथोंसे पैर दबाकर, स्नान-अभिषेक आदि कराकर तथा नैवेद्य-भोजनादि देकर पूजा करनी चाहिये ॥ ९१—९४ ॥

गुरुकी पूजा ही परमात्मा शिवकी पूजा है । गुरुके उपयोगसे बचा हुआ सारा पदार्थ आत्मशुद्धि करनेवाला होता है ॥ ९५ ॥

हे द्विजो ! गुरुका शेष, जल तथा अन्न आदिसे बना हुआ शिवोच्छिष्ट शिवभक्तों और शिष्योंके लिये ग्राह्य तथा भोज्य है । गुरुकी आज्ञाके बिना उपयोगमें लाया हुआ सब कुछ वैसा ही है, जैसे चोर चोरी करके लायी हुई वस्तुका उपयोग करता है । गुरुसे भी विशेष ज्ञानवान् पुरुष मिल जाय, तो उसे भी यत्नपूर्वक गुरु बना लेना चाहिये । अज्ञानरूपी बन्धनसे छूटना ही जीवमात्रके लिये साध्य पुरुषार्थ है । अतः जो विशेष ज्ञानवान् है, वही जीवको उस बन्धनसे छुड़ा सकता है ॥ ९६-९७१/२ ॥

आदौ च विज्ञशमनं कर्तव्यं कर्मपूर्तये ॥ १८

निर्विघ्नेन कृतं साङ्गं कर्म वै सफलं भवेत् ।
तस्मात्सकलकर्मादौ विघ्नेशं पूजयेद् बुधः ॥ १९

सर्वबाधानिवृत्यर्थं सर्वान्देवान् यजेद् बुधः ।

ज्वरादिग्रन्थिरोगाश्च बाधा ह्याध्यात्मिकी मता ॥ १००

पिशाचजम्बुकादीनां वल्मीकाद्युद्धवे तथा ।
अकस्मादेव गोधादिजन्तूनां पतनेऽपि च ॥ १०१

गृहे कच्छपसर्पस्त्रीदुर्जनादर्शनेऽपि च ।
वृक्षनारीगवादीनां प्रसूतिविषयेऽपि च ॥ १०२

भाविदुःखं समायाति तस्मात्ते भौतिका मता: ।
अमेध्याशनिपातश्च महामारी तथैव च ॥ १०३

ज्वरमारी विषूचिश्च गोमारी च मसूरिका ।
जन्मक्षणग्रहसङ्क्रान्तिग्रहयोगः स्वराशिके ॥ १०४

दुःस्वप्नदर्शनाद्याश्च मता वै ह्याधिदैविकाः ।
शवच्चाणडालपतितस्पर्शादन्तर्गृहे गते ॥ १०५

एतादृशे समुत्पन्ने भाविदुःखस्य सूचके ।
शान्तियज्ञं तु मतिमान्कुर्यात्तदोषशान्तये ॥ १०६

देवालयेऽथ गोष्ठे वा चैत्ये वापि गृहाङ्गणे ।
प्रदेशोन्नतधिष्ठये वै द्विहस्ते च स्वलङ्कृते ॥ १०७

भारमात्रं व्रीहिधान्यं प्रस्थाप्य परिसृत्य च ।
मध्ये विलिख्य कमलं तथा दिक्षु विलिख्य वै ॥ १०८

तन्तुना वेष्टितं कुम्भं नवगुगुलधूपितम् ।
मध्ये स्थाप्य महाकुम्भं तथा दिक्ष्वपि विन्यसेत् ॥ १०९

सनालाम्रककूर्चादीन्कलशांश्च तथाष्टसु ।
पूरयेन्मन्त्रपूतेन पञ्चद्रव्ययुतेन हि ॥ ११०

प्रक्षिपेन्वरत्नानि नीलादीन्कमशस्तथा ।
कर्मज्ञं च सपलीकमाचार्यं वरयेद् बुधः ॥ १११

कर्मकी सांगोपांग पूर्तिके लिये पहले विज्ञशान्ति करनी चाहिये । निर्विघ्नतापूर्वक तथा सांग सम्पन्न हुआ कार्य ही सफल होता है । इसलिये सभी कर्मोंके प्रारम्भमें बुद्धिमान् व्यक्तिको विज्ञविनाशक गणपतिका पूजन करना चाहिये । सभी बाधाओंको दूर करनेके लिये विद्वान् व्यक्तिको सभी देवताओंकी पूजा करनी चाहिये ॥ १८-१९१/२ ॥

ज्वर आदि ग्रन्थिरोग आध्यात्मिक बाधा कही जाती है । पिशाच और सियार आदिका दीखना, बाँबीका जमीनपर उठ आना, अकस्मात् छिपकली आदि जन्तुओंका गिरना, घरमें कच्छप, साँप, दुष्ट स्त्रीका दीखना, वृक्ष, नारी और गौ आदिकी प्रसूतिका दर्शन होना आगामी दुःखका संकेत होता है । अतः यह आधिभौतिक बाधा मानी जाती है । किसी अपवित्र वस्तुका गिरना, बिजली गिरना, महामारी, ज्वरमारी, हैजा, गोमारी, मसूरिका (एक प्रकारका शीतला रोग), जन्मनक्षत्रपर ग्रहण, संक्रान्ति, अपनी राशिमें अनेक ग्रहोंका योग होना तथा दुःस्वप्नदर्शन आदि आधिदैविक बाधा कही जाती है ॥ १००—१०४१/२ ॥

शव, चाणडाल और पतितका स्पर्श अथवा इनका घरके भीतर आना भावी दुःखका सूचक होता है । बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि उस दोषकी शान्तिके लिये शान्तियज्ञ करे । किसी मन्दिर, गोशाला, यज्ञशाला अथवा घरके आँगनमें जहाँ दो हाथपर ऊँची जमीन हो, उसे अच्छी तरह साफ करके उसपर एक भार धान रखकर उसे फैला दे । उसके बीचमें कमल बनाये तथा कोणसहित आठों दिशाओंमें भी कमल बना दे । फिर प्रधान कलशमें सूत्र बाँधकर तथा गुगुलकी धूप दिखाकर उसे बीचमें तथा दिशाओंमें बनाये गये कमलोंपर अन्य आठ कलश स्थापित कर दे ॥ १०५—१०९ ॥

आठ कलशोंमें कमल, आम्रपल्लव, कुशा डालकर [गन्ध आदि] पंचद्रव्योंसे युक्त मन्त्रपूत जलसे उन्हें भरे । उन समस्त कलशोंमें नीलम आदि नवरत्नोंको क्रमशः डालना चाहिये । तत्पश्चात् बुद्धिमान् यजमान कर्मकाण्डको जाननेवाले सपलीक आचार्यका वरण

सुवर्णप्रतिमां विष्णोरिन्द्रादीनां च निक्षिपेत् ।
सशिरस्के मध्यकुम्भे विष्णुमावाह्य पूजयेत् ॥ ११२

प्रागादिषु यथामन्त्रमिन्द्रादीन्कमशो यजेत् ।
तत्तनाम्ना चतुर्थ्या च नमोऽन्तेन यथाक्रमम् ॥ ११३

आवाहनादिकं सर्वमाचार्येणैव कारयेत् ।
आचार्यऋत्विजैः सार्थं तन्मन्त्रान्प्रजपेच्छतम् ॥ ११४
कुम्भस्य पश्चिमे भागे जपान्ते होममाचरेत् ।
कोटि॑ लक्षं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं बुधाः ॥ ११५
एकाहं वा नवाहं वा तथा मण्डलमेव वा ।
यथायोग्यं प्रकुर्वीत कालदेशानुसारतः ॥ ११६

शमीहोमश्च शान्त्यर्थे वृत्त्यर्थे च पलाशकम् ।
समिदनाज्यकैर्द्रव्यैर्नाम्ना मन्त्रेण वा हुनेत् ॥ ११७
प्रारम्भे यत्कृतं द्रव्यं तत्क्रियान्तं समाचरेत् ।
पुण्याहं वाचयित्वान्ते दिने सम्प्रोक्षयेज्जलैः ॥ ११८
ब्राह्मणाभ्योजयेत्पश्चाद्यावदाहुतिसङ्ख्यया ।
आचार्यश्च हविष्याशी ऋत्विजश्च भवेद् बुधाः ॥ ११९

आदित्यादीन्ग्रहानिष्ट्वा सर्वहोमान्त एव हि ।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यानवरतं यथाक्रमम् ॥ १२०

दशदानं ततः कुर्याद् भूरिदानं ततः परम् ।
बालानामुपनीतानां गृहिणां वनिनां धनम् ॥ १२१

कन्यानां च सभर्तृणां विधवानां ततः परम् ।
तन्त्रोपकरणं सर्वमाचार्याय निवेदयेत् ॥ १२२

करे । भगवान् विष्णुकी स्वर्णप्रतिमा तथा इन्द्रादि देवताओंकी भी प्रतिमाएँ बनाकर उन कलशोंमें छोड़े । पूर्णपात्रसे ढके मध्यकलशपर भगवान् विष्णुका आवाहन करके उनकी पूजा करे । पूर्व दिशासे प्रारम्भ करके सभी दिशाओंमें मन्त्रानुसार इन्द्रादिका क्रमशः पूजन करना चाहिये । उनके नामोंमें चतुर्थी विभक्तिसहित नमःका प्रयोग करते हुए उनका पूजन करना चाहिये ॥ ११०—११३ ॥

आवाहनादि सारे कार्य आचार्यद्वारा सम्पन्न कराये तथा आचार्य और ऋत्विजोंसहित उन देवताओंके मन्त्रोंको सौ-सौ बार जपे । कलशोंकी पश्चिम दिशामें जपके बाद होम करना चाहिये । हे विद्वज्जनो ! वह जपहोम करोड़, लाख, हजार अथवा १०८ की संख्यामें हो सकता है । इस विधिसे एक दिन, नौ दिन अथवा चालीस दिनोंमें देश-कालकी व्यवस्थाके अनुसार [शान्तियज्ञ] यथोचित रूपमें सम्पन्न करे ॥ ११४—११६ ॥

शान्तिके लिये शमी तथा वृत्ति (रोजगार)-के लिये पलाशकी समिधासे, अन्न, घृत तथा [सुगन्धित] द्रव्योंसे उन देवताओंके नाम अथवा मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये । प्रारम्भमें जिस द्रव्यका उपयोग किया हो, अन्ततक उसीका प्रयोग करते रहना चाहिये । अन्तिम दिन पुण्याहवाचन कराकर कलशोंके जलसे प्रोक्षण करना चाहिये । तत्पश्चात् आहुतिकी संख्याके बराबर ब्राह्मणोंको भोजन कराये । हे विद्वानो ! आचार्य और ऋत्विजोंको हविष्यका भोजन कराना चाहिये ॥ ११७—११९ ॥

सूर्य आदि नवग्रहोंका होमके अन्तमें पूजन करना चाहिये । ऋत्विजोंको क्रमानुसार नवरत्नोंकी दक्षिणा देनी चाहिये । तत्पश्चात् दशदान करे और उसके बाद भूयसीदान करना चाहिये । बालक, यज्ञोपवीती, गृहस्थाश्रमी और वानप्रस्थियोंको धनका दान करना चाहिये । तत्पश्चात् कन्या, सधवा और विधवा स्त्रियोंको देनेके अनन्तर बची हुई तथा यज्ञमें बची हुई सारी सामग्री आचार्यको समर्पित कर देनी चाहिये ॥ १२०—१२२ ॥

उत्पातानां च मारीणां दुःखस्वामी यमः स्मृतः ।
 तस्माद्यमस्य प्रीत्यर्थं कालदानं प्रदापयेत् ॥ १२३
 शतनिष्केण वा कुर्याद्वशनिष्केण वा पुनः ।
 पाशांकुशधरं कालं कुर्यात्पुरुषरूपिणम् ॥ १२४
 तत्स्वर्णप्रतिमादानं कुर्याद्वक्षिणया सह ।
 तिलदानं ततः कुर्यात्पूर्णायुष्यप्रसिद्धये ॥ १२५
 आन्यावेक्षणदानं च कुर्याद्व्याधिनिवृत्तये ।
 सहस्रं भोजयेद्विप्रान्दरिद्रः शतमेव वा ॥ १२६
 विज्ञाभावे दरिद्रस्तु यथाशक्ति समाचरेत् ।
 भैरवस्य महापूजां कुर्याद्बूतादिशान्तये ॥ १२७
 महाभिषेकं नैवेद्यं शिवस्यान्ते तु कारयेत् ।
 ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्भूरभोजनरूपतः ॥ १२८
 एवं कृतेन यज्ञेन दोषशान्तिमवान्युयात् ।
 शान्तियज्ञमिमं कुर्याद्बूर्षे वर्षे तु फालुने ॥ १२९
 दुर्दर्शनादौ सद्यो वै मासमात्रे समाचरेत् ।
 महापापादिसम्प्राप्तौ कुर्याद्बैरवपूजनम् ॥ १३०
 महाव्याधिसमुत्पत्तौ सङ्कल्पं पुनराचरेत् ।
 सर्वाभावे दरिद्रस्तु दीपदानमथाचरेत् ॥ १३१
 तदप्यशक्तः स्नात्वा वै यत्किञ्चिद् दानमाचरेत् ।
 दिवाकरं नमस्कुर्यान्मन्त्रेणाष्टोत्तरं शतम् ॥ १३२
 सहस्रमयुतं लक्षं कोटिं वा कारयेद् बुधः ।
 नमस्कारात्मयज्ञेन तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥ १३३
 त्वत्स्वरूपेऽर्पिता बुद्धिर्न तेऽशून्ये च रोचते ।
 या चास्त्यस्मदहन्तेति त्वयि दृष्टे विवर्जिता ॥ १३४
 नग्नोऽहं हि स्वदेहेन भो महास्त्वमसि प्रभो ।
 न शून्यो मत्स्वरूपो वै तव दासोऽस्मि साम्प्रतम् ॥ १३५
 यथायोग्यं स्वात्मयज्ञं नमस्कारं प्रकल्पयेत् ।
 अथात्र शिवनैवेद्यं दत्त्वा ताम्बूलमाहरेत् ॥ १३६

उत्पात, महामारी और दुःखोंके स्वामी यमराज माने जाते हैं। इसलिये यमराजकी प्रसन्नताके लिये कालप्रतिमाका दान करना चाहिये। सौ निष्क या दस निष्कके परिमाणकी पाश और अंकुश धारण की हुई पुरुषके आकारकी स्वर्णप्रतिमा बनाये। उस स्वर्णप्रतिमाका दक्षिणासहित दान करना चाहिये। उसके बाद पूर्णायु प्राप्त करनेहेतु तिलका दान करना चाहिये। रोगनिवारणके लिये घृतमें अपनी परछाई देखकर दान करना चाहिये। हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, धनाभावमें सौ अथवा यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ १२३—१२६ १/२ ॥

भूत आदिकी शान्तिके लिये भैरवकी महापूजा करे। अन्तमें भगवान् शिवका महाभिषेक और नैवेद्य समर्पित करके ब्राह्मणोंको भूरिभोजन कराना चाहिये ॥ १२७-१२८ ॥

इस प्रकार यज्ञ सम्पन्न करनेसे दोषोंकी शान्ति हो जाती है। इस शान्तियज्ञका प्रतिवर्ष फालुनमासमें आयोजन करना चाहिये। अशुभ दर्शन होनेपर तुरंत अथवा एक महीनेके भीतर यज्ञका आयोजन करना चाहिये। महापाप हो जाय, तो भैरवकी पूजा करनी चाहिये। महाव्याधि हो जाय, तो यज्ञका पुनः संकल्प लेकर उसे सम्पन्न करना चाहिये। अकिञ्चन दरिद्र व्यक्ति तो केवल दीपदान कर दे। उतना भी न हो सके, तो स्नान करके कुछ दान कर दे। एक सौ आठ, एक हजार, दस हजार, एक लाख या एक करोड़ मन्त्रोंसे भगवान् सूर्यको नमस्कार करे। इस नमस्कारात्मक यज्ञसे सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १२९—१३३ ॥

भगवान् शिवकी इस प्रकार प्रार्थना करे—मेरी बुद्धि आपके ज्योतिर्मय पूर्णस्वरूपमें लगी है। मुझमें जो अहंता थी, वह आपके दर्शनसे नष्ट हो गयी है। मैं अपनी देहसे आपको प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! आप महान् हैं। आप पूर्ण हैं और मेरा स्वरूप भी आप ही हैं, तो भी इस समय मैं आपका दास हूँ। इस प्रकार यथायोग्य नमस्कारपूर्वक स्वात्मयज्ञ करना चाहिये। तत्पश्चात् भगवान् शिवको नैवेद्य देकर ताम्बूल समर्पित करना चाहिये ॥ १३४—१३६ ॥

शिवप्रदक्षिणं कुर्यात्स्वयमष्टोत्तरं शतम्।
सहस्रमयुतं लक्षं कोटिमन्येन कारयेत्॥ १३७

शिवप्रदक्षिणात्सर्वं पातकं नश्यति क्षणात्।
दुःखस्य मूलं व्याधिर्हि व्याधेर्मूलं हि पातकम्॥ १३८

धर्मेणैव हि पापानामपनोदनमीरितम्।
शिवोदेशकृतो धर्मः क्षमः पापविनोदने॥ १३९

अध्यक्षं शिवधर्मेषु प्रदक्षिणमितीरितम्।
क्रियया जपरूपं हि प्रणवं तु प्रदक्षिणम्॥ १४०

जननं मरणं द्वन्द्वं मायाचक्रमितीरितम्।
शिवस्य मायाचक्रं हि बलिपीठं तदुच्यते॥ १४१

बलिपीठं समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण वै।
पदे पदान्तरं गत्वा बलिपीठं समाविशेत्॥ १४२

नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणमितीरितम्।
निर्गमाज्जननं प्राप्तं नमस्त्वात्मसमर्पणम्॥ १४३

जननं मरणं द्वन्द्वं शिवमायासमर्पितम्।
शिवमायार्पितद्वन्द्वो न पुनस्त्वात्मभागभवेत्॥ १४४

यावद्देहं क्रियाधीनः स जीवो बद्ध उच्यते।
देहत्रयवशीकारे मोक्ष इत्युच्यते बुधैः॥ १४५

मायाचक्रप्रणेता हि शिवः परमकारणम्।
शिवमायार्पितद्वन्द्वं शिवस्तु परिमार्जति॥ १४६

शिवेन कल्पितं द्वन्द्वं तस्मिन्नेव समर्पयेत्।

शिवस्यातिप्रियं विद्यात्प्रदक्षिणनमो बुधाः॥ १४७

प्रदक्षिणनमस्काराः शिवस्य परमात्मनः।
षोडशैरुपचारैश्च कृता पूजा फलप्रदा॥ १४८

प्रदक्षिणाऽविनाशयं हि पातकं नास्ति भूतले।
तस्मात्प्रदक्षिणेनैव सर्वपापं विनाशयेत्॥ १४९

तब स्वयं १०८ बार शिवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। एक हजार, दस हजार, एक लाख या करोड़ प्रदक्षिणा दूसरोंके द्वारा करायी जा सकती है। शिवकी प्रदक्षिणासे सारे पापोंका तत्क्षण नाश हो जाता है। दुःखका मूल व्याधि है और व्याधिका मूल पापमें होता है। धर्माचरणसे ही पापोंका नाश बताया गया है। भगवान् शिवके उद्देश्यसे किया गया धर्माचरण पापोंका नाश करनेमें समर्थ होता है॥ १३७—१३९॥

शिवके धर्मोंमें प्रदक्षिणाको प्रधान कहा गया है। क्रियासे जपरूप होकर प्रणव ही प्रदक्षिणा बन जाता है। जन्म और मरणका द्वन्द्व ही मायाचक्र कहा गया है। शिवका मायाचक्र ही बलिपीठ कहलाता है। बलिपीठसे आरम्भ करके प्रदक्षिणाके क्रमसे एक पैरके पीछे दूसरा पैर रखते हुए बलिपीठमें पुनः प्रवेश करना चाहिये। तत्पश्चात् नमस्कार करना चाहिये। इसे प्रदक्षिणा कहा जाता है। बलिपीठसे बाहर निकलना जन्म प्राप्त होना और नमस्कार करना ही आत्मसमर्पण है॥ १४०—१४३॥

जन्म और मरणरूप द्वन्द्व भगवान् शिवकी मायासे प्राप्त है। जो इन दोनोंको शिवकी मायाको ही अर्पित कर देता है, वह फिर शरीरके बन्धनमें नहीं पड़ता। जबतक शरीर रहता है, तबतक जो क्रियाके ही अधीन है, वह जीव बद्ध कहलाता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंको वशमें कर लेनेपर जीवका मोक्ष हो जाता है, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। मायाचक्रके निर्माता भगवान् शिव ही परम कारण हैं। वे अपनी मायाके दिये हुए द्वन्द्वका स्वयं ही परिमार्जन करते हैं। अतः शिवके द्वारा कल्पित हुआ द्वन्द्व उन्हींको समर्पित कर देना चाहिये॥ १४४—१४६ १/२॥

हे विद्वानो! प्रदक्षिणा और नमस्कार शिवको अतिप्रिय हैं, ऐसा जानना चाहिये। भगवान् शिवकी प्रदक्षिणा, नमस्कार और षोडशोपचार पूजन अत्यन्त फलदायी होता है। ऐसा कोई पाप इस पृथ्वीपर नहीं है, जो शिवप्रदक्षिणासे नष्ट न हो सके। इसलिये प्रदक्षिणाका आश्रय लेकर सभी पापोंका नाश कर लेना चाहिये॥ १४७—१४९॥

शिवपूजापरो मौनी सत्यादिगुणसंयुतः।
 क्रियातपोजपज्ञानध्यानेष्वेकैकमाचरेत् ॥ १५०
 ऐश्वर्य दिव्यदेहश्च ज्ञानमज्ञानसङ्क्षयः।
 शिवसान्निध्यमित्येतत्क्रियादीनां फलं भवेत् ॥ १५१
 करणेन फलं याति तमसः परिहापनात्।
 जन्मनः परिमार्जित्वाज्जबुद्ध्या जनितानिव ॥ १५२
 यथादेशं यथाकालं यथादेहं यथाधनम्।
 यथायोग्यं प्रकुर्वीत क्रियादीन् शिवभक्तिमान् ॥ १५३
 न्यायार्जितसुवित्तेन वसेत्प्राज्ञः शिवस्थले।
 जीवहिंसादिरहितमतिक्लेशविवर्जितम् ॥ १५४
 पञ्चाक्षरेण जसं च तोयमनं विदुः सुखम्।
 अथवाहुर्दिर्द्रस्य भिक्षानं ज्ञानदं भवेत् ॥ १५५
 शिवभक्तस्य भिक्षानं शिवभक्तिविवर्धनम्।
 शम्भुसत्रमिति प्राहुर्भिक्षानं शिवयोगिनः ॥ १५६
 येन केनाप्युपायेन यत्र कुत्रापि भूतले।
 शुद्धान्नभुक्सदा मौनी रहस्यं न प्रकाशयेत् ॥ १५७
 प्रकाशयेत् भक्तानां शिवमाहात्म्यमेव हि।
 रहस्यं शिवमन्त्रस्य शिवो जानाति नापरः ॥ १५८

शिवभक्तो वसेन्त्यं शिवलिङ्गं समाश्रितः।
 स्थाणुलिङ्गाश्रयेणैव स्थाणुर्भवति भूसुराः ॥ १५९
 पूजया चरलिङ्गस्य क्रमान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।
 सर्वमुक्तं समासेन साध्यसाधनमुत्तमम् ॥ १६०

व्यासेन यत्पुरा प्रोक्तं यच्छ्रुतं हि मया पुरा।
 भद्रमस्तु हि वोऽस्माकं शिवभक्तिदृढास्तु सा ॥ १६१
 य इमं पठतेऽध्यायं यः शृणोति नरः सदा।
 शिवज्ञानं स लभते शिवस्य कृपया बुधाः ॥ १६२

जो शिवकी पूजामें तत्पर हो, वह मौन रहे, सत्य आदि गुणोंसे संयुक्त हो तथा क्रिया, जप, तप, ज्ञान और ध्यानमेंसे एक-एकका अनुष्ठान करता रहे। ऐश्वर्य, दिव्य शरीरकी प्राप्ति, ज्ञानका उदय, अज्ञानका निवारण और भगवान् शिवके सामीप्यका लाभ—ये क्रमशः क्रिया आदिके फल हैं। निष्काम कर्म करनेसे अज्ञानका निवारण हो जानेके कारण शिवभक्त पुरुष उसके यथोक्त फलको पाता है। शिवभक्त पुरुष देश, काल, शरीर और धनके अनुसार यथायोग्य क्रिया आदिका अनुष्ठान करे ॥ १५०—१५३ ॥

न्यायोपर्जित उत्तम धनसे निर्वाह करते हुए विद्वान् पुरुष शिवके स्थानमें निवास करे। जीवहिंसा आदिसे रहित और अत्यन्त क्लेशशून्य जीवन बिताते हुए पंचाक्षर-मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित अन्न और जलको सुखस्वरूप माना गया है अथवा यह भी कहते हैं कि दरिद्र पुरुषके लिये भिक्षासे प्राप्त हुआ अन्न ज्ञान देनेवाला होता है, शिवभक्तको भिक्षान् प्राप्त हो, तो वह शिवभक्तिको बढ़ानेवाला होता है। शिवयोगी पुरुष भिक्षान्को शम्भुसत्र कहते हैं। जिस किसी भी उपायसे जहाँ-कहीं भी भूतलपर शुद्ध अन्नका भोजन करते हुए सदा मौनभावसे रहे और अपने साधनका रहस्य किसीपर प्रकट न करे। भक्तोंके समक्ष ही शिवके माहात्म्यको प्रकाशित करे। शिवमन्त्रके रहस्यको भगवान् शिव ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जान पाता ॥ १५४—१५८ ॥

शिवभक्तको सदा शिवलिंगके आश्रित होकर वास करना चाहिये। हे ब्राह्मणो ! शिवलिंगाश्रयके प्रभावसे वह भक्त भी शिवरूप ही हो जाता है। चरलिंगकी पूजा करनेसे वह क्रमशः अवश्य ही मुक्त हो जाता है। महर्षि व्यासने पूर्वकालमें जो कहा था और मैंने जैसा सुना था, उस सब साध्य और साधनका संक्षेपमें मैंने वर्णन कर दिया। आप सबका कल्याण हो और भगवान् शिवमें आपकी दृढ़ भक्ति बनी रहे। जो मनुष्य इस अध्यायका पाठ करता है अथवा जो इसे सुनता है, हे विज्ञजनो ! वह भगवान् शिवकी कृपासे शिवज्ञानको प्राप्त कर लेता है ॥ १५९—१६२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे शिवलिङ्गमाहात्म्यवर्णनं नामाध्यदशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
 ॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें शिवलिङ्गके माहात्म्यका वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

पार्थिव शिवलिंगके पूजनका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

सूत सूत चिरञ्जीव धन्यस्त्वं शिवभक्तिमान् ।
सम्यगुक्तस्त्वया लिङ्गमहिमा सत्फलप्रदः ॥ १
यत्र पार्थिवमाहेशलिङ्गस्य महिमाधुना ।
सर्वोत्कृष्टश्च कथितो व्यासतो ब्रूहि तं पुनः ॥ २

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे सद्वक्त्यादरतोऽग्निलाः ।
शिवपार्थिवलिङ्गस्य महिमा प्रोच्यते मया ॥ ३
उक्तेष्वेतेषु लिङ्गेषु पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ।
तस्य पूजनतो विप्रा बहवः सिद्धिमागताः ॥ ४
हरिब्रह्मा च ऋषयः सप्रजापतयस्तथा ।
सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गं प्रापुः सर्वेषितं द्विजाः ॥ ५
देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ।
अन्येऽपि बहवः सिद्धिं तं सम्पूज्य गताः पराम् ॥ ६

कृते रत्नमयं लिङ्गं त्रेतायां हेमसम्भवम् ।
द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे ॥ ७
अष्टमूर्तिषु सर्वासु मूर्तिर्वै पार्थिवी वरा ।
अनन्यपूजिता विप्रास्तपस्तस्मान्महत्फलम् ॥ ८

यथा सर्वेषु देवेषु ज्येष्ठः श्रेष्ठः महेश्वरः ।
एवं सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥ ९
यथा नदीषु सर्वासु ज्येष्ठा श्रेष्ठा सुरापगा ।
तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १०
यथा सर्वेषु मन्त्रेषु प्रणवो हि महान्स्मृतः ।
तथेदं पार्थिवं श्रेष्ठमाराध्यं पूज्यमेव हि ॥ ११
यथा सर्वेषु वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठ उच्यते ।

ऋषिगण बोले—हे सूतजी ! आप चिरंजीवी हों। आप धन्य हैं, जो परम शिवभक्त हैं। आपने शुभ फलको देनेवाली शिवलिंगकी महिमा सम्यक् प्रकारसे बतायी। अब आप व्यासजीद्वारा वर्णित भगवान् शिवके सर्वोत्कृष्ट पार्थिव लिंगकी महिमाका वर्णन करें ॥ १-२ ॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! मैं शिवके पार्थिव लिंगकी महिमा बता रहा हूँ, आप लोग भक्ति और आदरसहित इसका श्रवण करें। हे द्विजो ! अभीतक बताये हुए सभी शिवलिंगोंमें पार्थिव लिंग सर्वोत्तम है। उसकी पूजा करनेसे अनेक भक्तोंको सिद्धि प्राप्त हुई है ॥ ३-४ ॥

हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मा, विष्णु, प्रजापति तथा अनेक ऋषियोंने पार्थिव लिंगकी पूजा करके अपना सम्पूर्ण अभीष्ट प्राप्त किया है। देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षसगण और अन्य प्राणियोंने भी उसकी पूजा करके परम सिद्धि प्राप्त की है ॥ ५-६ ॥

सत्ययुगमें मणिलिंग, त्रेतायुगमें स्वर्णलिंग, द्वापरयुगमें पारदलिंग और कलियुगमें पार्थिवलिंगको श्रेष्ठ कहा गया है। भगवान् शिवकी सभी आठ* मूर्तियोंमें पार्थिव मूर्ति श्रेष्ठ है। किसी अन्यद्वारा न पूजी हुई (नवनिर्मित) पार्थिव मूर्तिकी पूजा करनेसे तपस्यासे भी अधिक फल मिलता है ॥ ७-८ ॥

जैसे सभी देवताओंमें शंकर ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहे जाते हैं, उसी प्रकार सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी नदियोंमें गंगा ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कही जाती है, वैसे ही सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिव लिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी मन्त्रोंमें प्रणव (ॐ) महान् कहा गया है, उसी प्रकार शिवका यह पार्थिवलिंग श्रेष्ठ, आराध्य तथा पूजनीय होता है। जैसे सभी वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ कहा जाता है, उसी

* पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—ये शिवकी आठ मूर्तियाँ हैं।

तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १२
 यथा पुरीषु सर्वासु काशी श्रेष्ठतमा स्मृता ।
 तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १३
 यथा ब्रतेषु सर्वेषु शिवरात्रिव्रतं परम् ।
 तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १४
 यथा देवीषु सर्वासु शैवी शक्तिः परा स्मृता ।
 तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥ १५
 प्रकृत्य पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत् ।
 वृथा भवति सा पूजा स्नानदानादिकं वृथा ॥ १६
 पार्थिवाराधनं पुण्यं धन्यमायुर्विवर्धनम् ।
 तुष्टिदं पुष्टिदं श्रीदं कार्यं साधकसत्तमैः ॥ १७

यथालब्धोपचारैश्च भक्तिश्रद्धासमन्वितः ।
 पूजयेत्पार्थिवं लिङ्गं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ १८
 यः कृत्वा पार्थिवं लिङ्गं पूजयेच्छुभवेदिकम् ।
 इहैव धनवाञ्छीमानन्ते रुद्रोऽभिजायते ॥ १९
 त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेलिङ्गं कृत्वा बिल्वेन पार्थिवम् ।
 दशैकादशकं यावत्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २०
 अनेनैव स्वदेहेन रुद्रलोके महीयते ।
 पापहं सर्वमर्त्यानां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ २१
 जीवन्मुक्तः स वै ज्ञानी शिव एव न संशयः ।
 तस्य दर्शनमात्रेण भुक्तिर्मुक्तिश्च जायते ॥ २२

शिवं यः पूजयेनित्यं कृत्वा लिङ्गं तु पार्थिवम् ।
 यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम् ॥ २३
 मृडेनाप्रमितान्वर्षाञ्छिवलोके हि तिष्ठति ।
 सकामः पुनरागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत् ॥ २४
 निष्कामः पूजयेनित्यं पार्थिवं लिङ्गमुक्तमम् ।
 शिवलोके सदा तिष्ठेत्तस्य सायुज्यमानुयात् ॥ २५

प्रकार सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी पुरियोंमें काशीको श्रेष्ठतम कहा गया है, वैसे ही सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी व्रतोंमें शिवरात्रिका व्रत सर्वोपरि है, उसी प्रकार सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी देवियोंमें शैवी शक्ति प्रधान मानी जाती है, उसी प्रकार सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग प्रधान माना जाता है ॥ ९—१५ ॥

जो पार्थिवलिंगका निर्माण करनेके बाद किसी अन्य देवताकी पूजा करता है, उसकी वह पूजा तथा स्नान-दान आदिकी क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। पार्थिव-पूजन अत्यन्त पुण्यदायी तथा सब प्रकारसे धन्य करनेवाला, दीर्घायुष्य देनेवाला है। यह तुष्टि, पुष्टि और लक्ष्मी प्रदान करनेवाला है, अतः श्रेष्ठ साधकोंको पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ १६-१७ ॥

उपलब्ध उपचारोंसे भक्ति-श्रद्धापूर्वक पार्थिव लिंगका पूजन करना चाहिये; यह सभी कामनाओंकी सिद्धि देनेवाला है। जो सुन्दर वेदीसहित पार्थिव लिंगका निर्माण करके उसकी पूजा करता है, वह इस लोकमें धन-धान्यसे सम्पन्न होकर अन्तमें रुद्रलोकको प्राप्त करता है। जो पार्थिवलिंगका निर्माण करके बिल्वपत्रोंसे ग्यारह वर्षतक उसका त्रिकाल पूजन करता है, उसके पुण्यफलको सुनिये। वह अपने इसी शरीरसे रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उसके दर्शन और स्पर्शसे मनुष्योंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वह जीवन्मुक्त ज्ञानी और शिवस्वरूप है; इसमें संशय नहीं है। उसके दर्शनमात्रसे भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १८—२२ ॥

जो पार्थिव शिवलिंगका निर्माण करके जीवनपर्यन्त नित्य उसका पूजन करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता है। वह असंख्य वर्षोंतक भगवान् शिवके सान्निध्यमें शिवलोकमें वास करता है और कोई कामना शेष रहनेपर वह भारतवर्षमें सम्राट् बनता है। जो निष्कामभावसे नित्य उत्तम पार्थिवलिंगका पूजन करता है, वह सदाके लिये शिवलोकमें वास करता है और शिवसायुज्यको प्राप्त कर लेता है ॥ २३—२५ ॥

पार्थिवं शिवलिङ्गं च विप्रो यदि न पूजयेत्।
स याति नरकं घोरं शूलप्रोतं सुदारुणम्॥ २६
यथाकथञ्चिद्विधिना रम्यं लिङ्गं प्रकारयेत्।
पञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत्॥ २७
अखण्डं तद्धि कर्तव्यं न विखण्डं प्रकारयेत्।
विखण्डं तु प्रकुर्वणो नैव पूजाफलं लभेत्॥ २८
रत्नं हेमजं लिङ्गं पारदं स्फटिकं तथा।
पार्थिवं पुष्परागोत्थमखण्डं तु प्रकारयेत्॥ २९
अखण्डं तु चरं लिङ्गं द्विखण्डमचरं स्मृतम्।
खण्डाखण्डविचारोऽयं सचराचरयोः स्मृतः॥ ३०
वेदिका तु महाविद्या लिङ्गं देवो महेश्वरः।
अतो हि स्थावरे लिङ्गे स्मृता श्रेष्ठा द्विखण्डता॥ ३१

द्विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं हि विधानतः।
अखण्डं जड्मं प्रोक्तं शैवसिद्धान्तवेदिभिः॥ ३२
द्विखण्डं तु चरं लिङ्गं कुर्वन्त्यज्ञानमोहिताः।
नैव सिद्धान्तवेत्तारो मुनयः शास्त्रकोविदाः॥ ३३
अखण्डं स्थावरं लिङ्गं द्विखण्डं चरमेव च।
ये कुर्वन्ति नरा मूढा न पूजाफलभागिनः॥ ३४

तस्माच्छास्त्रोक्तविधिना अखण्डं चरसंज्ञकम्।
द्विखण्डं स्थावरं लिङ्गं कर्तव्यं परया मुदा॥ ३५
अखण्डे तु चरे पूजा सम्पूर्णफलदायिनी।
द्विखण्डे तु चरे पूजा महाहानिप्रदा स्मृता॥ ३६
अखण्डे स्थावरे पूजा न कामफलदायिनी।
प्रत्यवायकरी नित्यमित्युक्तं शास्त्रवेदिभिः॥ ३७

यदि ब्राह्मण पार्थिव शिवलिंगका पूजन नहीं करता है, तो वह अत्यन्त दारुण शूलप्रोत नामक घोर नरकमें जाता है। किसी भी विधिसे सुन्दर पार्थिवलिंगका निर्माण करना चाहिये, किंतु उसमें पंचसूत्रविधान नहीं करना चाहिये॥ २६-२७॥

उसे अखण्ड रूपमें बनाना चाहिये, खण्डतरूपमें नहीं। खण्डित लिंगका निर्माण करनेवाला पूजाका फल नहीं प्राप्त करता है। मणिलिंग, स्वर्णलिंग, पारदलिंग, स्फटिकलिंग, पुष्परागलिंग और पार्थिवलिंगको अखण्ड ही बनाना चाहिये॥ २८-२९॥

अखण्ड लिंग चरलिंग होता है और दो खण्डवाला अचरलिंग कहा गया है। इस प्रकार चर और अचरलिंगका यह खण्ड-अखण्ड विधान कहा गया है। स्थावरलिंगमें वेदिका भगवती महाविद्याका रूप है और लिंग भगवान् महेश्वरका स्वरूप है। इसलिये स्थावर (अचर)-लिंगोंमें वेदिकायुक्त द्विखण्ड लिंग ही श्रेष्ठ माना गया है॥ ३०-३१॥

द्विखण्ड (वेदिकायुक्त) स्थावरलिंगका विधानपूर्वक निर्माण करना चाहिये। शिवसिद्धान्तके जाननेवालोंने अखण्डलिंगको जंगम (चर)-लिंग माना है। अज्ञानतावश ही कुछ लोग चरलिंगको दो खण्डोंमें (वेदिका और लिंग) बना लेते हैं, शास्त्रोंको जाननेवाले सिद्धान्तमर्मश मुनिजन ऐसा नहीं करते। जो मूढ़जन अचरलिंगको अखण्ड तथा चरलिंगको द्विखण्ड रूपमें बनाते हैं, उन्हें शिवपूजाका फल नहीं प्राप्त होता॥ ३२-३४॥

इसलिये अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रोक्तविधिसे चरलिंगको अखण्ड तथा अचरलिंगको द्विखण्ड बनाना चाहिये। अखण्ड चरलिंगमें की गयी पूजासे सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है। द्विखण्ड चरलिंगकी पूजा महान् अनिष्टकर कही गयी है। उसी प्रकार अखण्ड अचरलिंगकी पूजासे कामना सिद्ध नहीं होती; उससे तो अनिष्ट प्राप्त होता है—ऐसा शास्त्रज्ञ विद्वानोंने कहा है॥ ३५-३७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
पार्थिवशिवलिङ्गपूजनमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें पार्थिव शिवलिंगके पूजनका माहात्म्यवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

पार्थिव शिवलिंगके निर्माणकी रीति तथा वेद-मन्त्रोद्वारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त विधिका वर्णन

सूत उवाच

अथ वैदिकभक्तानां पार्थिवार्चा निगद्यते।
वैदिकेनैव मार्गेण भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ १

सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा सन्ध्यां कृत्वा यथाविधि।
ब्रह्मयज्ञं विधायादौ तत्स्तर्पणमाचरेत्॥ २

नैत्यिकं सकलं कामं विधायानन्तरं पुमान्।
शिवस्मरणपूर्वं हि भस्मरुद्राक्षधारकः॥ ३

वेदोक्तविधिना सम्यक् सम्पूर्णफलसिद्धये।
पूजयेत्परया भक्त्या पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम्॥ ४

नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेऽपि च।
शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते॥ ५

शुद्धप्रदेशसम्भूतां मृदमाहत्य यत्ततः।
शिवलिङ्गं प्रकल्पेत सावधानतया द्विजाः॥ ६

विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे पीतवर्णका।
वैश्ये कृष्णा पादजाते ह्यथवा यत्र या भवेत्॥ ७

सङ्गृह्य मृत्तिकां लिङ्गनिर्माणार्थं प्रयत्नतः।
अतीव शुभदेशे च स्थापयेत्तां मृदं शुभाम्॥ ८

संशोध्य च जलेनापि पिण्डीकृत्य शनैः शनैः।
विधीयेत शुभं लिङ्गं पार्थिवं वेदमार्गतः॥ ९

ततः सम्पूजयेद्दक्त्या भुक्तिमुक्तिफलासये।
तत्प्रकारमहं वच्मि शृणुध्वं सविधानतः॥ १०

सूतजी बोले—हे महर्षियो! अब मैं वैदिक कर्मके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले लोगोंके लिये वेदोक्त मार्गसे ही पार्थिव-पूजाकी पद्धतिका वर्णन करता हूँ। यह पूजा भोग और मोक्ष दोनोंको देनेवाली है। आहिनकसूत्रोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार स्नान और सन्ध्योपासना करके पहले ब्रह्मयज्ञ करे। तत्पश्चात् देवताओं, ऋषियों, सनकादि मनुष्यों और पितरोंका तर्पण करे। मनुष्यको चाहिये कि अपनी रुचिके अनुसार सम्पूर्ण नित्यकर्मको पूर्ण करके शिवस्मरणपूर्वक भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मनोवांछित फलकी सिद्धिके लिये ऊँची भक्तिभावनाके साथ उत्तम पार्थिव लिंगकी वेदोक्त विधिसे भलीभाँति पूजा करे॥ १—४॥

नदी या तालाबके किनारे, पर्वतपर, बनमें, शिवालयमें अथवा और किसी पवित्र स्थानमें पार्थिव-पूजा करनेका विधान है। हे ब्राह्मणो! शुद्ध स्थानसे निकाली हुई मिट्टीको यत्पूर्वक लाकर बड़ी सावधानीके साथ शिवलिंगका निर्माण करे। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीली और शूद्रके लिये काली मिट्टीसे शिवलिंग बनानेका विधान है अथवा जहाँ जो मिट्टी मिल जाय, उसीसे शिवलिंग बनाये॥ ५—७॥

शिवलिंग बनानेके लिये प्रयत्नपूर्वक मिट्टीका संग्रह करके उस शुभ मृत्तिकाको अत्यन्त शुद्ध स्थानमें रखे। फिर उसकी शुद्धि करके जलसे सानकर पिण्ड बना ले और वेदोक्त मार्गसे धीरे-धीरे सुन्दर पार्थिव लिंगकी रचना करे। तत्पश्चात् भोग और मोक्षरूप फलकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे। उस पार्थिवलिंगके पूजनकी जो विधि है, उसे मैं विधानपूर्वक बता रहा हूँ, आप लोग सुनिये॥ ८—१०॥

नमः शिवाय मन्त्रेणार्चनद्रव्यं च प्रोक्षयेत्।
भूरसीति च मन्त्रेण क्षेत्रसिद्धिं प्रकारयेत्॥ ११

आपोऽस्मानिति मन्त्रेण जलसंस्कारमाचरेत्।
नमस्ते रुद्रमन्त्रेण स्फाटिकाबन्धमुच्यते॥ १२

शम्भवायेति मन्त्रेण क्षेत्रशुद्धिं प्रकारयेत्।
कुर्यात्पञ्चामृतस्यापि नमःपूर्वेण प्रोक्षणम्॥ १३

नीलग्रीवाय मन्त्रेण नमःपूर्वेण भक्तिमान्।
चरेच्छङ्करलिङ्गस्य प्रतिष्ठापनमुत्तमम्॥ १४

भक्तिस्तत एतते रुद्रवेति च मन्त्रतः।
आसनं रमणीयं वै दद्याद्वैदिकमार्गकृत्॥ १५

मानो महान्तमिति च मन्त्रेणावाहनं चरेत्।
या ते रुद्रेण मन्त्रेण सञ्चरेदुपवेशनम्॥ १६

मन्त्रेण यामिषुमिति न्यासं कुर्याच्छिवस्य च।
अध्यवोचदिति प्रेम्णाधिवासं मनुनाचरेत्॥ १७

मनुनासौ जीव इति देवतान्यासमाचरेत्।
असौ योऽवसर्पतीति चाचरेदुपसर्पणम्॥ १८

‘ॐ नमः शिवाय’ इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए समस्त पूजन-सामग्रीका प्रोक्षण करे— उसपर जल छिड़के। इसके बाद ‘भूरसि’^१ इत्यादि मन्त्रसे क्षेत्रसिद्धि करे॥ ११॥

फिर ‘आपो अस्मान्०’^२ इस मन्त्रसे जलका संस्कार करे। इसके बाद ‘नमस्ते रुद्र०’^३ इस मन्त्रसे स्फाटिकाबन्ध (स्फटिक शिलाका घेरा) बनानेकी बात कही गयी है। ‘नमः शम्भवाय०’^४ इस मन्त्रसे क्षेत्रशुद्धि और पंचामृतका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् शिवभक्त पुरुष ‘नमः’ पूर्वक ‘नीलग्रीवाय०’^५ मन्त्रसे शिवलिंगकी उत्तम प्रतिष्ठा करे। इसके बाद वैदिक रीतिसे पूजन-कर्म करनेवाला उपासक भक्तिपूर्वक ‘एतते रुद्राव०’^६ इस मन्त्रसे रमणीय आसन दे। ‘मा नो महान्तम०’^७ इस मन्त्रसे आवाहन करे, ‘या ते रुद्र०’^८ इस मन्त्रसे भगवान् शिवको आसनपर समाप्तीन करे। ‘यामिषु०’^९ इस मन्त्रसे शिवके अंगोंमें न्यास करे। ‘अध्यवोचत्०’^{१०} इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक अधिवासन करे। ‘असौ यस्ताम्रो०’^{११} इस मन्त्रसे शिवलिंगमें इष्टदेवता शिवका न्यास करे। ‘असौ योऽवसर्पति०’^{१२} इस मन्त्रसे उपसर्पण (देवताके

१. भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृ॒० ह पृथिवीं मा हि॑ सीः।

२. आपो अस्मान् मातरः शुभ्ययन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वं हि रिं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूर्व एमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाऽ शामां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्यन्। (यजु० ४।२)

३. नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इष्वे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः। (यजु० १६।१)

४. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। (यजु० १६।४।१)

५. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः। (यजु० १६।८।८)

६. एतते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि। (यजु० ३।६।१)

७. मा नो महान्तमुत मा नो अर्थकं मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः। (यजु० १६।१५)

८. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि। (यजु० १६।२)

९. यामिषु गिरिशन्त हस्ते विभर्षस्तवे। शिवां गिरित्रि तां कुरु मा हि॑ सीः पुरुषं जगत्। (यजु० १६।३)

१०. अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहौश्च सर्वाज्ज्यन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव। (यजु० १६।५)

११. असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभुः सुमङ्गलः। ये चैनः रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाःहेड ईमहे। (यजु० १६।६)

१२. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्दृश्रन्दुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः। (यजु० १६।७)

नमोऽस्तु नीलग्रीवायेति पाद्यं मनुनाहरेत्।
अर्थ्य च रुद्रगायत्र्याचमनं त्र्यम्बकेण च॥१९

पयः पृथिव्यां मन्त्रेण पयसा स्नानमाचरेत्।
दधिक्राव्येति मन्त्रेण दधिस्नानं च कारयेत्॥२०

घृतस्नानं खलु घृतं घृतयावेति मन्त्रतः।
मधुव्वाता मधुनक्तं मधुमान्न इति त्र्यचा॥२१

मधुखण्डस्नपनं प्रोक्तमिति पञ्चामृतं स्मृतम्।
अथवा पाद्यमन्त्रेण स्नानं पञ्चामृतेन च॥२२

मानस्तोके इति प्रेम्णा मन्त्रेण कटिबन्धनम्।
नमो धृष्णावे इति वा उत्तरीयं च धारयेत्॥२३

या ते हेतिरिति प्रेम्णा ऋक्वतुष्केण वैदिकः।
शिवाय विधिना भक्तश्वेद्वस्त्रसमर्पणम्॥२४

नमः श्वभ्य इति प्रेम्णा गन्थं दद्यादृचा सुधीः।
नमस्तक्षभ्य इति चाक्षतान्मन्त्रेण चार्पयेत्॥२५

समीप गमन) करे। इसके बाद 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०'१ इस मन्त्रसे इष्टदेवको पाद्य समर्पित करे। 'रुद्रगायत्री'२ से अर्थ्य दे। 'त्र्यम्बकं'३ मन्त्रसे आचमन कराये। 'पयः पृथिव्याम०'४ इस मन्त्रसे दुग्धस्नान कराये। 'दधिक्राव्यो०'५ इस मन्त्रसे दधिस्नान कराये। 'घृतं घृतपावा०'६ इस मन्त्रसे घृतस्नान कराये। 'मधु वाता०'७, 'मधु नक्तं०'८, 'मधुमान्नो०'९—इन तीन ऋचाओंसे मधुस्नान और शर्करा-स्नान कराये। इन दुग्ध आदि पाँच वस्तुओंको पंचामृत कहते हैं अथवा पाद्यसमर्पणके लिये कहे गये 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०' इत्यादि मन्त्रद्वारा पंचामृतसे स्नान कराये। तदनन्तर 'मा नस्तोके०'१० इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक भगवान् शिवको कटिबन्ध (करधनी) अर्पित करे। 'नमो धृष्णावे०'११ इस मन्त्रका उच्चारण करके आराध्य देवताको उत्तरीय धारण कराये। 'या ते हेतिः०'१२ इत्यादि चार ऋचाओंको पढ़कर वेदज्ञ भक्त प्रेमसे विधिपूर्वक भगवान् शिवके लिये वस्त्र [एवं यज्ञोपवीत] समर्पित करे। इसके बाद 'नमः श्वभ्य०'१३ इत्यादि मन्त्रको

१. यह मन्त्र पहले दिया जा चुका है।
२. तत्पुरुषाय विद्यहे महादेवाय धीमहि तनो रुद्रः प्रचोदयात्।
३. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः। (यजु० ३।६०)
४. पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्। (यजु० १८।३६)
५. दधिक्राव्यो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूर्ण्षि तारिषत्। (यजु० २३।३२)
६. घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा। (यजु० ६।१९)
७. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। (यजु० १३।२७)
८. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्यार्थवः रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। (यजु० १३।२८)
९. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ॒ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। (यजु० १३।२९)
१०. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे। (यजु० १६।१६)
११. नमो धृष्णावे च प्रमृशाय च नमो निषड्ङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च। (यजु० १६।३६)
१२. या ते हेतिर्मिदुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्षमया परि भुज (११)। परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणकु विश्वतः। अथो य इषुधिस्तवारे अस्मनि धेहि तम् (१२)। अवतत्य धनुष्टवः सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव (१३)। नमस्त आयुधायानातताय धृष्णावे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने (१४)। (यजु० १६)
१३. नमः श्वभ्यः श्वपतिर्भ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च। (यजु० १६।२८)

नमः पार्याय इति वा पुष्टं मन्त्रेण चार्पयेत्।

नमः पर्णाय इति वा बिल्वपत्रसमर्पणम्॥ २६

नमः कपर्दिने चेति धूपं दद्याद्यथाविधि।

दीपं दद्याद्यथोक्तं तु नम आशव इत्यृचा॥ २७

नमो ज्येष्ठाय मन्त्रेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम्।

मनुना त्र्यम्बकमिति पुनराचमनं स्मृतम्॥ २८

इमा रुद्रायेति ऋचा कुर्यात्कलसमर्पणम्।

नमो व्रज्यायेति ऋचा सकलं शम्भवेऽर्पयेत्॥ २९

मानो महान्तमिति च मानस्तोके इति ततः।

मन्त्रद्वयेनैकादशाक्षते रुद्रान्प्रपूजयेत्॥ ३०

हिरण्यगर्भ इति त्र्यृचा दक्षिणां हि समर्पयेत्।

देवस्यत्वेति मन्त्रेण ह्यभिषेकं चरेद्बुधः॥ ३१

पढ़कर शुद्ध बुद्धिवाला भक्त पुरुष भगवान्को प्रेमपूर्वक गन्थ (सुगन्धित चन्दन एवं रोली) चढ़ाये। ‘नमस्तक्षभ्यो०’^१ इस मन्त्रसे अक्षत अर्पित करे। ‘नमः पार्याय०’^२ इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये। ‘नमः पर्णाय०’^३ इस मन्त्रसे बिल्वपत्र समर्पण करे। ‘नमः कपर्दिने च०’^४ इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक धूप दे। ‘नम आशवे०’^५ इस ऋचासे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दीप निवेदित करे। तत्पश्चात् [हाथ धोकर] ‘नमो ज्येष्ठाय०’^६ इस मन्त्रसे उत्तम नैवेद्य अर्पित करे। फिर पूर्वोक्त त्र्यम्बक मन्त्रसे आचमन कराये—ऐसा कहा गया है। ‘इमा रुद्राय०’^७ इस ऋचासे फल समर्पण करे। फिर ‘नमो व्रज्याय०’^८ इस मन्त्रसे भगवान् शिवको अपना सब कुछ समर्पित कर दे। तदनन्तर ‘मा नो महान्तम०’ तथा ‘मा नस्तोके०’—इन पूर्वोक्त दो मन्त्रोंद्वारा केवल अक्षतोंसे ग्यारह रुद्रोंका पूजन करे। फिर ‘हिरण्यगर्भः०’^९ इत्यादि मन्त्रसे जो तीन ऋचाओंके रूपमें पठित है, दक्षिणा चढ़ाये। ‘देवस्य त्वा०’^{१०} इस मन्त्रसे विद्वान् पुरुष आराध्यदेवका अभिषेक करे। दीपके लिये

१. नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कमरिभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः। (यजु० १६। २७)

२. नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थाय च कूल्याय च नमः शष्याय च फेन्याय च। (यजु० १६। ४२)

३. नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिष्ठते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्धयो धनुष्कृद्धयश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः। (यजु० १६। ४६)

४. नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीदुष्टमाय चेषुमते च। (यजु० १६। २९)

५. नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्रयाय च शीभ्याय च नम ऊर्ध्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च। (यजु० १६। ३१)

६. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च। (यजु० १६। ३२)

७. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। (यजु० १६। ४८)

८. नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गह्वेष्याय च। (यजु० १६। ४४)

९. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम। (यजु० १३। ४)

१०. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भेषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिज्वामि। (यजु० २०। ३)

दीपमन्त्रेण वा शम्भोर्नीराजनविधिं चरेत्।
पुष्पाञ्जलिं चरेद्वकत्या इमा रुद्राय च त्रृचा॥ ३२

मानो महान्तमिति च चरेत्प्राज्ञः प्रदक्षिणाम्।
मानस्तोकेति मन्त्रेण साष्टाङ्गं प्रणमेत्सुधीः॥ ३३

एष ते इति मन्त्रेण शिवमुद्रां प्रदर्शयेत्।
यतो यत इत्यभयां ज्ञानाख्यां त्र्यम्बकेण च॥ ३४

नमः सेनेति मन्त्रेण महामुद्रां प्रदर्शयेत्।
दर्शयेद्वेनुमुद्रां च नमो गोभ्य ऋचानया॥ ३५

पञ्च मुद्राः प्रदर्शयाथ शिवमन्त्रजपं चरेत्।
शतरुद्रियमन्त्रेण जपेद् वेदविचक्षणः॥ ३६

ततः पञ्चाङ्गपाठं च कुयाद् वेदविचक्षणः।
देवागात्मिति मन्त्रेण कुर्याच्छब्दोर्विसर्जनम्॥ ३७

इत्युक्तः शिवपूजाया व्यासतो वैदिको विधिः।

समासतश्च शृणुत वैदिकं विधिमुत्तमम्॥ ३८

ऋचा सद्योजातमिति मृदाहरणमाचरेत्।
वामदेवाय इति च जलप्रक्षेपमाचरेत्॥ ३९

अघोरेण च मन्त्रेण लिङ्गनिर्माणमाचरेत्।
तत्पुरुषाय मन्त्रेणाह्वानं कुर्याद्यथाविधि॥ ४०

बताये हुए 'नम आशवेऽ' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शिवकी नीराजना (आरती) करे। तत्पश्चात् 'इमा रुद्राय०' इत्यादि तीन ऋचाओंसे भक्तिपूर्वक रुद्रदेवको पुष्पाञ्जलि अर्पित करे। 'मा नो महान्तम्०' इस मन्त्रसे विज्ञ उपासक पूजनीय देवताकी परिक्रमा करे। फिर उत्तम बुद्धिवाला उपासक 'मा नस्तोके०' इस मन्त्रसे भगवान्को साष्टांग प्रणाम करे। 'एष ते०'^१ इस मन्त्रसे शिवमुद्राका प्रदर्शन करे। 'यतो यतः०'^२ इस मन्त्रसे अभय नामक मुद्राका, 'त्र्यम्बकं' मन्त्रसे ज्ञान नामक मुद्राका तथा 'नमः सेना०'^३ इत्यादि मन्त्रसे महामुद्राका प्रदर्शन करे। 'नमो गोभ्य०'^४ इस ऋचाद्वारा धेनुमुद्रा दिखाये। इस तरह पाँच मुद्राओंका प्रदर्शन करके शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे अथवा वेदज्ञ पुरुष 'शतरुद्रिय'^५ मन्त्रकी आवृत्ति करे। तत्पश्चात् वेदज्ञ पुरुष पंचांग पाठ करे। तदनन्तर 'देवा गातु०'^६ इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शंकरका विसर्जन करे। इस प्रकार शिवपूजाकी वैदिक विधिका विस्तारसे प्रतिपादन किया गया॥ १२—३७^{१/२}॥

[हे महर्षियो!] अब संक्षेपमें पार्थिवपूजनकी वैदिक विधिको सुनें। 'सद्योजातम्०'^७ इस ऋचासे पार्थिवलिंग बनानेके लिये मिट्टी ले आये। 'वामदेवाय०'^८ मन्त्र पढ़कर उसमें जल डाले। [जब मिट्टी सनकर तैयार हो जाय, तब] 'अघोर०'^९ मन्त्रसे लिंग निर्माण करे। फिर 'तत्पुरुषाय०'^{१०} इस मन्त्रसे उसमें भगवान् शिवका विधिवत् आवाहन

१. एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भाग आख्यस्ते पशुः॥ (यजु० ३।५७)
२. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ (यजु० ३६।२३)
३. नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः। क्षत्रभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः॥ (यजु० १६।२६)
४. नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च। नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥ (गोमतीविद्या)
५. यजुर्वेदका वह अंश, जिसमें रुद्रके सौ या उससे अधिक नाम आये हैं और उनके द्वारा रुद्रदेवकी स्तुति की गयी है। (देखिये यजु० अध्याय १६)
६. देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमिति। मनसस्पत इमं देव यज्ञः स्वाहा वाते धाः॥ (यजु० ८।२१)
७. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्ववाय नमः॥
८. ३० वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः। श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः। कालाय नमः। कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो। बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः। सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।
९. ३० अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः। सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।
१०. ३० तत्पुरुषाय विद्यहे महादेवाय धीमहि तनो रुद्रः। प्रचोदयात्।

संयोजयेद्वेदिकायामीशानमनुना हरम्।
अन्यत्सर्वं विधानं च कुर्यात्संक्षेपतः सुधीः ॥ ४१

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण गुरुदत्तेन वा तथा।
कुर्यात्पूजां षोडशोपचारेण विधिवत्सुधीः ॥ ४२

भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि।
उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने ॥ ४३

अनेन मनुना वापि पूजयेच्छङ्करं सुधीः।
सुभक्त्या च भ्रमं त्यक्त्वा भक्त्यैव फलदः शिवः ॥ ४४

इत्यपि प्रोक्तमादृत्य वैदिकं क्रमपूजनम्।
प्रोच्यतेऽन्यविधिः सम्यक्साधारणतया द्विजाः ॥ ४५

पूजा पार्थिवलिङ्गस्य संप्रोक्ता शिवनामभिः।
तां शृणुध्वं मुनिश्रेष्ठाः सर्वकामप्रदायिनीम् ॥ ४६

हरो महेश्वरः शम्भुः शूलपाणिः पिनाकधृक्।
शिवः पशुपतिश्वैव महादेव इति क्रमात् ॥ ४७

मृदाहरणसंघटप्रतिष्ठाह्वानमेव च।
स्नपनं पूजनं चैव क्षमस्वेति विसर्जनम् ॥ ४८

ॐकारादिचतुर्थ्यन्तर्नमोऽन्तर्नामभिः क्रमात्।
कर्तव्याश्र क्रियाः सर्वा भक्त्या परमया मुदा ॥ ४९

करे। तदनन्तर 'ईशान०'* मन्त्रसे भगवान् शिवको वेदीपर स्थापित करे। इनके सिवाय अन्य सब विधानोंको भी शुद्ध बुद्धिवाला उपासक संक्षेपसे ही सम्पन्न करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष पंचाक्षर मन्त्रसे अथवा गुरुके द्वारा दिये हुए अन्य किसी शिवसम्बन्धी मन्त्रसे सोलह उपचारोंद्वारा विधिवत् पूजन करे अथवा—'भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि। उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने ॥'

—इस मन्त्रद्वारा विद्वान् उपासक भगवान् शंकरकी पूजा करे। वह भ्रम छोड़कर उत्तम भक्तिसे शिवकी आराधना करे; क्योंकि भगवान् शिव भक्तिसे ही [मनोवांछित] फल देते हैं ॥ ३८—४४ ॥

हे ब्राह्मणो! यह जो वैदिक विधिसे पूजनका क्रम बताया गया है, इसका पूर्णरूपसे आदर करता हुआ मैं पूजाकी एक दूसरी विधि भी बता रहा हूँ, जो उत्तम होनेके साथ ही सर्वसाधारणके लिये उपयोगी है। हे मुनिवरो! पार्थिवलिंगकी पूजा भगवान् शिवके नामोंसे बतायी गयी है। वह पूजा सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली है, मैं उसे बताता हूँ, सुनो! हर, महेश्वर, शम्भु, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति और महादेव—[ये क्रमशः शिवके आठ नाम कहे गये हैं।] इनमेंसे प्रथम नामके द्वारा अर्थात् 'ॐ हराय नमः' का उच्चारण करके पार्थिवलिंग बनानेके लिये मिट्टी लाये। दूसरे नाम अर्थात् 'ॐ महेश्वराय नमः' का उच्चारण करके लिंगनिर्माण करे। फिर 'ॐ शम्भवे नमः' बोलकर उस पार्थिवलिंगकी प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् 'ॐ शूलपाणये नमः' कहकर उस पार्थिवलिंगमें भगवान् शिवका आवाहन करे। 'ॐ पिनाकधृषे नमः' कहकर उस शिवलिंगको नहलाये। 'ॐ शिवाय नमः' बोलकर उसकी पूजा करे। फिर 'ॐ पशुपतये नमः' कहकर क्षमा-प्रार्थना करे और अन्तमें 'ॐ महादेवाय नमः' कहकर आराध्यदेवका विसर्जन कर दे। इस प्रकार प्रत्येक नामके आदिमें 'ॐ' कार और अन्तमें चतुर्थी विभक्तिके साथ 'नमः' पद लगाकर बड़े आनन्द और भक्तिभावसे [पूजनसम्बन्धी] सारे कार्य करने चाहिये ॥ ४५—४९ ॥

* ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम्॥

कृत्वा न्यासविधिं सम्यक् षडङ्गं करयोस्तथा ।
षडक्षरेण मन्त्रेण ततो ध्यानं समाचरेत् ॥ ५०

कैलासपीठासनमध्यसंस्थं

भक्तैः सनन्दादिभिरच्चर्यमानम् ।
भक्तार्तिदावानलमप्रमेयं
ध्यायेदुमालिङ्गितविश्वभूषणम् ॥ ५१

ध्यायेनित्यं

रजतगिरिनिभं महेशं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं चारुचन्द्रावतंसं
परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात्सुतममरगणै-
व्याघ्रिकृतिं वसानम्
विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥ ५२

इति ध्यात्वा च सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ।
जपेत्पञ्चाक्षरं मन्त्रं गुरुदत्तं यथाविधि ॥ ५३

स्तुतिभिश्वैव देवेशं स्तुवीत प्रणमन्सुधीः ।
नानाभिधाभिर्विप्रेन्द्राः पठेद् वै शतरुद्रियम् ॥ ५४

ततः साक्षतपुष्पाणि गृहीत्वाञ्जलिना मुदा ।
प्रार्थयेच्छङ्करं भक्त्या मन्त्रैरभिः सुभक्तिः ॥ ५५

तावकस्त्वदगुणप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ।
कृपानिधे इति ज्ञात्वा भूतनाथ प्रसीद मे ॥ ५६

षडक्षरमन्त्रसे अंगन्यास और करन्यासकी विधि भलीभाँति सम्पन्न करके नीचे लिखे अनुसार ध्यान करे—

कैलास पर्वतपर एक सुन्दर सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान, सनन्द आदि भक्तोंसे पूजित, भक्तोंके दुःखरूप दावानलको नष्ट कर देनेवाले, अप्रमेय, उमाके साथ समासीन तथा विश्वके भूषणस्वरूप भगवान् शिवका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् महेश्वरका प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करे—उनकी अंगकान्ति चाँदीके पर्वतकी भाँति गौर है, वे अपने मस्तकपर मनोहर चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं, रत्नोंके आभूषण धारण करनेसे उनका श्रीअंग और भी उद्धासित हो उठा है, उनके चार हाथोंमें क्रमशः परशु, मृगमुद्रा, वर एवं अभयमुद्रा सुशोभित हैं, वे सदा प्रसन्न रहते हैं। कमलके आसनपर बैठे हुए हैं, देवतालोग चारों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं, उन्होंने वस्त्रके रूपमें व्याघ्रचर्म धारण कर रखा है, वे इस विश्वके आदि हैं, बीज (कारण)-रूप हैं, सबका समस्त भय हर लेनेवाले हैं, उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं ॥ ५०—५२ ॥

इस प्रकार ध्यान करके तथा उत्तम पार्थिव-लिंगका पूजन करके गुरुके दिये हुए पंचाक्षरमन्त्रका विधिपूर्वक जप करे। हे विप्रवरो! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह देवेश्वर शिवको प्रणाम करते हुए नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन करे तथा शतरुद्रिय (यजु० १६वें अध्यायके मन्त्रों)-का पाठ करे। तत्पश्चात् अंजलिमें अक्षत और फूल लेकर उत्तम भक्तिभावसे निमांकित मन्त्रोंको पढ़ते हुए प्रेम और प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करे— ॥ ५३—५५ ॥

‘सबको सुख देनेवाले हे कृपानिधान! हे भूतनाथ! हे शिव! मैं आपका हूँ, आपके गुणोंमें ही मेरे प्राण बसते हैं अथवा आपके गुण ही मेरे प्राण—मेरे जीवनसर्वस्व हैं, मेरा चित्त सदा आपके ही चिन्तनमें लगा हुआ है—यह जानकर मुझपर प्रसन्न होइये,

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया ।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शङ्कर ॥ ५७

अहं पापी महानद्य पावनश्च भवान्महान् ।
इति विज्ञाय गौरीश यदिच्छसि तथा कुरु ॥ ५८

वेदैः पुराणैः सिद्धान्तैर्द्विभिर्विविधैरपि ।
न ज्ञातोऽसि महादेव कुतोऽहं त्वां सदाशिव ॥ ५९

यथा तथा त्वदीयोऽस्मि सर्वभावैर्महेश्वर ।
रक्षणीयस्त्वयाहं वै प्रसीद परमेश्वर ॥ ६०

इत्येवं चाक्षतान्युष्माण्यारोप्य च शिवोपरि ।
प्रणमेद्वक्तिः शम्भुं साष्टाङ्गं विधिवन्मुने ॥ ६१

ततः प्रदक्षिणां कुर्याद्यथोक्तविधिना सुधीः ।
पुनः स्तुवीत देवेशं स्तुतिभिः श्रद्धयान्वितः ॥ ६२

ततो गलरवं कृत्वा प्रणमेच्छुचिनप्रथीः ।
कुर्याद्विज्ञप्तिमादृत्य विसर्जनमथाचरेत् ॥ ६३

इत्युक्ता मुनिशार्दूलाः पार्थिवार्चा विधानतः ।
भुक्तिदा मुक्तिदा चैव शिवभक्तिविवर्धिनी ॥ ६४

इत्यध्यायं सुचित्तेन यः पठेच्छृणुयादपि ।
सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वान्कामानवाज्ञुयात् ॥ ६५

आयुरारोग्यदं चैव यशस्यं स्वर्गमेव च ।
पुत्रपौत्रादिसुखदमाख्यानमिदमुत्तमम् ॥ ६६

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
पार्थिवशिवलिङ्गपूजनविधिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें पार्थिव शिवलिंगके
पूजनकी विधिका वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २० ॥

कृपा कीजिये । हे शंकर ! मैंने अनजानमें अथवा
जानबूझकर यदि कभी आपका जप और पूजन आदि
किया हो, तो आपकी कृपासे वह सफल हो जाय ।
हे गौरीनाथ ! मैं इस समय महान् पापी हूँ और आप
सदासे ही परम महान् पतितपावन हैं—इस बातका
विचार करके आप जैसा चाहें, वैसा करें । हे महादेव !
हे सदाशिव ! वेदों, पुराणों, नाना प्रकारके शास्त्रीय
सिद्धान्तों और विभिन्न महर्षियोंने भी अबतक आपको
पूर्णरूपसे नहीं जाना है, तो फिर मैं कैसे जान सकता
हूँ । हे महेश्वर ! मैं जैसा हूँ, वैसा ही, उसी रूपमें
सम्पूर्ण भावसे आपका हूँ, आपके आश्रित हूँ, इसलिये
आपसे रक्षा पानेके योग्य हूँ । हे परमेश्वर ! आप
मुझपर प्रसन्न होइये ।' हे मुने ! इस प्रकार प्रार्थना
करके हाथमें लिये हुए अक्षत और पुष्पको भगवान्
शिवके ऊपर चढ़ाकर उन शम्भुदेवको भक्तिभावसे
विधिपूर्वक साष्टांग प्रणाम करे । तदनन्तर शुद्ध
बुद्धिवाला उपासक शास्त्रोक्त विधिसे इष्टदेवकी
परिक्रमा करे । फिर श्रद्धापूर्वक स्तुतियोंद्वारा देवेश्वर
शिवकी स्तुति करे । इसके बाद गला बजाकर (गलेसे
अव्यक्त शब्दका उच्चारण करके) पवित्र एवं विनीत
चित्तवाला साधक भगवान्‌को प्रणाम करे । फिर
आदरपूर्वक विज्ञप्ति करे और उसके बाद विसर्जन
करे ॥ ५६—६३ ॥

हे मुनिवरो ! इस प्रकार विधिपूर्वक पार्थिवपूजा
बतायी गयी, जो भोग और मोक्ष देनेवाली तथा भगवान्
शिवके प्रति भक्तिभावको बढ़ानेवाली है । जो मनुष्य
इस अध्यायका शुद्धचित्तसे पाठ अथवा श्रवण करता
है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सभी कामनाओंको
प्राप्त करता है । यह उत्तम कथा दीर्घायुष्य, आरोग्य,
यश, स्वर्ग, पुत्र-पौत्र आदि सभी सुखोंको प्रदान करनेवाली
है ॥ ६४—६६ ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

कामनाभेदसे पार्थिवलिंगके पूजनका विधान

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।
सम्यगुक्तं त्वया तात पार्थिवाचार्चाविधानकम् ॥ १
कामनाभेदमाश्रित्य सङ्ख्यां ब्रूहि विधानतः ।
शिवपार्थिवलिङ्गानां कृपया दीनवत्सल ॥ २

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे पार्थिवाचार्चाविधानकम् ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ३
अकृत्वा पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत् ।
वृथा भवति सा पूजा दमदानादिकं वृथा ॥ ४
सङ्ख्या पार्थिवलिङ्गानां यथाकामं निगद्यते ।
सङ्ख्या सद्यो मुनिश्रेष्ठ निश्चयेन फलप्रदा ॥ ५
प्रथमावाहनं तत्र प्रतिष्ठा पूजनं पृथक् ।
लिङ्गाकारं समं तत्र सर्वं ज्ञेयं पृथक्पृथक् ॥ ६

विद्यार्थी पुरुषः प्रीत्या सहस्रमितपार्थिवम् ।
पूजयेच्छिवलिङ्गं हि निश्चयात्तत्फलप्रदम् ॥ ७
नरः पार्थिवलिङ्गानां धनार्थी च तदर्थकम् ।
पुत्रार्थी सार्धसाहस्रं वस्त्रार्थी शतपञ्चकम् ॥ ८

मोक्षार्थी कोटिगुणितं भूकामश्च सहस्रकम् ।
दयार्थी च त्रिसाहस्रं तीर्थार्थी द्विसहस्रकम् ॥ ९
सुहृत्कामी त्रिसाहस्रं वश्यार्थी शतमष्टकम् ।
मारणार्थी सप्तशतं मोहनार्थी शताष्टकम् ॥ १०

उच्चाटनपरश्चैव सहस्रं च यथोक्ततः ।
स्तम्भनार्थी सहस्रं तु द्वेषणार्थी तदर्थकम् ॥ ११
निगडान्मुक्तिकामस्तु सहस्रं सार्धमुत्तमम् ।
महाराजभये पञ्चशतं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥ १२

ऋषिगण बोले—हे व्यासशिष्य सूतजी! हे महाभाग! आपको नमस्कार है। हे तात! आपने अच्छी प्रकारसे पार्थिवाचार्चनकी विधि बतायी। अब सकाम पूजनमें मनोवांछित पदार्थके अनुसार कितनी संख्यामें पार्थिव लिंगोंके पूजनकी विधि है, हे दीनवत्सल! इसे कृपापूर्वक बताइये ॥ १-२ ॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! आप सब लोग पार्थिव-पूजनकी विधिका श्रवण करें, जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पार्थिवलिंगके पूजनको छोड़कर जो लोग अन्य देवोंके यजनमें लगे रहते हैं, उनकी वह पूजा, तप तथा दानादि व्यर्थ हो जाता है ॥ ३-४ ॥

अब मैं कामनाके अनुसार पार्थिवलिंगोंकी संख्या बताता हूँ, हे मुनिश्रेष्ठ! अधिक संख्यामें अर्चन तो निश्चय ही फलदायी होता है। प्रथम आवाहन, तब प्रतिष्ठा, तदनन्तर सभी लिंगोंका पूजन अलग-अलग करना चाहिये। लिंगोंका आकार तो एक समान ही रखना चाहिये ॥ ५-६ ॥

विद्याप्राप्तिकी कामनासे पुरुष भक्तिपूर्वक एक हजार पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन करे। इससे निश्चय ही उस फलकी प्राप्ति हो जाती है। धन चाहनेवाले पुरुषको उसके आधे (पाँच सौ), पुत्र चाहनेवालेको डेढ़ हजार और वस्त्रोंकी आकांक्षावालेको पाँच सौ शिवलिंगोंका पूजन करना चाहिये ॥ ७-८ ॥

मोक्षकी कामनावाले व्यक्तिको एक करोड़, भूमिकी अभिलाषावालेको एक हजार, दयाप्राप्तिकी इच्छावालेको तीन हजार और तीर्थाटनकी इच्छावालेको दो हजार शिवलिंगोंकी पूजा करनी चाहिये। मित्रप्राप्तिकी इच्छावालेको तीन हजार तथा अभिचार कर्मोंमें पाँच सौसे लेकर एक हजारतक पार्थिव शिवलिंगोंके पूजनकी विधि है। (कारागार आदिके) बन्धनसे छुटकारेकी इच्छासे डेढ़ हजार तथा राजभयसे मुक्तिकी इच्छासे पाँच सौ शिवलिंगोंका पूजन बुद्धिमानोंको जानना चाहिये ॥ ९-१२ ॥

चौरादिसङ्कटे ज्ञेयं पार्थिवानां शतद्वयम् ।
डाकिन्यादिभये पञ्चशतमुक्तं च पार्थिवम् ॥ १३

दारिद्र्ये पञ्चसाहस्रमयुतं सर्वकामदम् ।
अथ नित्यविधिं वक्ष्ये शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥ १४

एकं पापहरं प्रोक्तं द्विलिङ्गं चार्थसिद्धिदम् ।
त्रिलिङ्गं सर्वकामानां कारणं परमीरितम् ॥ १५

उत्तरोत्तरमेवं स्यात्पूर्वोक्तगणनावधि ।
मतान्तरमथो वक्ष्ये सद्ख्यायां मुनिभेदतः ॥ १६

लिङ्गानामयुतं कृत्वा पार्थिवानां सुबुद्धिमान् ।
निर्भयो हि भवेन्नूनं महाराजभयं हरेत् ॥ १७

कारागृहादिमुक्त्यर्थमयुतं कारयेद् बुधः ।
डाकिन्यादिभये सप्तसहस्रं कारयेत्तथा ॥ १८

अपुत्रः पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणि प्रकारयेत् ।
लिङ्गानामयुतेनैव कन्यकासन्ततिं लभेत् ॥ १९

लिङ्गानामयुतेनैव विष्ववाद्यैश्वर्यमाप्नुयात् ।
लिङ्गानां प्रयुतेनैव हृतुलां श्रियमाप्नुयात् ॥ २०

कोटिमेकां तु लिङ्गानां यः करोति नरो भुवि ।
शिव एव भवेत्सोऽपि नात्र कार्या विचारणा ॥ २१

अर्चा पार्थिवलिङ्गानां कोटियज्ञफलप्रदा ।
भुक्तिदा मुक्तिदा नित्यं ततः कामार्थिनां नृणाम् ॥ २२

विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः ।
महाहानिर्भवेत्स्य दुर्वृत्तस्य दुरात्मनः ॥ २३

चोर आदिके संकटसे बचनेके लिये दो सौ और डाकिनी आदिके भयसे मुक्तिहेतु पाँच सौ पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन बताया गया है । दरिद्रतासे छुटकारेके लिये पाँच हजार और सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये दस हजार पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन करना चाहिये । हे मुनिश्रेष्ठो ! अब मैं नित्यपूजनविधि बताता हूँ, आप लोग सुनें ॥ १३-१४ ॥

एक पार्थिवलिंगका नित्य पूजन पापोंका नाश करनेवाला और दो लिंगोंका पूजन अर्थकी सिद्धि करनेवाला बताया गया है । तीन लिंगोंका पूजन सभी कामनाओंकी सिद्धिका मुख्य हेतु कहा गया है । पूर्वमें बतायी गयी संख्याविधिमें भी उत्तरोत्तर संख्या अधिक फलदायिनी होती है । अन्य मुनियोंके मतसे संख्याका जो अन्तर है, वह भी अब बताता हूँ ॥ १५-१६ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य दस हजार पार्थिव शिवलिंगोंका अर्चन करके महान् राजभयसे भी मुक्त होकर निर्भय हो जाता है । कारागार आदिसे छूटनेके लिये दस हजार लिंगोंका अर्चन करना चाहिये और डाकिनी आदिके भयसे छूटनेके लिये सात हजार लिंगार्चन कराना चाहिये ॥ १७-१८ ॥

पुत्रहीन पुरुष पचपन हजार लिंगार्चन करे, कन्या-सन्तानकी प्राप्ति दस हजार लिंगार्चनसे हो जाती है । दस हजार लिंगार्चनसे विष्णु आदि देवोंके समान ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है । दस लाख शिवलिंगार्चनसे अतुल सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है ॥ १९-२० ॥

जो मनुष्य पृथ्वीपर एक करोड़ शिवलिंगोंका अर्चन कर लेता है, वह तो शिवरूप ही हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये । पार्थिवपूजा करोड़ैं यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली है । इसलिये सकाम भक्तोंके लिये यह भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करती है । जिस मनुष्यका समय रोज बिना लिंगार्चनके व्यतीत होता है, उस दुराचारी तथा दुष्टात्मा व्यक्तिकी महान् हानि होती है ॥ २१—२३ ॥

एकतः सर्वदानानि व्रतानि विविधानि च।
तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गार्चा चैकतः स्मृता ॥ २४

कलौ लिङ्गार्चनं श्रेष्ठं यथा लोके प्रदृश्यते।
तथान्यनास्ति शास्त्राणामेष सिद्धान्तनिश्चयः ॥ २५

भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं विविधापनिवारणम्।
पूजयित्वा नरो नित्यं शिवसायुज्यमाज्जयात् ॥ २६

शिवनाममयं लिङ्गं नित्यं पूज्यं महर्षिभिः।
यतश्च सर्वलिङ्गेषु तस्मात्पूज्यं विधानतः ॥ २७

उत्तमं मध्यमं नीचं त्रिविधं लिङ्गमीरितम्।
मानतो मुनिशार्दूलास्तच्छृणुध्वं वदाम्यहम् ॥ २८

चतुरङ्गुलमुच्छ्रायं रम्यं वेदिकया युतम्।
उत्तमं लिङ्गमाख्यातं मुनिभिः शास्त्रकोविदैः ॥ २९

तदर्द्धं मध्यमं प्रोक्तं तदर्द्धमध्यमं स्मृतम्।
इत्थं त्रिविधमाख्यातमुत्तरोत्तरतः परम् ॥ ३०

अनेकलिङ्गं यो नित्यं भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
पूजयेत्स लभेत्कामान्मनसा मानसेप्सितान् ॥ ३१

न लिङ्गाराधनादन्यत्पुण्यं वेदचतुष्टये।
विद्यते सर्वशास्त्राणामेष एव विनिश्चयः ॥ ३२

सर्वमेतत्परित्यज्य कर्मजालमशेषतः।
भक्त्या परमया विद्वांलिङ्गमेकं प्रपूजयेत् ॥ ३३

लिङ्गेऽर्चितेऽर्चितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
संसाराम्बुधिमग्नानां नान्यत्तरणसाधनम् ॥ ३४

अज्ञानतिमिरान्धानां विषयासक्तचेतसाम्।
प्लवो नान्योऽस्ति जगति लिङ्गाराधनमन्तरा ॥ ३५

एक ओर सारे दान, विविध व्रत, तीर्थ, नियम और यज्ञ हैं तथा उनके समकक्ष दूसरी ओर पार्थिव शिवलिंगका पूजन माना गया है। कलियुगमें तो जैसा श्रेष्ठ लिंगार्चन दिखायी देता है, वैसा अन्य कोई साधन नहीं है—यह समस्त शास्त्रोंका निश्चित सिद्धान्त है। शिवलिंग भोग और मोक्ष देनेवाला तथा विविध आपदाओंका निवारण करनेवाला है। इसका नित्य अर्चन करके मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ २४—२६ ॥

महर्षियोंको शिवनाममय इस लिंगकी नित्य पूजा करनी चाहिये। यह सभी लिंगोंमें श्रेष्ठ है, अतः विधानपूर्वक इसकी पूजा करनी चाहिये। हे मुनिवरो! परिमाणके अनुसार लिंग तीन प्रकारके कहे गये हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। उसे आपलोग सुनें; मैं बताता हूँ। जो चार आँगुल ऊँचा और देखनेमें सुन्दर हो तथा वेदीसे युक्त हो, उस शिवलिंगको शास्त्रज्ञ महर्षियोंने उत्तम कहा है। उससे आधा मध्यम और उससे भी आधा अधम माना गया है। इस तरह तीन प्रकारके शिवलिंग कहे गये हैं, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ २७—३० ॥

जो भक्ति तथा श्रद्धासे युक्त होकर अनेक लिंगोंकी मनसे नित्य पूजा करता है, वह मनोवांछित कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है ॥ ३१ ॥

चारों वेदोंमें लिंगार्चनसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है; सभी शास्त्रोंका भी यह निर्णय है ॥ ३२ ॥

विद्वान् को चाहिये कि इस समस्त कर्म-प्रपञ्चका त्याग करके परम भक्तिके साथ एकमात्र शिवलिंगका विधिवत् पूजन करे ॥ ३३ ॥

केवल शिवलिंगकी पूजा हो जानेपर समग्र चराचर जगत्की पूजा हो जाती है। संसार-सागरमें ढूबे हुए लोगोंके तरनेका अन्य कोई भी साधन नहीं है ॥ ३४ ॥

अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे हुए तथा विषय-वासनाओंमें आसक्त चित्तवाले लोगोंके लिये इस जगत्में [भवसागरसे पार होनेहेतु] लिंगार्चनके अतिरिक्त अन्य कोई नौका नहीं है ॥ ३५ ॥

हरिब्रह्मादयो देवा मुनयो यक्षराक्षसाः ।
गन्धर्वाश्चारणाः सिद्धा दैतेया दानवास्तथा ॥ ३६
नागाः शेषप्रभृतयो गरुडाद्याः खगास्तथा ।
सप्रजापतयश्चान्ये मनवः किनरा नराः ॥ ३७
पूजयित्वा महाभक्त्या लिङ्गं सर्वार्थसिद्धिदम् ।
प्राप्ताः कामानभीष्टांश्च तांस्तान्सर्वान्हदि स्थितान् ॥ ३८
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा प्रतिलोमजः ।
पूजयेत्सततं लिङ्गं तत्त्वमन्त्रेण सादरम् ॥ ३९
किं बहूत्तेन मुनयः स्त्रीणामपि तथान्यतः ।
अधिकारोऽस्ति सर्वेषां शिवलिङ्गार्चने द्विजाः ॥ ४०

द्विजानां वैदिकेनापि मार्गेणाराधनं वरम् ।
अन्येषामपि जन्तूनां वैदिकेन न सम्पत्तम् ॥ ४१
वैदिकानां द्विजानां च पूजा वैदिकमार्गतः ।
कर्तव्या नान्यमार्गेण इत्याह भगवान् शिवः ॥ ४२
दधीचिगौतमादीनां शापेनादग्रथचेतसाम् ।
द्विजानां जायते श्रद्धा नैव वैदिककर्मणि ॥ ४३
यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा ।
अन्यत्समाचरेन्मत्यो न सङ्कल्पफलं लभेत् ॥ ४४

इत्थं कृत्वार्चनं शम्भोर्नैवेद्यान्तं विधानतः ।
पूजयेदष्टमूर्तीश्च तत्रैव त्रिजगन्मयीः ॥ ४५
क्षितिरापोऽनलो वायुराकाशः सूर्यसोमकौ ।
यजमान इति त्वष्टौ मूर्तयः परिकीर्तिताः ॥ ४६
शर्वो भवश्च रुद्रश्च उग्रो भीम इतीश्वरः ।
महादेवः पशुपतिरेतान्मूर्तिभिरर्चयेत् ॥ ४७
पूजयेत्परिवारं च ततः शम्भोः सुभक्तिः ।
ईशानादिक्रमात्तत्र चन्दनाक्षतपत्रकैः ॥ ४८
ईशानं नन्दिनं चण्डं महाकालं च भृङ्गिणम् ।
वृषं स्कन्दं कपर्दीशं सोमं शुक्रं च तत्क्रमात् ॥ ४९
अग्रतो वीरभद्रं च पृष्ठे कीर्तिमुखं तथा ।
तत एकादशान् रुद्रान्यूजयेद्विधिना ततः ॥ ५०

ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता, मुनिगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, चारण, सिद्धजन, दैत्य, दानव, शेष आदि नाग, गरुड़ आदि पक्षी, प्रजापति, मनु, किन्नर और मानव समस्त अर्थसिद्धि प्रदान करनेवाले शिवलिंगकी महान् भक्तिके साथ पूजा करके अपने मनमें स्थित उन-उन समस्त अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर चुके हैं ॥ ३६—३८॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर-कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकारके अनुसार वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्रसे सदा आदरपूर्वक शिवलिंगकी पूजा करे । हे ब्राह्मणो ! हे महर्षियो ! अधिक कहनेसे क्या लाभ ! शिवलिंगका पूजन करनेमें स्त्रियोंका तथा अन्य सब लोगोंका भी अधिकार है ॥ ३९-४० ॥

द्विजोंके लिये वैदिक पद्धतिसे ही शिवलिंगकी पूजा श्रेष्ठ है, परंतु अन्य लोगोंके लिये वैदिक मार्गसे पूजा करनेकी सम्मति नहीं है । वेदज्ञ द्विजोंको वैदिक मार्गसे ही पूजन करना चाहिये, अन्य मार्गसे नहीं—यह भगवान् शिवका कथन है । दधीचि, गौतम आदिके शापसे जिनका चित्त दग्ध हो गया है, उन द्विजोंकी वैदिक कर्ममें श्रद्धा नहीं होती । जो मनुष्य वेदों तथा स्मृतियोंमें कहे हुए सत्कर्मोंकी अवहेलना करके दूसरे कर्मको करने लगता है, उसका मनोरथ कभी सफल नहीं होता ॥ ४१—४४ ॥

इस प्रकार विधिपूर्वक भगवान् शंकरका नैवेद्यात् पूजन करके उनकी त्रिभुवनमयी आठ मूर्तियोंका भी वहीं पूजन करे । पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—ये भगवान् शंकरकी आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं । इन मूर्तियोंके साथ-साथ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव तथा पशुपति—इन नामोंकी भी अर्चना करे । तदनन्तर चन्दन, अक्षत और बिल्वपत्र लेकर वहाँ ईशान आदिके क्रमसे भगवान् शिवके परिवारका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे । ईशान, नन्दी, चण्ड, महाकाल, भृंगी, वृष, स्कन्द, कपर्दीश्वर, सोम तथा शुक्र—ये दस शिवके परिवार हैं, [जो क्रमशः ईशान आदि दसों दिशाओंमें पूजनीय हैं ।] तत्पश्चात् भगवान् शिवके समक्ष वीरभद्रका और पीछे कीर्तिमुखका पूजन करके विधिपूर्वक ग्यारह रुद्रोंकी पूजा करे ॥ ४५—५० ॥

ततः पञ्चाक्षरं जप्त्वा शतरुद्रियमेव च।
स्तुतीर्नानाविधाः कृत्वा पञ्चाङ्गपठनं तथा ॥ ५१

ततः प्रदक्षिणां कृत्वा नत्वा लिङ्गं विसर्जयेत्।
इति प्रोक्तमशेषं च शिवपूजनमादरात् ॥ ५२

रात्रावुद्दिमुखः कुर्याद् देवकार्यं सदैव हि।
शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुद्दिमुखः ॥ ५३

न प्राचीमग्रतः शम्भोर्नोदीर्चीं शक्तिसंहिताम्।
न प्रतीर्चीं यतः पृष्ठमतो ग्राह्यं समाश्रयेत् ॥ ५४

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया।
बिल्वपत्रं विना नैव पूजयेच्छङ्करं बुधः ॥ ५५

भस्माप्राप्तौ मुनिश्रेष्ठाः प्रवृत्ते शिवपूजने।
तस्मान्मृदापि कर्तव्यं ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ५६

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे पार्थिवपूजनवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें
पार्थिव-पूजन-वर्णन नामक इककीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

इसके बाद पंचाक्षर-मन्त्रका जप करके शतरुद्रियका पाठ तथा नाना प्रकारकी स्तुतियाँ करके शिवपंचांगका पाठ करे। तत्पश्चात् परिक्रमा और नमस्कार करके शिवलिंगका विसर्जन करे। इस प्रकार मैंने शिवपूजनकी सम्पूर्ण विधिका आदरपूर्वक वर्णन किया। रात्रिमें देवकार्यको सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना चाहिये। इसी प्रकार शिवपूजन भी पवित्र भावसे सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना उचित है। जहाँ शिवलिंग स्थापित हो, उससे पूर्व दिशाका आश्रय लेकर बैठना या खड़ा नहीं होना चाहिये; क्योंकि वह दिशा भगवान् शिवके आगे या सामने पड़ती है (इष्टदेवका सामना रोकना ठीक नहीं है)। शिवलिंगसे उत्तर दिशामें भी न बैठे; क्योंकि उधर भगवान् शंकरका वामांग है, जिसमें शक्तिस्वरूपा देवी उमा विराजमान हैं। पूजकको शिवलिंगसे पश्चिम दिशामें भी नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि वह आराध्यदेवका पृष्ठभाग है (पीछेकी ओरसे पूजा करना उचित नहीं है)। अतः अवशिष्ट दक्षिण दिशा ही ग्राह्य है, उसीका आश्रय लेना चाहिये। [तात्पर्य यह कि शिवलिंगसे दक्षिण दिशामें उत्तराभिमुख होकर बैठे और पूजा करे।] विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह बिना भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाये, बिना रुद्राक्षकी माला धारण किये तथा बिल्वपत्रका बिना संग्रह किये भगवान् शंकरकी पूजा न करे। हे मुनिवरो! शिवपूजन आरम्भ करते समय यदि भस्म न मिले, तो मिट्टीसे ही ललाटमें त्रिपुण्ड्र अवश्य कर लेना चाहिये ॥ ५१—५६ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

शिव-नैवेद्य-भक्षणका निर्णय एवं बिल्वपत्रका माहात्म्य

ऋषय ऊचुः

अग्राह्यं शिवनैवेद्यमिति पूर्वं श्रुतं वचः।

ब्रूहि तन्निर्णयं बिल्वमाहात्म्यमपि सन्मुने ॥ १ ॥

ऋषिगण बोले—हे महामुने! हमने पहले सुना है कि भगवान् शिवको अर्पित किया गया नैवेद्य अग्राह्य होता है, अतएव नैवेद्यके विषयमें निर्णय और बिल्वपत्रका माहात्म्य भी कहिये ॥ १ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे सावधानतयाधुना ।
सर्वं वदामि सम्प्रीत्या धन्या यूयं शिवव्रताः ॥ २

शिवभक्तः शुचिः शुद्धः सद्व्रती दृढनिश्चयः ।
भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम् ॥ ३

दृष्ट्वापि शिवनैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः ।
भुक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः ॥ ४

अलं यागसहस्रेणाप्यलं यागार्बुदैरपि ।
भक्षिते शिवनैवेद्ये शिवसायुज्यमाजुयात् ॥ ५

यदगृहे शिवनैवेद्यप्रचारोऽपि प्रजायते ।
तदगृहं पावनं सर्वमन्यपावनकारणम् ॥ ६

आगतं शिवनैवेद्यं गृहीत्वा शिरसा मुदा ।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम् ॥ ७

आगतं शिवनैवेद्यमन्यदा ग्राह्यमित्यपि ।
विलम्बे पापसम्बन्धो भवत्येव हि मानवः ॥ ८

न यस्य शिवनैवेद्ये ग्रहणेच्छा प्रजायते ।
स पापिष्ठः गरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यपि ध्रुवम् ॥ ९

हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरूप्यादिनिर्मिते ।
शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते ॥ १०

शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसादसंज्ञकम् ।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेच्छुभम् ॥ ११

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आप सब सावधानीसे सुनें। मैं प्रेमपूर्वक सब कुछ कह रहा हूँ। आप लोग शिवव्रत धारण करनेवाले हैं, अतः आपलोग धन्य हैं ॥ २ ॥

जो शिवका भक्त, पवित्र, शुद्ध, सद्व्रती तथा दृढनिश्चयी है, उसे शिवनैवेद्य अवश्य ग्रहण करना चाहिये और अग्राह्य भावनाका त्याग कर देना चाहिये ॥ ३ ॥

शिवनैवेद्यको देखनेमात्रसे ही सभी पाप दूर हो जाते हैं और शिवका नैवेद्य भक्षण करनेसे तो करोड़ों पुण्य स्वतः आ जाते हैं ॥ ४ ॥

हजार यज्ञोंकी बात कौन कहे, अर्बुद यज्ञ करनेसे भी वह पुण्य प्राप्त नहीं हो पाता है, जो शिवनैवेद्य खानेसे प्राप्त हो जाता है। शिवका नैवेद्य खानेसे तो शिवसायुज्यकी प्राप्ति भी हो जाती है ॥ ५ ॥

जिस घरमें शिवको नैवेद्य लगाया जाता है या अन्यत्रसे शिवको समर्पित नैवेद्य प्रसादरूपमें आ जाता है, वह घर पवित्र हो जाता है और वह अन्यको भी पवित्र करनेवाला हो जाता है ॥ ६ ॥

आये हुए शिवनैवेद्यको प्रसन्नतापूर्वक सिर झुकाकर ग्रहण करके भगवान् शिवका स्मरण करते हुए उसे खा लेना चाहिये ॥ ७ ॥

आये हुए शिवनैवेद्यको दूसरे समयमें ग्रहण करूँगा—ऐसी भावना करके जो मनुष्य उसे ग्रहण करनेमें विलम्ब करता है, उसे पाप लगता है ॥ ८ ॥

जिसमें शिवनैवेद्य ग्रहण करनेकी इच्छा उत्पन्न नहीं होती, वह महान् पापी होता है और निश्चित रूपसे नरकको जाता है ॥ ९ ॥

हृदयमें अवस्थित शिवलिंग या चन्द्रकान्तमणिसे बने हुए शिवलिंग अथवा स्वर्ण या चाँदीसे बनाये गये शिवलिंगको समर्पित किया गया नैवेद्य शिवकी दीक्षा लिये भक्तको खाना ही चाहिये—ऐसा कहा गया है ॥ १० ॥

इतना ही नहीं शिवदीक्षित भक्त समस्त शिवलिंगोंके लिये समर्पित महाप्रसादरूप शुभ शिवनैवेद्यको खा सकता है ॥ ११ ॥

अन्यदीक्षायुजां नृणां शिवभक्तिरतात्मनाम्।
शृणुध्वं निर्णयं प्रीत्या शिवनैवेद्यभक्षणे॥ १२

शालग्रामोद्घवे लिङ्गे रसलिङ्गे तथा द्विजाः।
पाषाणे राजते स्वर्णे सुरसिद्धप्रतिष्ठिते॥ १३

काश्मीरे स्फटिके राते ज्योतिर्लिङ्गेषु सर्वशः।
चान्द्रायणसमं प्रोक्तं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥ १४

ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्।
भक्षयित्वा द्रुतं तस्य सर्वपापं प्रणश्यति॥ १५

चण्डाधिकारो यत्रास्ति तद्बोक्तव्यं न मानवैः।
चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तच्च भक्तिः॥ १६

बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धे लिङ्गे स्वयम्भुवि।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥ १७

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम्।
त्रिःपिबेत्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति॥ १८

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलासङ्गात्मवं याति पवित्रताम्॥ १९

लिङ्गोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः।
सुपवित्रं च तज्जेयं यल्लिङ्गस्पर्शबाह्यतः॥ २०

नैवेद्यनिर्णयः प्रोक्त इत्थं वो मुनिसत्तमाः।
शृणुध्वं बिल्वमाहात्म्यं सावधानतयादरात्॥ २१

महादेवस्वरूपोऽयं बिल्वो देवैरपि स्तुतः।
यथाकथञ्चिदेतस्य महिमा ज्ञायते कथम्॥ २२

जिन मनुष्योंने अन्य देवोंकी दीक्षा ली है और शिवकी भक्तिमें वे अनुरक्त रहते हैं, उनके लिये शिवनैवेद्यके भक्षणके विषयमें निर्णयको प्रेमपूर्वक आप सब सुनें॥ १२॥

हे ब्राह्मणो! शालग्राममें उत्पन्न शिवलिंग, रसलिंग (पारदलिंग), पाषाणलिंग, रजतलिंग, स्वर्णलिंग, देवों और सिद्ध मुनियोंके द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिंग, केसरके बने हुए लिंग, स्फटिकलिंग, रललिंग और ज्योतिर्लिंग आदि समस्त शिवलिंगोंके लिये समर्पित नैवेद्यका भक्षण करना चान्द्रायण-व्रतके समान फल देनेवाला कहा गया है॥ १३-१४॥

यदि ब्रह्महत्या करनेवाला भी पवित्र होकर शिवका पवित्र निर्माल्य धारण करता है और उसे खाता है, उसके सम्पूर्ण पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ १५॥

जहाँ चण्डका अधिकार हो, वहाँ शिवलिंगके लिये समर्पित नैवेद्यका भक्षण मनुष्योंको नहीं करना चाहिये; जहाँ चण्डका अधिकार न हो, वहाँ भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये॥ १६॥

बाणलिंग, लौहलिंग, सिद्धलिंग, स्वयम्भूलिंग और अन्य समस्त प्रतिमाओंमें चण्डका अधिकार नहीं होता है॥ १७॥

जो विधिपूर्वक शिवलिंगको स्नान कराकर उस स्नानजलको तीन बार पीता है, उसके समस्त पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ १८॥

[चण्डके द्वारा अधिकृत होनेके कारण] अग्राह्य शिवनैवेद्य पत्र-पुष्प-फल और जल—यह सब शालग्रामशिलाके स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ १९॥

हे मुनीश्वरो! शिवलिंगके ऊपर जो भी द्रव्य चढ़ाया जाता है, वह अग्राह्य है और जो लिंगके स्पर्शसे बाहर है, उसे अत्यन्त पवित्र जानना चाहिये॥ २०॥

हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार मैंने शिवनैवेद्यका निर्णय कह दिया। अब आप सब सावधानीसे बिल्वपत्रके माहात्म्यको आदरपूर्वक सुनें॥ २१॥

बिल्ववृक्ष तो महादेवस्वरूप है, देवोंके द्वारा भी इसकी स्तुति की गयी है, अतः जिस किसी प्रकारसे उसकी महिमाको कैसे जाना जा सकता है॥ २२॥

पुण्यतीर्थानि यावन्ति लोकेषु प्रथितान्यपि ।
तानि सर्वाणि तीर्थानि बिल्वमूले वसन्ति हि ॥ २३
बिल्वमूले महादेवं लिङ्गरूपिणमव्ययम् ।
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राज्ञुयादधुवम् ॥ २४

बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धनिमभिषिञ्चति ।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः ॥ २५

एतस्य बिल्वमूलस्याथालवालमनुत्तमम् ।
जलाकुलं महादेवो दृष्ट्वा तुष्टो भवत्यलम् ॥ २६

पूजयेद् बिल्वमूलं यो गन्धपुष्पादिभिर्नरः ।
शिवलोकमवाज्ञोति सन्ततिर्वर्धते सुखम् ॥ २७

बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम् ।
स तत्त्वज्ञानसम्पन्नो महेशान्तर्गतो भवेत् ॥ २८

बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम् ।
गृहीत्वा पूजयेद् बिल्वं स च पापैः प्रमुच्यते ॥ २९

बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद्यस्तु भक्तिः ।
एकं वा कोटिगुणितं तस्य पुण्यं प्रजायते ॥ ३०

बिल्वमूले क्षीरयुक्तमन्नमाज्येन संयुतम् ।
यो दद्याच्छिवभक्ताय स दरिद्रो न जायते ॥ ३१

साङ्घोपाङ्गमिति प्रोक्तं शिवलिङ्गपूजनम् ।
प्रवृत्तानां निवृत्तानां भेदतो द्विविधं द्विजाः ॥ ३२

प्रवृत्तानां पीठपूजा सर्वाभीष्टप्रदा भुवि ।
पात्रेणैव प्रवृत्तस्तु सर्वपूजां समाचरेत् ॥ ३३

नैवेद्यमभिषेकान्ते शाल्यनेन समाचरेत् ।
पूजान्ते स्थापयेल्लिङ्गं पुटे शुद्धे पृथग्गृहे ॥ ३४

संसारमें जितने भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं, वे सब तीर्थ बिल्वके मूलमें निवास करते हैं ॥ २३ ॥

जो पुण्यात्मा बिल्ववृक्षके मूलमें लिंगरूपी अव्यय भगवान् महादेवकी पूजा करता है, वह निश्चित रूपसे शिवको प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥

जो प्राणी बिल्ववृक्षके मूलमें शिवजीके मस्तकपर अभिषेक करता है, वह समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्तकर पृथक्षीपर पवित्र हो जाता है ॥ २५ ॥

इस बिल्ववृक्षके मूलमें बने हुए उत्तम थालेको जलसे परिपूर्ण देखकर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥ २६ ॥

जो व्यक्ति गन्ध-पुष्पादिसे बिल्ववृक्षके मूलका पूजन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता है और उसके सन्तान और सुखकी अभिवृद्धि होती है ॥ २७ ॥

जो मनुष्य बिल्ववृक्षके मूलमें आदरपूर्वक दीपमालाका दान करता है, वह तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न होकर महादेवके सानिध्यको प्राप्त हो जाता है ॥ २८ ॥

जो बिल्वशाखाको हाथसे पकड़कर उसके नवपल्लवको ग्रहण करके बिल्वकी पूजा करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २९ ॥

जो पुरुष भक्तिपूर्वक बिल्ववृक्षके नीचे एक शिवभक्तको भोजन कराता है, उसे करोड़ों मनुष्योंको भोजन करनेका पुण्य प्राप्त होता है ॥ ३० ॥

जो बिल्ववृक्षके नीचे दूध और धीसे युक्त अन शिव-भक्तको प्रदान करता है, वह दरिद्र नहीं रह जाता है ॥ ३१ ॥

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने सांगोपांग शिवलिंगके पूजनविधानको कह दिया है । इसमें भी प्रवृत्तों और निवृत्तोंके लिये दो भेद हैं ॥ ३२ ॥

प्रवृत्तिमार्गियोंके लिये पीठपूजा इस भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देने वाली होती है । प्रवृत्त पुरुषको चाहिये कि सुपात्र गुरु आदिके द्वारा ही सारी पूजा सम्पन्न करे ॥ ३३ ॥

शिवलिंगका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनी अन्नसे नैवेद्य लगाना चाहिये । पूजाके अन्तमें उस शिवलिंगको किसी शुद्ध पुट (डिब्बे)-में रख देना चाहिये अथवा किसी दूसरे शुद्ध घरमें स्थापित कर

करपूजानिवृत्तानां स्वभोज्यं तु निवेदयेत् ।
निवृत्तानां परं सूक्ष्मं लिङ्गमेव विशिष्यते ॥ ३५

विभूत्यभ्यर्चनं कुर्याद्विभूतिं च निवेदयेत् ।
पूजां कृत्वा तथा लिङ्गं शिरसा धारयेत्सदा ॥ ३६
इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे शिवनैवेद्यवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें शिवनैवेद्यवर्णनं नामक बाईंसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

देना चाहिये । निवृत्तिमार्गी उपासकोंके लिये हाथपर ही शिवपूजाका विधान है । उन्हें [भिक्षा आदिसे प्राप्त] अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें अर्पित करना चाहिये । निवृत्तिमार्गियोंके लिये परात्पर सूक्ष्म लिंग ही श्रेष्ठ बताया गया है । उन्हें चाहिये कि विभूतिसे ही पूजा करें और विभूतिका ही नैवेद्य शिवको प्रदान करें । पूजा करनेके पश्चात् उस विभूतिस्वरूप लिंगको सिरपर सदा धारण करना चाहिये ॥ ३४—३६ ॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भस्म, रुद्राक्ष और शिवनामके माहात्म्यका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।
तदेव व्यासतो ब्रूहि भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १
तथा रुद्राक्षमाहात्म्यं नाममाहात्म्यमुत्तमम् ।
त्रितयं ब्रूहि सुप्रीत्या ममानन्दय मानसम् ॥ २

सूत उवाच
साधु पृष्ठं भवद्विश्व लोकानां हितकारकम् ।
भवन्तो वै महाधन्याः पवित्राः कुलभूषणाः ॥ ३
येषां चैव शिवः साक्षाद् दैवतं परमं शुभम् ।
सदाशिवकथा लोके वल्लभा भवतां सदा ॥ ४
ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम् ।
उद्धृतं च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते ॥ ५

शिवनाम मुखे यस्य सदा शिवशिवेति च ।
पापानि न स्पृशन्त्येव खदिराङ्गारकं यथा ॥ ६

ऋषिगण बोले—हे महाभाग व्यासशिष्य सूतजी! आपको नमस्कार है । अब आप परम उत्तम भस्म-माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

भस्ममाहात्म्य, रुद्राक्षमाहात्म्य तथा उत्तम नाममाहात्म्य—इन तीनोंका परम प्रसन्नतापूर्वक प्रतिपादन कीजिये और हमारे हृदयको आनन्दित कीजिये ॥ २ ॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! आप लोगोंने बहुत उत्तम बात पूछी है; यह समस्त लोकोंके लिये हितकारक विषय है । आप लोग महाधन्य, पवित्र तथा अपने कुलके भूषणस्वरूप हैं ॥ ३ ॥

इस संसारमें कल्याणकारी परमदेवस्वरूप भगवान् शिव जिनके देवता हैं, ऐसे आप सबके लिये यह शिवकी कथा अत्यन्त प्रिय है ॥ ४ ॥

वे ही धन्य और कृतार्थ हैं, उन्हींका शरीर धारण करना भी सफल है और उन्होंने ही अपने कुलका उद्धार कर लिया है, जो शिवकी उपासना करते हैं ॥ ५ ॥

जिनके मुखमें भगवान् शिवका नाम है, जो अपने मुखसे सदा शिव-शिव इस नामका उच्चारण करते रहते हैं, पाप उनका उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे खदिर वृक्षके अंगारको छूनेका साहस कोई भी प्राणी नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

श्रीशिवाय नमस्तुभ्यं मुखं व्याहरते यदा।
तन्मुखं पावनं तीर्थं सर्वपापविनाशनम्॥ ७

तन्मुखं च तथा यो वै पश्यति प्रीतिमान्नरः।
तीर्थजन्यं फलं तस्य भवतीति सुनिश्चितम्॥ ८

यत्र त्रयं सदा तिष्ठेदेतच्छुभतरं द्विजाः।
तस्य दर्शनमात्रेण वेणीस्नानफलं लभेत्॥ ९

शिवनाम विभूतिश्च तथा रुद्राक्ष एव च।
एतत्रयं महापुण्यं त्रिवेणीसदृशं स्मृतम्॥ १०

एतत्रयं शरीरे च यस्य तिष्ठति नित्यशः।
तस्यैव दर्शनं लोके दुर्लभं पापहारकम्॥ ११

तदर्शनं यथा वेणी नोभयोरन्तरं मनाकृ।
एवं यो न विजानाति स पापिष्ठो न संशयः॥ १२

विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम्।
नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदधमं यथा॥ १३

शैवं नाम यथा गङ्गा विभूतिर्यमुना मता।
रुद्राक्षं विधिजा प्रोक्ता सर्वपापविनाशिनी॥ १४

शरीरे च त्रयं यस्य तत्फलं चैकतः स्थितम्।
एकतो वेणिकायाश्च स्नानजं तु फलं बुधैः॥ १५

तदेवं तुलितं पूर्वं ब्रह्मणा हितकारिणा।
समानं चैव तज्जातं तस्माद् धार्य सदा बुधैः॥ १६

तद्दिनं हि समारभ्य ब्रह्मविष्ववादिभिः सुरैः।
धार्यते त्रितयं तच्च दर्शनात्पापहारकम्॥ १७

हे शिव! आपको नमस्कार है (श्रीशिवाय नमस्तुभ्यम्)—जिस मुखसे ऐसा उच्चारण होता है, वह मुख समस्त पापोंका विनाश करनेवाला पावन तीर्थ बन जाता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक उस मुखका दर्शन करता है, उसे निश्चय ही तीर्थसेवनजनित फल प्राप्त होता है॥ ७-८॥

हे ब्राह्मणो! शिवका नाम, विभूति (भस्म) तथा रुद्राक्ष—ये तीनों त्रिवेणीके समान परम पुण्यवाले माने गये हैं। जहाँ ये तीनों शुभतर वस्तुएँ सर्वदा रहती हैं, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य त्रिवेणीस्नानका फल पा लेता है॥ ९-१०॥

जिसके शरीरपर भस्म, रुद्राक्ष और मुखमें शिवनाम—ये तीनों नित्य विद्यमान रहते हैं, उसका पापविनाशक दर्शन संसारमें दुर्लभ है॥ ११॥

उस पुण्यात्माका दर्शन त्रिवेणीके समान ही है, भस्म, रुद्राक्ष तथा शिवनामका जप करनेवाले और त्रिवेणी—इन दोनोंमें रंचमात्र भी अन्तर नहीं है—ऐसा जो नहीं जानता, वह निश्चित ही पापी है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १२॥

जिसके मस्तकपर विभूति नहीं है, अंगमें रुद्राक्ष नहीं है और मुखमें शिवमयी वाणी नहीं है, उसे अधम व्यक्तिके समान त्याग देना चाहिये॥ १३॥

भगवान् शिवका नाम गंगा है। विभूति यमुना मानी गयी है तथा रुद्राक्षको सरस्वती कहा गया है। इन तीनोंकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है॥ १४॥

बहुत पहलेकी बात है, हितकारी ब्रह्माने जिसके शरीरमें उक्त ये तीनों—त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष और शिवनाम संयुक्त रूपसे विद्यमान थे, उनके फलको तुलाके पलड़ेमें एक ओर रखकर, त्रिवेणीमें स्नान करनेसे उत्पन्न फलको दूसरी ओरके पलड़ेमें रखा और तुलना की, तो दोनों बराबर ही उतरे। अतएव विद्वानोंको चाहिये कि इन तीनोंको सदा अपने शरीरपर धारण करें॥ १५-१६॥

उसी दिनसे ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी दर्शनमात्रसे पापोंको नष्ट कर देनेवाले इन तीनों (रुद्राक्ष, विभूति और शिवनाम)-को धारण करने लगे॥ १७॥

ऋषय ऊचुः

ईदृशं हि फलं प्रोक्तं नामादित्रितयोद्भवम्।
तन्माहात्म्यं विशेषेण वक्तुमर्हसि सुव्रत। १८

सूत उवाच

ऋषयो हि महाप्राज्ञाः सच्छैवा ज्ञानिनां वराः।
तन्माहात्म्यं हि सद्भक्त्या शृणुतादरतो द्विजाः। १९

सुगूढमपि शास्त्रेषु पुराणेषु श्रुतिष्वपि।
भवत्नेहान्मया विप्राः प्रकाशः क्रियतेऽधुना। २०

कस्तत्रितयमाहात्म्यं सञ्जानाति द्विजोत्तमाः।
महेश्वरं विना सर्वं ब्रह्माण्डे सदसत्परम्। २१

वच्यहं नाममाहात्म्यं यथाभक्ति समाप्तः।
शृणुत प्रीतितो विप्राः सर्वपापहरं परम्। २२

शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः।
भस्मीभवन्त्यनायासात्सत्यं सत्यं न संशयः। २३

पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि शौनक।
शिवनामैकनश्यानि नान्यनश्यानि सर्वथा। २४

स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्यः स बुधो मतः।
शिवनामजपासक्तो यो नित्यं भुवि मानवः। २५

भवन्ति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः।
येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने। २६

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत! [भस्म, रुद्राक्ष और शिवनाम] इन तीनोंको धारण करनेसे इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले फलका वर्णन तो आपने कह दिया है, किंतु अब आप विशेष रूपसे उनके माहात्म्यका वर्णन करें। १८॥

सूतजी बोले—ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हे महाप्राज्ञ! हे शिवभक्त ऋषियों और विप्रो! आप सब सद्भक्ति तथा आदरपूर्वक उक्त भस्म, रुद्राक्ष और शिवनाम—इन तीनोंका माहात्म्य सुनें। १९॥

शास्त्रों, पुराणों और श्रुतियोंमें भी इनका माहात्म्य अत्यन्त गृह्ण कहा गया है। हे विप्रो! आप सबके स्नेहवश इस समय मैं [उस रहस्यको खोलकर] प्रकाशित करने जा रहा हूँ। २०॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इन तीनोंकी महिमाको सदसद्विलक्षण भगवान् महेश्वरके बिना दूसरा कौन भलीभाँति जान सकता है। इस ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, वह सब तो केवल महेश्वर ही जानते हैं। २१॥

हे विप्रगण! मैं अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार संक्षेपसे भगवन्नामकी महिमाका कुछ वर्णन करता हूँ। आप सबलोग प्रेमपूर्वक उसे सुनें। यह नाम-माहात्म्य समस्त पापोंको हर लेनेवाला सर्वोत्तम साधन है। २२॥

‘शिव’-इस नामरूपी दावानलसे महान् पातकरूपी पर्वत अनायास ही भस्म हो जाता है—यह सत्य है, सत्य है; इसमें संशय नहीं है। २३॥

हे शौनक! पापमूलक जो नाना प्रकारके दुःख हैं, वे एकमात्र शिवनाम (भगवन्नाम)-से ही नष्ट होनेवाले हैं; दूसरे साधनोंसे सम्पूर्ण यत्न करनेपर भी पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं। २४॥

जो मनुष्य इस भूतलपर सदा भगवान् शिवके नामोंके जपमें ही लगा हुआ है, वह वेदोंका ज्ञाता है, वह पुण्यात्मा है, वह धन्यवादका पात्र है तथा वह विद्वान् माना गया है। २५॥

हे मुने! जिनका शिवनामजपमें विश्वास है, उनके द्वारा आचरित नाना प्रकारके धर्म तत्काल फल देनेके लिये उत्सुक हो जाते हैं। २६॥

पातकानि विनश्यन्ति यावन्ति शिवनामतः ।
भुवि तावन्ति पापानि क्रियन्ते न नरैर्मुने ॥ २७

ब्रह्महत्यादिपापानां राशीनप्रमितान्मुने ।
शिवनाम द्रुतं प्रोक्तं नाशयत्यखिलान्तरैः ॥ २८
शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ये ।
संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम् ॥ २९

संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने ।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम् ॥ ३०

शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः ।
पापदावाग्नितमानां शान्तिस्तेन विना न हि ॥ ३१

शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः ।
संसारदवमध्येऽपि न शोचन्ति कदाचन ॥ ३२

शिवनामिनि महद्वक्तिर्जाता येषां महात्मनाम् ।
तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा ॥ ३३

अनेकजन्मभिर्येन तपस्तमं मुनीश्वर ।
शिवनाम्नि भवेद्वक्तिः सर्वपापहारिणी ॥ ३४

यस्यासाधारणी शम्भुनामिनि भक्तिरखण्डिता ।
तस्यैव मोक्षः सुलभो नान्यस्येति मतिर्मम ॥ ३५

कृत्वाप्यनेकपापानि शिवनामजपादरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवत्येव न संशयः ॥ ३६

भवन्ति भस्मसाद् वृक्षा दवदग्धा यथा वने ।
तथा तावन्ति दग्धानि पापानि शिवनामतः ॥ ३७

यो नित्यं भस्मपूताङ्गः शिवनामजपादरः ।
स तरत्येव संसारमधोरमपि शौनक ॥ ३८

हे महर्षे ! भगवान् शिवके नामसे जितने पाप नष्ट होते हैं, उतने पाप मनुष्य इस भूतलपर कर ही नहीं सकता ॥ २७ ॥

हे मुने ! ब्रह्महत्या-जैसे पापोंकी समस्त अपरिमित राशियाँ शिवनाम लेनेसे शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं ॥ २८ ॥
जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ होकर संसार-समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ २९ ॥

हे महामुने ! संसारके मूलभूत पातकरूपी वृक्षका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है ॥ ३० ॥

जो पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अमृतका पान करना चाहिये । पापोंके दावानलसे दग्ध होनेवाले लोगोंको उस शिवनामामृतके बिना शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ३१ ॥

जो शिवनामरूपी सुधाकी वृष्टिजनित धारामें गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानलके बीचमें खड़े होनेपर भी कदापि शोकके भागी नहीं होते ॥ ३२ ॥

जिन महात्माओंके मनमें शिवनामके प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगोंकी सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है ॥ ३३ ॥

हे मुनीश्वर ! जिसने अनेक जन्मोंतक तपस्या की है, उसीकी शिवनामके प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है ॥ ३४ ॥

जिसके मनमें भगवान् शिवके नामके प्रति कभी खण्डित न होनेवाली असाधारण भक्ति प्रकट हुई है, उसीके लिये मोक्ष सुलभ है—यह मेरा मत है ॥ ३५ ॥

जो अनेक पाप करके भी भगवान् शिवके नाम-जपमें आदरपूर्वक लग गया है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो ही जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥

जैसे वनमें दावानलसे दग्ध हुए वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिवनामरूपी दावानलसे दग्ध होकर उस समयतकके सारे पाप भस्म हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

हे शौनक ! जिसके अंग नित्य भस्म लगानेसे पवित्र हो गये हैं तथा जो शिवनामजपका आदर करने लगा है, वह घोर संसारसागरको भी पार कर ही लेता है ॥ ३८ ॥

ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा हत्वापि ब्राह्मणान्बहून्।
न लिप्यते नरः पापैः शिवनामजपादरः ॥ ३९

विलोक्य वेदानखिलान् शिवनामजपः परः।
संसारतरणोपाय इति पूर्वविनिश्चितम् ॥ ४०

किं बहूकृत्या मुनिश्रेष्ठाः श्लोकेनैकेन वच्यहम्।
शिवाभिधानमाहात्म्यं सर्वपापहारणम् ॥ ४१

पापानां हरणे शास्त्रोर्नाम्नः शक्तिर्हि यावती।
शक्वनोति पातकं तावल्कर्तुं नापि नरः क्वचित् ॥ ४२

शिवनामप्रभावेण लेभे सदगतिमुत्तमाम्।
इन्द्रद्युम्ननृपः पूर्वं महापापयुतो मुने ॥ ४३

तथा काचिद् द्विजा योषाऽसौ मुने बहुपापिनी।
शिवनामप्रभावेण लेभे सदगतिमुत्तमाम् ॥ ४४

इत्युक्तं वो द्विजश्रेष्ठा नाममाहात्म्यमुत्तमम्।
शृणुध्वं भस्ममाहात्म्यं सर्वपावनपावनम् ॥ ४५

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे
शिवनाममाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणमें प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें
शिवनाममाहात्म्यवर्णन नामक तईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

भस्म-माहात्म्यका निरूपण

सूत उवाच

द्विविधं भस्म सम्प्रोक्तं सर्वमङ्गलदं परम्।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये सावधानतया शृणु ॥ १

ब्राह्मणोंका धनहरण और अनेक ब्राह्मणोंकी हत्या करके भी जो आदरपूर्वक शिवके नामका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता है [अर्थात् उसे किसी भी प्रकारका पाप नहीं लगता है] ॥ ३९ ॥

सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियोंने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिवके नामका जप संसारसागरको पार करनेके लिये सर्वोत्तम उपाय है ॥ ४० ॥

हे मुनिवरो! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं शिव-नामके सर्वपापहारी माहात्म्यका वर्णन एक ही श्लोकमें करता हूँ ॥ ४१ ॥

भगवान् शंकरके एक नाममें भी पापहरणकी जितनी शक्ति है, उतना पातक मनुष्य कभी कर ही नहीं सकता ॥ ४२ ॥

हे मुने! पूर्वकालमें महापापी राजा इन्द्रद्युम्नने शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम सदगति प्राप्त की थी ॥ ४३ ॥

इसी तरह कोई ब्राह्मणी युवती भी जो बहुत पाप कर चुकी थी, शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम गतिको प्राप्त हुई ॥ ४४ ॥

हे द्विजवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे भगवन्नामके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया है। अब आप लोग भस्मका माहात्म्य सुनें, जो समस्त पावन वस्तुओंको भी पवित्र करनेवाला है ॥ ४५ ॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! भस्म सम्पूर्ण मंगलोंको देनेवाला तथा उत्तम है, उसके दो भेद बताये गये हैं। मैं उन भेदोंका वर्णन करता हूँ, आप लोग सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥

एकं ज्ञेयं महाभस्म द्वितीयं स्वल्पसंज्ञकम्।
महाभस्म इति प्रोक्तं भस्म नानाविधिं परम्॥ २

तद्द्वस्म त्रिविधिं प्रोक्तं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम्।
भस्मैव स्वल्पसंज्ञं हि बहुधा परिकीर्तितम्॥ ३

श्रौतं भस्म तथा स्मार्तं द्विजानामेव कीर्तितम्।
अन्येषामपि सर्वेषामपरं भस्म लौकिकम्॥ ४

धारणं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां मुनिपुङ्गवैः।
केवलं धारणं ज्ञेयमन्येषां मन्त्रवर्जितम्॥ ५

आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसम्भवम्।
तदपि द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुण्ड्रस्य महामुने॥ ६

अग्निहोत्रोत्थितं भस्म सङ्ग्राह्यं वा मनीषिभिः।
अन्ययज्ञोत्थितं वापि त्रिपुण्ड्रस्य च धारणे॥ ७

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्जाबालोपनिषद्गतैः।
सप्तभिर्धूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च॥ ८

वर्णनामाश्रमाणां च मन्त्रतोऽमन्त्रतोऽपि च।
त्रिपुण्ड्रोदधूलनं प्रोक्तं जाबालैरादरेण च॥ ९

भस्मनोदधूलनं चैव धृतं तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्।
प्रमादादपि मोक्षार्थी न त्यजेदिति वै श्रुतिः॥ १०

शिवेन विष्णुना चैव धृतं तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्।
उमादेव्या च लक्ष्म्या च स्तुतमन्यैश्च नित्यशः॥ ११

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च सङ्करैः।
अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोदधूलनात्मना॥ १२

उदधूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
तेषां नास्ति समाचारो वर्णाश्रमसमन्वितः॥ १३

एकको 'महाभस्म' जानना चाहिये और दूसरेको 'स्वल्पभस्म'। महाभस्मके भी अनेक भेद हैं। वह तीन प्रकारका कहा गया है—श्रौत, स्मार्त और लौकिक। स्वल्पभस्मके भी बहुत-से भेदोंका वर्णन किया गया है। श्रौत और स्मार्त भस्मको केवल द्विजोंके ही उपयोगमें आनेके योग्य कहा गया है। तीसरा जो लौकिक भस्म है, वह अन्य लोगोंके भी उपयोगमें आ सकता है॥ २—४॥

श्रेष्ठ महर्षियोंने यह बताया है कि द्विजोंको वैदिक मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भस्म धारण करना चाहिये। दूसरे लोगोंके लिये बिना मन्त्रके ही केवल धारण करनेका विधान है॥ ५॥

जले हुए गोबरसे उत्पन्न होनेवाला भस्म आग्नेय कहलाता है। हे महामुने! वह भी त्रिपुण्ड्रका द्रव्य है—ऐसा कहा गया है॥ ६॥

अग्निहोत्रसे उत्पन्न हुए भस्मका भी मनीषी पुरुषोंको संग्रह करना चाहिये। अन्य यज्ञसे प्रकट हुआ भस्म भी त्रिपुण्ड्रधारणके काममें आ सकता है॥ ७॥

जाबालोपनिषद्में आये हुए 'अग्निः' इत्यादि सात मन्त्रोंद्वारा जलमिश्रित भस्मसे धूलन (विभिन्न अंगोंमें मर्दन या लेपन) करना चाहिये॥ ८॥

महर्षि जाबालिने सभी वर्णों और आश्रमोंके लिये मन्त्रसे या बिना मन्त्रके भी आदरपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगानेकी आवश्यकता बतायी है॥ ९॥

समस्त अंगोंमें सजल भस्मको मलना अथवा विभिन्न अंगोंमें तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना—इन कार्योंको मोक्षार्थी पुरुष प्रमादसे भी न छोड़—ऐसा श्रुतिका आदेश है॥ १०॥

भगवान् शिव और विष्णुने भी तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण किया है। अन्य देवियोंसहित भगवती उमा और लक्ष्मीदेवीने भी वाणीद्वारा इसकी प्रशंसा की है॥ ११॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, वर्णसंकरों तथा जातिभ्रष्ट पुरुषोंने भी उद्धूलन एवं त्रिपुण्ड्रके रूपमें भस्मको धारण किया है॥ १२॥

जो लोग श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मका उद्धूलन (लेप) तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेका आचरण नहीं करते हैं, उनमें वर्णाश्रम-समन्वित सदाचारकी कमी है॥ १३॥

उदधूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये ।
तेषां नास्ति विनिर्मुक्तिः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ १४

उदधूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये ।
तेषां नास्ति शिवज्ञानं कल्पकोटिशतैरपि ॥ १५

उदधूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये ।
ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रीयनिर्णयः ॥ १६

उदधूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये ।
तेषामाचरितं सर्वं विपरीतफलाय हि ॥ १७

महापातकयुक्तानां जन्तूनां शर्वविद्विषाम् ।
त्रिपुण्ड्रोदधूलनद्वेषो जायते सुदृढं मुने ॥ १८

शिवाग्निकार्यं यः कृत्वा कुर्यात्त्रियायुषात्मवित् ।
मुच्यते सर्वपापैस्तु स्पृष्टेन भस्मना नरः ॥ १९

सितेन भस्मना कुर्यात्त्रिसन्ध्यं यस्त्रिपुण्ड्रकम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते ॥ २०

सितेन भस्मना कुर्याल्ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ।
योऽसावनादिभूतान्हि लोकानामोऽमृतो भवेत् ॥ २१

अकृत्वा भस्मना स्नानं न जपेद्वै षडक्षरम् ।
त्रिपुण्ड्रं च रचित्वा तु विधिना भस्मना जपेत् ॥ २२

अदयो वाधमो वापि सर्वपापान्वितोऽपि वा ।
उपपापान्वितो वापि मूर्खो वा पतितोऽपि वा ॥ २३
यस्मिन्देशे वसेन्तित्यं भूतिशासनसंयुतः ।
सर्वतीथैश्च क्रतुभिः सानिध्यं क्रियते सदा ॥ २४

त्रिपुण्ड्रसहितो जीवः पूज्यः सर्वैः सुरासुरैः ।
पापान्वितोऽपि शुद्धात्मा किं पुनः श्रद्धया युतः ॥ २५

जिनके द्वारा श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मलेप और त्रिपुण्ड्रधारणका आचरण नहीं किया जाता है, उनकी विनिर्मुक्ति करोड़ों जन्मोंमें भी संसारसे सम्भव नहीं है ॥ १४ ॥

जो श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मलेप और त्रिपुण्ड्रधारणका आचारपालन नहीं करते हैं, उन्हें सौ करोड़ कल्पोंमें भी शिवका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

जो श्रद्धापूर्वक भस्मलेप तथा त्रिपुण्ड्रधारण नहीं करते हैं, वे महापातकोंसे युक्त हो जाते हैं, ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है ॥ १६ ॥

जो श्रद्धापूर्वक भस्मोद्धूलन और त्रिपुण्ड्रधारण नहीं करते हैं, उन लोगोंका सम्पूर्ण आचरण विपरीत फल प्रदान करनेवाला हो जाता है ॥ १७ ॥

हे मुनियो! जो महापातकोंसे युक्त और समस्त प्राणियोंसे द्वेष करनेवाले हैं, वे ही त्रिपुण्ड्रधारण तथा भस्मोद्धूलनसे अत्यधिक द्वेष करते हैं ॥ १८ ॥

जो आत्मज्ञानी मनुष्य शिवाग्नि (अग्निहोत्र)-का कार्य करके 'त्यायुषं जमदग्ने:'—इस मन्त्रसे भस्मका मात्र स्पर्श ही कर लेता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥

जो मनुष्य तीनों सन्ध्याकालोंमें श्वेत भस्मके द्वारा त्रिपुण्ड्रधारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवसानिध्यका आनन्द भोगता है ॥ २० ॥

जो व्यक्ति श्वेत भस्मसे अपने मस्तकपर त्रिपुण्ड्रधारण करता है, वह अनादिभूत लोकोंको प्राप्तकर अमर हो जाता है ॥ २१ ॥

बिना भस्मस्नान किये षडक्षर [‘३० नमः शिवाय’] मन्त्रका जप नहीं करना चाहिये । विधिपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्रधारण करके ही इसका जप करना चाहिये ॥ २२ ॥

दयाहीन, अधम, महापापोंसे युक्त, उपपापोंसे युक्त, मूर्ख अथवा पतित व्यक्ति भी जिस देशमें नित्य भस्म धारण करते रहते हैं, वह देश सदैव सम्पूर्ण तीर्थों और यज्ञोंसे परिपूर्ण ही रहता है ॥ २३-२४ ॥

त्रिपुण्ड्रधारण करनेवाला पापी जीव भी समस्त देवों और असुरोंके द्वारा पूज्य है । यदि पुण्यात्मा त्रिपुण्ड्रसे युक्त है, तो उसके लिये कहना ही क्या ॥ २५ ॥

यस्मिन्देशे शिवज्ञानी भूतिशासनसंयुतः ।
गतो यदृच्छयाद्यापि तस्मिंस्तीर्थः समागताः ॥ २६

बहुनात्र किमुक्तेन धार्य भस्म सदा बुधैः ।
लिङ्गार्चनं सदा कार्यं जप्यो मन्त्रः षडक्षरः ॥ २७

ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेण मुनिभिः सुरैः ।
भस्मधारणमाहात्म्यं न शक्यं परिभाषितुम् ॥ २८

इति वर्णश्रमाचारो लुप्तवर्णक्रियोऽपि च ।
पापात्सकृत्रिपुण्ड्रस्य धारणात्सोऽपि मुच्यते ॥ २९

ये भस्मधारिणं त्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः ।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः ॥ ३०

तेनाधीतं गुरोः सर्वं तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम् ॥ ३१

ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा नराः कुर्वन्ति ताडनम् ।
तेषां चण्डालतो जन्म ब्रह्मनूहां विपश्चिता ॥ ३२

मानस्तोकेन मन्त्रेण मन्त्रितं भस्म धारयेत् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियश्वैव प्रोक्तेष्वद्गेषु भक्तिमान् ॥ ३३

वैश्यस्त्रियम्बकेनैव शूद्रः पञ्चाक्षरेण तु ।
अन्यासां विधवास्त्रीणां विधिः प्रोक्तश्च शूद्रवत् ॥ ३४

पञ्चब्रह्मादिमनुभिर्गृहस्थस्य विधीयते ।
त्रियम्बकेन मनुना विधिवै ब्रह्मचारिणः ॥ ३५

अघोरेणाथ मनुना विपिनस्थविधिः स्मृतः ।
यतिस्तु प्रणवेनैव त्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत् ॥ ३६

भस्म धारण करनेवाला शिवज्ञानी जिस देशमें स्वेच्छया चला जाता है, उस देशमें समस्त तीर्थ आजाते हैं ॥ २६ ॥

इस विषयमें और अधिक क्या कहा जाय! विद्वानोंको सदैव भस्म धारण करना चाहिये एवं लिंगार्चन करके षडक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये ॥ २७ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मुनिगण और देवताओंके द्वारा भी भस्म-धारण करनेके महत्वका वर्णन किया जाना सम्भव नहीं है ॥ २८ ॥

जिसने अपने वर्ण तथा आश्रमधर्मसे सम्बन्धित आचार तथा क्रियाएँ लुप्त कर दी हैं, यदि वह भी त्रिपुण्ड्र धारण करता है, तो समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २९ ॥

जो भस्मधारण करनेवालेको त्यागकर धार्मिक कृत्य करते हैं, उनको करोड़ों जन्म लेनेपर भी संसारसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो पाती है ॥ ३० ॥

जिस ब्राह्मणने भस्मसे अपने सिरपर त्रिपुण्ड्र धारण कर लिया है, उसने मानो गुरुसे सब कुछ पढ़ लिया है और सभी धार्मिक अनुष्ठान कर लिये हैं ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य भस्म धारण करनेवालेको देखकर उसे कष्ट देते हैं, वे निश्चित ही चाण्डालसे उत्पन्न हुए हैं—ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

भक्तिपरायण ब्राह्मण और क्षत्रियको 'मा नस्तोके तनये०'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मको शास्त्रसम्मत कहे गये अंगोंपर धारण करना चाहिये ॥ ३३ ॥

वैश्य 'त्र्यम्बकं यजामहे'—इस मन्त्रसे और शूद्र 'शिवाय नमः'—इस पंचाक्षरमन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रितकर धारण करे; विधवा स्त्रियोंके लिये [भस्म-धारणकी] विधि शूद्रोंके समान कही गयी है ॥ ३४ ॥

पाँच ब्रह्मादि मन्त्रों*से [अभिमन्त्रित भस्मके द्वारा] गृहस्थ त्रिपुण्ड्र धारण करे। ब्रह्मचारी 'त्र्यम्बकं यजामहे'—इस मन्त्रसे [भस्मको अभिमन्त्रित करके] और वानप्रस्थी 'अघोरेभ्योऽथ०' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करके त्रिपुण्ड्र धारण करे, किंतु यति [संन्यासी] प्रणवके मन्त्रसे [भस्मको अभिमन्त्रित करके] त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ ३५-३६ ॥

* अघोर, ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेवके मन्त्र ही पंचब्रह्मके ध्यान हैं। ये मन्त्र पृ०-सं० ८० पर दिये गये हैं।

अतिवर्णश्रमी नित्यं शिवोऽहं भावनात्परात् ।
शिवयोगी च नियतमीशानेनापि धारयेत् ॥ ३७

न त्यज्यं सर्ववर्णेश्च भस्मधारणमुक्तम् ।
अन्यैरपि यथा जीवैः सदेति शिवशासनम् ॥ ३८

भस्मस्नानेन यावन्तः कणाः स्वाङ्गे प्रतिष्ठिताः ।
तावन्ति शिवलिङ्गानि तनौ धत्ते हि धारकः ॥ ३९

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि च सङ्कराः ।
स्त्रियोऽथ विधवा बालाः प्राप्ना पाखण्डिकास्तथा ॥ ४०
ब्रह्मचारी गृही वन्यः संन्यासी वा व्रती तथा ।
नार्यो भस्मत्रिपुण्ड्राङ्का मुक्ता एव न संशयः ॥ ४१

ज्ञानाज्ञानधृतो वापि वह्निदाहसमो यथा ।
ज्ञानाज्ञानधृतं भस्म पावयेत्सकलं नरम् ॥ ४२

नाशनीयाज्जलमन्मल्यमपि वा भस्माक्षधृत्या विना
भुक्त्वा वाथ गृही वनीपतियतिर्वर्णी तथा सङ्करः ।
एनोभुद्दं नरकं प्रयाति स तदा गायत्रिजापेन तद्
वर्णानां तु यतेस्तु मुख्यप्रणवाजापेन मुक्तिर्भवेत् ॥ ४३

त्रिपुण्ड्रं ये विनिदन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते ।
धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते ॥ ४४

धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम् ।
धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम् ॥ ४५

जो वर्णाश्रम धर्मसे परे है, वह 'शिवोऽहं'—इस भावनासे नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करे और जो शिवयोगी है, वह 'ईशानः सर्वविद्यानाम्'—इस भावनाको करता हुआ त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ ३७ ॥

सभी वर्णोंके द्वारा भस्म-धारण करनेके इस उत्तम कार्यको नहीं छोड़ना चाहिये; अन्य जीवोंको भी सदा भस्म धारण करना चाहिये—ऐसा भगवान् शिवका आदेश है ॥ ३८ ॥

भस्म-स्नान करनेसे जितने कण शरीरमें प्रवेश करते हैं, उतने ही शिवलिंगोंको वह धारक अपने शरीरमें धारण करता है ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, स्त्री (सधवा), विधवा, बालक, पाखण्डी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, संन्यासी, व्रती और संन्यासिनी स्त्रियाँ—ये सभी भस्मके त्रिपुण्ड्र-धारणके प्रभावके द्वारा मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ४०-४१ ॥

जैसे ज्ञानवश या अज्ञानवश धारण की गयी अग्नि सबको समान रूपसे जलाती है, वैसे ही ज्ञान या अज्ञानवश धारण किया गया भस्म भी समानरूपसे सभी मनुष्योंको पवित्र करता है ॥ ४२ ॥

भस्म तथा रुद्राक्ष-धारणके बिना जल अथवा अन्नको अंशमात्र भी नहीं खाना चाहिये। गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और वर्णसंकर जातिका व्यक्ति यदि भस्म एवं रुद्राक्षको धारण किये बिना भोजन करता है, तो वह मात्र पाप ही खाता है और नरककी ओर प्रस्थान करता है। ऐसे समयमें उक्त वर्णधर्मोंका वह व्यक्ति गायत्री मन्त्रके जपसे तथा यति (संन्यासी) मुख्य प्रणवमन्त्रके जपसे प्रायश्चित्त करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है ॥ ४३ ॥

जो त्रिपुण्ड्रकी निन्दा करते हैं, वे साक्षात् शिवकी ही निन्दा करते हैं और जो त्रिपुण्ड्रको धारण करते हैं, वे साक्षात् उन्हीं शिवको ही धारण करते हैं ॥ ४४ ॥

भस्मरहित भालको धिक्कार है, शिवालय (शिवमन्दिर)-रहित ग्रामको धिक्कार है, शिवार्चनसे रहित जन्मको धिक्कार है और शिवज्ञानरहित विद्याको धिक्कार है ॥ ४५ ॥

ये निन्दनि महेश्वरं त्रिजगतामाधारभूतं हरं
ये निन्दनि त्रिपुण्ड्रधारणकरं दोषस्तु तद्दर्शने ।
ते वै सङ्करसूकरासुरखरश्वक्रोष्टुकीटोपमा
जाता एव भवन्ति पापपरमास्ते नारकाः केवलम् ॥ ४६

ते दृष्ट्वा शशिभास्करौ निशि दिने स्वजेऽपि नो केवलं
पश्यन्तु श्रुतिरुद्रसूक्तजपतो मुच्येत तेनादृताः ।
तत्सम्भाषणतो भवेद्द्वि नरकं निस्तारवानास्थितं
ये भस्मादिविधारणं हि पुरुषं निन्दनि मन्दा हि ते ॥ ४७

न तान्त्रिकस्त्वधिकृतो नोर्ध्वपुण्ड्रधरो मुने ।
सन्तप्तचक्रचिह्नोऽत्र शिवयज्ञे बहिष्कृतः ॥ ४८

तत्रैते बहवो लोका बृहज्जाबालचोदिताः ।
ते विचार्याः प्रयत्नेन ततो भस्मरतो भवेत् ॥ ४९

यच्चन्दनैश्चन्दनकेऽपि	मिश्रं
धार्य हि भस्मैव त्रिपुण्ड्रभस्मना ।	
विभूतिभालोपरि	किञ्चनापि
धार्य सदा नो यदि सन्ति बुद्धयः ॥ ५०	

स्त्रीभिस्त्रिपुण्ड्रमलकावधि धारणीयं	
भस्म द्विजादिभिरथो विधवाभिरेवम् ।	
तद्वत्सदाश्रमवतां विशदा विभूति-	
र्धार्यापवर्गफलदा सकलाघन्त्री ॥ ५१	

जो लोग तीनों लोकोंके आधारस्वरूप महेश्वर भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं और त्रिपुण्ड्र धारण करनेवालेकी निन्दा करते हैं, उनको तो देखनेसे ही पाप लगता है। वे वर्णसंकर, सुअर, असुर, खर (गधा), श्वान (कुत्ता), क्रोष्टु (सियार) तथा कीड़े-मकोड़ेके समान ही उत्पन्न होते हैं और उन नरकगामी व्यक्तियोंका [यह] जन्म मात्र पाप करनेके लिये ही होता है ॥ ४६ ॥

भगवान् शिवकी तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले उनके भक्तोंकी जो निन्दा करते हैं, उन्हें रातमें देखनेपर चन्द्रमाके दर्शनसे और दिनमें देखनेपर सूर्यके दर्शनसे शुद्धि प्राप्त होती है। [मात्र, इतना ही नहीं स्वप्नमें भी उन्हें देखनेसे पाप लगता है, अतः] स्वप्नमें जो उन्हें देखे, उसको अपनी शुद्धिके लिये श्रुतिमें कहे गये रुद्रसूक्तका आदरपूर्वक पाठ करना चाहिये, तभी उससे छुटकारा मिल सकता है। उनसे बात करनेसे नरक होता है। उस नरकसे मुक्ति प्राप्त करना असम्भव है। जो भस्म-त्रिपुण्ड्र आदि धारण करनेवाले पुरुषकी निन्दा करते हैं, वे निश्चित ही मूर्ख हैं ॥ ४७ ॥

हे मुने! तान्त्रिक, ऊर्ध्वत्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले तथा तपाये हुए चक्र आदि चिह्नोंको धारण करनेवाले इस शिवयज्ञके अधिकारी नहीं हैं, वे इस यज्ञसे बहिष्कृत हैं ॥ ४८ ॥

बृहज्जाबालोपनिषद्में कहे गये वे लोग ही उस यज्ञमें अधिकारी हैं। प्रयत्नपूर्वक उन्हें शिवयज्ञके कार्यमें सम्मिलित करना चाहिये। उन्हें भस्म लगाना चाहिये ॥ ४९ ॥

विभूतिका चन्दनसे या चन्दनमें विभूतिका मिश्रणकर बनाये गये मिश्रित भस्मसे [मस्तकपर] त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। कुछ भी हो मस्तकपर विभूति धारण करना आवश्यक है। यदि बुद्धि नहीं है, तो भी यह करना सदा लोगोंके लिये आवश्यक ही है ॥ ५० ॥

ब्रह्मचारिणी, सधवा तथा विधवा स्त्रियों और ब्राह्मणादि द्विजोंको केशपर्यन्त भस्म धारण करना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यादि आश्रमवालोंको भी स्वच्छ विभूति धारण करना उचित है; क्योंकि विभूति मोक्ष देनेवाली और समस्त पापोंका नाश करनेवाली है ॥ ५१ ॥

त्रिपुण्ड्रं कुरुते यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम्।
महापातकसङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः ॥ ५२

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा यतिः।
ब्रह्मक्षत्राश्च विद्शश्वास्तथान्ये पतिताधमाः ॥ ५३

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च धृत्वा शुद्धा भवन्ति च।
भस्मनो विधिना सम्यक् पापराशिं विहाय च ॥ ५४

भस्मधारी विशेषेण स्त्रीगोहत्यादिपातकैः।
वीरहत्याश्वहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५५

परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्शनम्।
परनिन्दां परक्षेत्रहरणं परपीडनम् ॥ ५६
सस्यारामादिहरणं गृहदाहादिकर्म च।
गोहिरण्यमहिष्यादितिलकम्बलवाससाम् ॥ ५७
अन्नधान्यजलादीनां नीचेभ्यश्च परिग्रहः।
दाशवेश्यामतङ्गीषु वृषलीषु नटीषु च ॥ ५८
रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च मैथुनम्।
मांसचर्मरसादीनां लवणस्य च विक्रयः ॥ ५९
पैशुन्यं कूटवादश्च साक्षिमिथ्याभिलाषिणाम्।
एवमादीन्यसङ्ख्यानि पापानि विविधानि च।
सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ॥ ६०

शिवद्रव्यापहरणं शिवनिन्दा च कुत्रचित्।
निन्दा च शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यति ॥ ६१

रुद्राक्षं यस्य गात्रेषु ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्।
स चाण्डालोऽपि सम्पूज्यः सर्ववर्णोत्तमोत्तमः ॥ ६२

यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन् गङ्गाद्याः सरितश्च याः।
स्नातो भवति सर्वत्र ललाटे यस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ६३

जो भस्मद्वारा विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह [ब्रह्महत्यादि] महापातकसमूहों और [उच्छिष्ठ अन्नादिभक्षण] उपपातकोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ५२ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और संन्यासी [ये चारों आश्रम]; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य वर्णसंकर [ये चारों वर्ण और उपवर्णके लोग]; पतित अथवा नीच मनुष्य भी विधिपूर्वक शरीरपर भस्म-उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र धारण करके शुद्ध हो जाते हैं; [क्योंकि] सम्यक् रूपसे [धारण की गयी] भस्मसे [तत्काल ही] पापराशिसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ५३-५४ ॥

भस्म धारण करनेवाला व्यक्ति विशेष रूपसे स्त्रीहत्या, गोहत्या, वीरहत्या और अश्वहत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ५५ ॥

दूसरेके द्रव्यका अपहरण, परायी स्त्रीका अभिमर्शन, दूसरेकी निन्दा, पराये खेतका अपहरण, दूसरेको कष्ट देना, फसल और बाग आदिका अपहरण, घर फूँकना (जलाना) आदि कर्म, नीचोंसे गाय, सोना, भैंस, तिल-कम्बल, वस्त्र, अन्न, धान्य तथा जल आदिका परिग्रह, दाश (मछुवारा), वेश्या, मतंगी, (चाण्डाली), शूद्रा, नटी, रजस्वला, कन्या और विधवा [स्त्रियों]-से मैथुन, मांस, चर्म, रस तथा नमकका विक्रय, पैशुन्य (चुगली) और अस्पष्ट बात, असत्य गवाही आदि देना—इस प्रकारसे अन्य असंख्य विभिन्न प्रकारके पाप त्रिपुण्ड्र धारण करनेके प्रभावसे तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५६—६० ॥

भगवान् शिवके द्रव्यका अपहरण और जहाँ-कहीं शिवकी निन्दा करनेवाला तथा शिवके भक्तोंकी निन्दा करनेवाला व्यक्ति प्रायश्चित्त करनेपर भी शुद्ध नहीं होता है ॥ ६१ ॥

जिसने शरीरपर रुद्राक्ष और मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण किया है, ऐसा मनुष्य यदि चाण्डाल भी है, तो भी वह सभी वर्णोंमें श्रेष्ठतम और सम्पूज्य है ॥ ६२ ॥

जो मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह इस संसारमें जितने भी तीर्थ हैं और गंगा आदि जितनी नदियाँ हैं, उन सबमें स्नान किये हुएके समान [पुण्यफल प्राप्त करनेवाला] होता है ॥ ६३ ॥

सप्तकोटिमहामन्त्राः पञ्चाक्षरपुरस्सराः ।
तथान्ये कोटिशो मन्त्राः शैवकैवल्यहेतवः ॥ ६४

अन्ये मन्त्राश्च देवानां सर्वसौख्यकरा मुने ।
ते सर्वे तस्य वशयाः स्युर्यो बिभर्ति त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ६५

सहस्रं पूर्वजातानां सहस्रं जनयिष्यताम् ।
स्ववंशजानां ज्ञातीनामुद्धरेद्यस्त्रिपुण्ड्रकृत् ॥ ६६

इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्दीर्घायुव्याधिवर्जितः ।
जीवितान्ते च मरणं सुखेनैव प्रपद्यते ॥ ६७

अष्टैश्वर्यगुणोपेतं प्राप्य दिव्यवपुः शिवम् ।
दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यत्रिदशसेवितम् ॥ ६८

विद्याधराणां सर्वेषां गन्धर्वाणां महौजसाम् ।
इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च यथाक्रमम् ॥ ६९

भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्प्रजेशानां पदेषु च ।
ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र कन्याशतं रमेत् ॥ ७०

तत्र ब्रह्मायुषो मानं भुक्त्वा भोगाननेकशः ।
विष्णोलोके लभेद्दोगं यावद् ब्रह्मशतात्ययः ॥ ७१

शिवलोकं ततः प्राप्य लब्धवेष्ट काममक्षयम् ।
शिवसायुज्यमाप्नोति संशयो नात्र जायते ॥ ७२

सर्वोपनिषदां सारं समालोक्य मुहुर्मुहुः ।
इदमेव हि निर्णीतं परं श्रेयस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ७३

विभूतिं निन्दते यो वै ब्रह्मणः सोऽन्यजातकः ।
प्रयाति नरके घोरे यावद् ब्रह्मा चतुर्मुखः ॥ ७४

पंचाक्षरमन्त्रसे लेकर सात करोड़ महामन्त्र और
अन्य करोड़ों मन्त्र शिवकैवल्यको प्रदान करनेवाले
होते हैं ॥ ६४ ॥

हे मुने! [विष्णु आदि] देवताओंके [लिये
प्रतिपादित] अन्य जो मन्त्र हैं, वे सभी सुखोंको
देनेवाले हैं, जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसके वशमें
वे सब मन्त्र स्वतः ही हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला मनुष्य अपने वंश और
गोत्रमें उत्पन्न हजारों पूर्वजोंका और भविष्यमें उत्पन्न
होनेवाली हजारों सन्तानोंका उद्धार करता है ॥ ६६ ॥

जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसे इस लोकमें
रोगरहित दीर्घ आयु प्राप्त होती है और वह सम्पूर्ण
भोगोंका उपभोग करके जीवनके अन्तिम समयमें
सुखपूर्वक ही मृत्युको प्राप्त करता है। वह मृत्युके
पश्चात् अणिमा, महिमा आदि आठों ऐश्वर्यों और
सद्गुणोंसे युक्त दिव्य शरीरवाले शिवको प्राप्त करता
है और दिव्यलोकके देवोंसे सेवित दिव्य विमानपर
चढ़कर शिवलोकको जाता है ॥ ६७-६८ ॥

वहाँपर वह सभी विद्याधरों और महापराक्रमी गन्धर्वों,
इन्द्रादि लोकपालोंके लोकोंमें क्रमशः जाकर बहुत-से
भोगोंका उपभोग करता हुआ प्रजापतियोंके पदों तथा
ब्रह्माके पदपर आसीन होकर वहाँ [दिव्यलोककी]
सैकड़ों कन्याओंके साथ आनन्दित होता है ॥ ६९-७० ॥

वह उस लोकमें ब्रह्माकी आयुके बराबर आयुको
प्राप्तकर अनेक सुखोंका भोग करके विष्णुलोकको
जाता है और ब्रह्माके सौ वर्षोंतक सुखोंका भोग प्राप्त
करता है। तदनन्तर वह शिवलोकको जाकर इच्छानुकूल
अक्षय कामनाओंको प्राप्तकर शिवका सानिध्य प्राप्त
कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१-७२ ॥

सभी उपनिषदोंके सारको बार-बार सम्यक्
रूपसे देखकर यही निर्णय लिया गया है कि त्रिपुण्ड्र
धारण करना ही परम श्रेष्ठ है ॥ ७३ ॥

जो ब्राह्मण विभूतिकी निन्दा करता है, वह
ब्राह्मण नहीं है, अपितु अन्य जातिका है और विभूति-
निन्दाके कारण उसे चतुर्मुख ब्रह्माकी आयुसीमातक
नरक भोगना पड़ता है ॥ ७४ ॥

श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृतत्रिपुण्डः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥ ७५

जलस्नानं मलत्यागे भस्मस्नानं सदा शुचिः।
मन्त्रस्नानं हरेत्यापं ज्ञानस्नाने परं पदम् ॥ ७६

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
तत्फलं समवाज्नोति भस्मस्नानकरो नरः ॥ ७७

भस्मस्नानं परं तीर्थं गङ्गास्नानं दिने दिने।
भस्मरूपी शिवः साक्षाद्दस्म त्रैलोक्यपावनम् ॥ ७८

न तत्स्नानं न तद्व्यानं न तद्वानं जपो न सः।
त्रिपुण्ड्रेण विना येन विप्रेण यदनुष्ठितम् ॥ ७९

वानप्रस्थस्य कन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा।
मध्याह्नात्प्राङ्गजलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥ ८०

एवं त्रिपुण्ड्रं यः कुर्यान्नित्यं नियतमानसः।
शिवभक्तः स विज्ञेयो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ८१

यस्याङ्गे नैव रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः।
तस्य जन्म निर्धर्ष स्यात्त्रिपुण्ड्रहितो यदि ॥ ८२

एवं त्रिपुण्ड्रमाहात्म्यं समासात् कथितं मया।
रहस्यं सर्वजन्तूनां गोपनीयमिदं त्वया ॥ ८३

तिस्रो रेखा भवन्त्येव स्थानेषु मुनिपुङ्गवाः।
ललाटादिषु सर्वेषु यथोक्तेषु बुधैर्मुने ॥ ८४

श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, बलिवैश्वदेव और देवपूजनके समय जो पूतात्मा मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह मृत्युको भी जीत लेता है ॥ ७५ ॥

मलत्याग करनेपर [शुद्धिके लिये] जलस्नान किया जाता है, भस्मस्नान करनेपर सदा पवित्रता आती है, मन्त्रस्नान पापका हरण करता है और ज्ञानरूपी जलमें अवगाहन करनेपर परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥

समस्त तीर्थोंमें [स्नान करनेसे] जो पुण्य और फल प्राप्त होता है, वह फल, भस्मस्नान करनेवालेको प्राप्त हो जाता है ॥ ७७ ॥

भस्मस्नान ही परम श्रेष्ठ तीर्थ है, जो प्रतिदिन गंगा (तीर्थ)-स्नानके समान है। भस्म तो भस्मरूपी साक्षात् शिव है, जो त्रैलोक्यको पवित्र करनेवाला है ॥ ७८ ॥

बिना त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए जो ब्राह्मण स्नान, ध्यान, दान और जप आदि अनुष्ठान कर्म करता है, वह न तो स्नान है, न ध्यान है, न दान है और न जप आदि अन्य अनुष्ठित कर्म ही है ॥ ७९ ॥

वानप्रस्थ, कन्या और दीक्षारहित मनुष्योंको मध्याह्नके पूर्व ही जलसे युक्त त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये, किंतु मध्याह्नके पश्चात् जलरहित भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना उचित है। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक दृढ़ निश्चयवाला जो व्यक्ति नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसे ही शिवभक्त जानना चाहिये। उसीको भुक्ति तथा मुक्ति भी प्राप्त होती है ॥ ८०-८१ ॥

जिसके अंगपर प्रचुर पुण्य देनेवाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है और वह त्रिपुण्ड्रसे भी रहित है, उसका जन्म लेना व्यर्थ है ॥ ८२ ॥

[इसके पश्चात् भस्मधारण तथा त्रिपुण्ड्रकी महिमा एवं विधि बताकर सूतजीने फिर कहा—हे महर्षियो!] इस प्रकार मैंने संक्षेपसे त्रिपुण्ड्रका माहात्म्य बताया है। यह समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय रहस्य है। अतः आपको भी इसे गुप्त ही रखना चाहिये ॥ ८३ ॥

मुनिवरो! ललाट आदि सभी निर्दिष्ट स्थानोंमें जो भस्मसे तीन तिरछी रेखाएँ बनायी जाती हैं, उन्हींको विद्वानोंने त्रिपुण्ड्र कहा है ॥ ८४ ॥

भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तो भवेद् भ्रुवोः ।
तावत्प्रमाणं सन्धार्य ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ८५

मध्यमानामिकाङ्गुल्या मध्ये तु प्रतिलोमतः ।
अङ्गुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्राख्याभिधीयते ॥ ८६

मध्येऽङ्गुलिभिरादाय तिसृभिर्भस्म यत्तः ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्दक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् ॥ ८७

त्रिसृणामपि रेखानां प्रत्येकं नवदेवताः ।
सर्वत्राङ्गेषु ता वक्ष्ये सावधानतया शृणु ॥ ८८

अकारो गार्हपत्याग्निर्भूर्धर्मश्च रजोगुणः ।
ऋग्वेदश्च क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च ॥ ८९
महादेवश्च रेखायाः प्रथमायाश्च देवता ।
विज्ञेया मुनिशार्दूलाः शिवदीक्षापरायणैः ॥ ९०

उकारो दक्षिणाग्निश्च नभस्तत्त्वं यजुस्तथा ।
मध्यन्दिनं च सवनमिच्छाशक्त्यन्तरात्मकौ ॥ ९१

महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवता ।
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः ॥ ९२

मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमो दिवौ ।
ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयं सवनं तथा ॥ ९३
शिवश्वैव च रेखायास्तृतीयायाश्च देवता ।
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः ॥ ९४

एवं नित्यं नमस्कृत्य सद्दक्त्या स्थानदेवताः ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेच्छुद्धो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ९५

इत्युक्ताः स्थानदेवाश्च सर्वाङ्गेषु मुनीश्वराः ।
तेषां सम्बन्धिनो भक्त्या स्थानानि शृणु साम्प्रतम् ॥ ९६

भौहोंके मध्य भागसे लेकर जहाँतक भौहोंका अन्त है, उतना बड़ा त्रिपुण्ड्र ललाटमें धारण करना चाहिये ॥ ८५ ॥

मध्यमा और अनामिका अङ्गुलीसे दो रेखाएँ करके बीचमें अंगुष्ठद्वारा प्रतिलोमभावसे की गयी रेखा त्रिपुण्ड्र कहलाती है अथवा बीचकी तीन अङ्गुलियोंसे भस्म लेकर यत्पूर्वक भक्तिभावसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। त्रिपुण्ड्र अत्यन्त उत्तम तथा भोग और मोक्षको देनेवाला है ॥ ८६-८७ ॥

त्रिपुण्ड्रकी तीनों रेखाओंमेंसे प्रत्येकके नौ-नौ देवता हैं, जो सभी अंगोंमें स्थित हैं, मैं उनका परिचय देता हूँ सावधान होकर सुनें ॥ ८८ ॥

हे मुनिवरो! प्रणवका प्रथम अक्षर अकार, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी, धर्म, रजोगुण, ऋग्वेद, क्रियाशक्ति, प्रातःसवन तथा महादेव—ये त्रिपुण्ड्रकी प्रथम रेखाके नौ देवता हैं, यह बात शिवदीक्षापरायण पुरुषोंको अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये ॥ ९१-९० ॥

हे मुनिश्रेष्ठो! प्रणवका दूसरा अक्षर उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्वगुण, यजुर्वेद, माध्यन्दिनसवन, इच्छाशक्ति, अन्तरात्मा तथा महेश्वर—ये दूसरी रेखाके नौ देवता हैं—ऐसा शिवदीक्षित लोगोंको जानना चाहिये ॥ ९१-९२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो! प्रणवका तीसरा अक्षर मकार, आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, द्युलोक, ज्ञानशक्ति, सामवेद, तृतीय सवन तथा शिव—ये तीसरी रेखाके नौ देवता हैं—ऐसा शिवदीक्षित भक्तोंको जानना चाहिये ॥ ९३-९४ ॥

इस प्रकार स्थानदेवताओंको उत्तम भक्तिभावसे नित्य नमस्कार करके स्नान आदिसे शुद्ध हुआ पुरुष यदि त्रिपुण्ड्र धारण करे, तो भोग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है ॥ ९५ ॥

हे मुनीश्वरो! ये सम्पूर्ण अंगोंमें स्थान-देवता बताये गये हैं, अब उनसे सम्बन्धित स्थान बताता हूँ भक्तिपूर्वक सुनिये ॥ ९६ ॥

द्वात्रिंशतस्थानके वार्धषोडशस्थानकेऽपि च ।
 अष्टस्थाने तथा चैव पञ्चस्थानेऽपि नान्यसेत् ॥ १७
 उत्तमाङ्गे ललाटे च कर्णयोर्नेत्रयोस्तथा ।
 नासावकत्रगलेष्वेवं हस्तयोरुभयोस्तथः ॥ १८
 कूर्पे मणिबन्धे च हृदये पार्श्वयोर्द्वयोः ।
 नाभौ मुष्कद्वये चैवमूर्वोर्गुल्फे च जानुनि ॥ १९
 जङ्घाद्वये पदद्वन्द्वे द्वात्रिंशतस्थानमुन्तम् ।
 अग्न्यब्भूवायुदिग्देशदिक्पालान् वसुभिः सह ॥ २००
 धरा ध्रुवश्च सोमश्च आपश्वैवानिलोऽनलः ।
 प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्ट प्रकीर्तिताः ॥ २०१
 एतेषां नाममात्रेण त्रिपुण्ड्रं धारयेद् बुधः ।
 कुर्याद्वा षोडशस्थाने त्रिपुण्ड्रं तु समाहितः ॥ २०२
 शीर्षके च ललाटे च कण्ठे चांसद्वये भुजे ।
 कूर्पे मणिबन्धे च हृदये नाभिपार्श्वके ॥ २०३
 पृष्ठे चैवं प्रतिष्ठाप्य यजेत्तत्राश्विदैवते ।
 शिवं शक्तिं तथा रुद्रमीशं नारदमेव च ॥ २०४
 वामादिनवशक्तीश एता षोडश देवताः ।
 नासत्यौ दस्वकश्चैव अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥ २०५
 अथवा मूर्धिन केशे च कर्णयोर्वदने तथा ।
 बाहुद्वये च हृदये नाभ्यामूरुयुगे तथा ॥ २०६
 जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च षोडश ।
 शिवश्वन्दश्च रुद्रः को विघ्नेशो विष्णुरेव वा ॥ २०७
 श्रीश्वैव हृदये शम्भुस्तथा नाभौ प्रजापतिः ।
 नागश्च नागकन्याश्च उभयोर्त्रैषिकन्यकाः ॥ २०८
 पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठे विशालतः ।
 इत्येवं षोडशस्थानमष्टस्थानमथोच्यते ॥ २०९
 गुह्यस्थानं ललाटश्च कर्णद्वयमनुन्तम् ।
 अंसयुग्मं च हृदयं नाभिरित्येवमष्टकम् ॥ २१०
 ब्रह्मा च ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकीर्तिताः ।
 इत्येवं तु समुद्दिष्टं भस्मविद्धिर्मुनीश्वराः ॥ २११

बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पाँच स्थानोंमें मनुष्य त्रिपुण्ड्रका न्यास करे । मस्तक, ललाट, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, कण्ठ, दोनों हाथ, दोनों कोहनी, दोनों कलाई, हृदय, दोनों पार्श्वभाग, नाभि, दोनों अण्डकोष, दोनों ऊरु, दोनों गुल्फ, दोनों घुटने, दोनों पिण्डली और दोनों पैर—ये बत्तीस उत्तम स्थान हैं; इनमें क्रमशः अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, दस दिक्प्रदेश, दस दिक्पाल तथा आठ वसुओंका निवास है ॥ १७—२०० ॥

धरा (धर), ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं । इन सबका नाममात्र लेकर इनके स्थानोंमें विद्वान् पुरुष त्रिपुण्ड्र धारण करे । अथवा एकाग्रचित्त होकर सोलह स्थानोंमें ही त्रिपुण्ड्र धारण करे ॥ २०१-२०२ ॥

मस्तक, ललाट, कण्ठ, दोनों कन्धों, दोनों भुजाओं, दोनों कोहनियों तथा दोनों कलाईयोंमें, हृदयमें, नाभिमें, दोनों पसलियोंमें तथा पृष्ठभागमें त्रिपुण्ड्र लगाकर वहाँ दोनों अश्विनीकुमारों, शिव, शक्ति, रुद्र, ईश तथा नारदका और वामा आदि नौ शक्तियोंका पूजन करे । ये सब मिलकर सोलह देवता हैं । अश्विनीकुमार युगल कहे गये हैं—नासत्य और दस ॥ २०३—२०५ ॥

अथवा मस्तक, केश, दोनों कान, मुख, दोनों भुजा, हृदय, नाभि, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पैर और पृष्ठभाग—इन सोलह स्थानोंमें सोलह त्रिपुण्ड्रका न्यास करे । मस्तकमें शिव, केशोंमें चन्द्रमा, दोनों कानोंमें रुद्र और ब्रह्मा, मुखमें विष्णराज गणेश, दोनों भुजाओंमें विष्णु और लक्ष्मी, हृदयमें शम्भु, नाभिमें प्रजापति, दोनों ऊरुओंमें नाग और नागकन्याएँ, दोनों घुटनोंमें ऋषिकन्याएँ, दोनों पैरोंमें समुद्र तथा विशाल पृष्ठभागमें सम्पूर्ण तीर्थ देवतारूपसे विराजमान हैं । इस प्रकार सोलह स्थानोंका परिचय दिया गया । अब आठ स्थान बताये जा रहे हैं ॥ २०६—२०९ ॥

गुह्यस्थान, ललाट, परम उत्तम कर्णयुगल, दोनों कन्धे, हृदय और नाभि—ये आठ स्थान हैं । इनमें ब्रह्मा तथा सप्तर्षि—ये आठ देवता बताये गये हैं । हे मुनीश्वरो ! भस्मके स्थानको जाननेवाले विद्वानोंने इस तरह आठ स्थानोंका परिचय दिया है । अथवा

अथवा मस्तकं बाहू हृदयं नाभिरेव च।
पञ्चस्थानान्यमून्याहुर्धरणे भस्मविज्ञाः ॥ ११२

यथासम्भवनं कुर्यादेशकालाद्यपेक्षया।
उद्धूलनेऽप्यशक्तश्वेत्रिपुण्ड्रादीनि कारयेत् ॥ ११३

त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रिदेवजनकं शिवम्।
स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ११४

ईशाभ्यां नम इत्युक्त्वा पार्श्वयोश्च त्रिपुण्ड्रकम्।
बीजाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारयेत् प्रकोष्ठयोः ॥ ११५

कुर्यादधः पितृभ्यां च उमेशाभ्यां तथोपरि।
भीमायेति ततः पृष्ठे शिरसः पश्चिमे तथा ॥ ११६

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां भस्मधारणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

॥ इस प्रकार शिवमहापुराणके प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें
भस्मधारणवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

रुद्राक्षधारणकी महिमा तथा उसके विविध भेदोंका वर्णन

सूत उवाच

शौनकर्षे महाप्राज्ञ शिवरूप महामते।
शृणु रुद्राक्षमाहात्म्यं समासात् कथयाम्यहम् ॥ १
शिवप्रियतमो ज्ञेयो रुद्राक्षः परपावनः।
दर्शनात् स्पर्शनाजाप्यात् सर्वपापहरः स्मृतः ॥ २

पुरा रुद्राक्षमहिमा देव्यग्रे कथितो मुने।
लोकोपकरणार्थाय शिवेन परमात्मना ॥ ३

शिव उवाच

श्रूयतां तु महेशानि रुद्राक्षमहिमा शिवे।
कथयामि तव प्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥ ४

मस्तक, दोनों भुजाएँ, हृदय और नाभि—इन पाँच स्थानोंको भस्मवेत्ता पुरुषोंने भस्म धारणके योग्य बताया है। यथासम्भव देश, काल आदिकी अपेक्षा रखते हुए उद्धूलन (भस्म)-को अभिमन्त्रित करना और जलमें मिलाना आदि कार्य करे। यदि उद्धूलनमें भी असमर्थ हो, तो त्रिपुण्ड्र आदि लगाये ॥ ११०—११३ ॥

त्रिनेत्रधारी, तीनों गुणोंके आधार तथा तीनों देवताओंके जनक भगवान् शिवका स्मरण करते हुए 'नमः शिवाय' कहकर ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये। 'ईशाभ्यां नमः'—ऐसा कहकर दोनों पाश्वभागोंमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। 'बीजाभ्यां नमः'—यह बोलकर दोनों प्रकोष्ठोंमें भस्म लगाये। 'पितृभ्यां नमः' कहकर ऊपरके अंगमें तथा 'भीमाय नमः' कहकर पीठमें और सिरके पिछले भागमें त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये ॥ ११४—११६ ॥

सूतजी बोले—हे महाप्राज्ञ ! हे महामते ! शिवरूप हे शौनक ऋषे ! अब मैं संक्षेपसे रुद्राक्षका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनिये ॥ १ ॥

रुद्राक्ष शिवको बहुत ही प्रिय है। इसे परम पावन समझना चाहिये। रुद्राक्षके दर्शनसे, स्पर्शसे तथा उसपर जप करनेसे वह समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला माना गया है ॥ २ ॥

हे मुने ! पूर्वकालमें परमात्मा शिवने समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये देवी पार्वतीके सामने रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन किया था ॥ ३ ॥

शिवजी बोले—हे महेश्वर ! हे शिवे ! मैं आपके प्रेमवश भक्तोंके हितकी कामनासे रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन करता हूँ, सुनिये ॥ ४ ॥

दिव्यवर्षसहस्राणि महेशानि पुनः पुरा।
तपः प्रकुर्वतस्त्रस्तं मनः संयम्य वै मम ॥ ५

स्वतन्त्रेण परेशोन लोकोपकृतिकारिणा।
लीलया परमेशानि चक्षुरुन्मीलितं मया ॥ ६

पुटाभ्यां चारुचक्षुभ्यां पतिता जलबिन्दवः।
तत्राश्रुबिन्दुतो जाता वृक्षा रुद्राक्षसंज्ञकाः ॥ ७

स्थावरत्वमनुप्राप्य भक्तानुग्रहकारणात्।
ते दत्ता विष्णुभक्तेभ्यश्चतुर्वर्णेभ्य एव च ॥ ८

भूमौ गौडोद्भवांश्चक्रे रुद्राक्षाञ्छववल्लभान्।
मथुरायामयोध्यायां लङ्घायां मलये तथा ॥ ९
सह्याद्रौ च तथा काशयां देशेष्वन्येषु वा तथा।
परानसह्यपापौघभेदनाञ्छुतिनोदनान् ॥ १०

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा जाता ममाज्ञया।
रुद्राक्षास्ते पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः ॥ ११

श्वेतरक्ताः पीतकृष्णा वर्णा ज्ञेयाः क्रमाद् बुधैः।
स्वजातीयं नृभिर्धर्य रुद्राक्षं वर्णतः क्रमात् ॥ १२

वर्णस्तु तत्फलं धार्य भुक्तिमुक्तिफलेष्मुभिः।
शिवभक्तैर्विशेषेण शिवयोः प्रीतये सदा ॥ १३

धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम्।
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं सम्प्रकीर्तितम् ॥ १४

अधमं चणमात्रं स्यात् प्रक्रियैषा परोच्यते।
शृणु पार्वति सुप्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥ १५

हे महेशानि! पूर्वकालकी बात है, मैं मनको संयममें रखकर हजारों दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्यामें लगा रहा ॥ ५ ॥

हे परमेश्वरि! मैं सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाला स्वतन्त्र परमेश्वर हूँ। [एक दिन सहसा मेरा मन क्षुब्ध हो उठा।] अतः उस समय मैंने लीलावश ही अपने दोनों नेत्र खोले ॥ ६ ॥

नेत्र खोलते ही मेरे मनोहर नेत्रपुटोंसे कुछ जलकी बूँदें गिरीं। आँसूकी उन बूँदोंसे वहाँ रुद्राक्ष नामक वृक्ष पैदा हो गये ॥ ७ ॥

भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे अश्रुबिन्दु स्थावरभावको प्राप्त हो गये। वे रुद्राक्ष मैंने विष्णुभक्तोंको तथा चारों वर्णोंके लोगोंको बाँट दिये ॥ ८ ॥

भूतलपर अपने प्रिय रुद्राक्षोंको मैंने गौड़ देशमें उत्पन्न किया। मथुरा, अयोध्या, लंका, मलयाचल, सह्यगिरि, काशी तथा अन्य देशोंमें भी उनके अंकुर उगाये। वे उत्तम रुद्राक्ष असह्य पापसमूहोंका भेदन करनेवाले तथा श्रुतियोंके भी प्रेरक हैं ॥ ९-१० ॥

मेरी आज्ञासे वे रुद्राक्ष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातिके भेदसे इस भूतलपर प्रकट हुए। रुद्राक्षोंकी ही जातिके शुभाक्ष भी हैं ॥ ११ ॥

उन ब्राह्मणादि जातिवाले रुद्राक्षोंके वर्ण श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण जानने चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि वे क्रमशः वर्णके अनुसार अपनी जातिका ही रुद्राक्ष धारण करें ॥ १२ ॥

भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले चारों वर्णोंके लोगों और विशेषतः शिवभक्तोंको शिवपार्वतीकी प्रसन्नताके लिये रुद्राक्षके फलोंको अवश्य धारण करना चाहिये ॥ १३ ॥

आँवलेके फलके बराबर जो रुद्राक्ष हो, वह श्रेष्ठ बताया गया है। जो बेरके फलके बराबर हो, उसे मध्यम श्रेणीका कहा गया है। जो चनेके बराबर हो, उसकी गणना निम्न कोटियों की गयी है। हे पार्वति! अब इसकी उत्तमताको परखनेकी यह दूसरी प्रक्रिया भक्तोंकी हितकामनासे बतायी जाती है। अतः आप भलीभाँति प्रेमपूर्वक इस विषयको सुनिये ॥ १४-१५ ॥

बदरीफलमात्रं च यत् स्यात् किल महेश्वरि ।
तथापि फलदं लोके सुखसौभाग्यवर्धनम् ॥ १६

धात्रीफलसमं यत् स्यात् सर्वारिष्टविनाशनम् ।
गुञ्जया सदृशं यत् स्यात् सर्वार्थफलसाधनम् ॥ १७

यथा यथा लघुः स्याद्वै तथाधिकफलप्रदः ।
एकैकतः फलं प्रोक्तं दशांशैरधिकं बुधैः ॥ १८

रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं पापनाशनहेतवे ।
तस्माच्च धारणीयो वै सर्वार्थसाधनो ध्रुवम् ॥ १९

यथा च दृश्यते लोके रुद्राक्षः फलदः शुभः ।
न तथा दृश्यतेऽन्या च मालिका परमेश्वरि ॥ २०

समाः स्निधा दृढाः स्थूलाः कण्टकैः संयुताः शुभाः ।
रुद्राक्षाः कामदा देवि भुक्तिमुक्तिप्रदाः सदा ॥ २१

कृमिदुष्टं छिन्नभिन्नं कण्टकैर्हीनमेव च ।
ब्रणयुक्तमवृत्तं च रुद्राक्षान् षड् विवर्जयेत् ॥ २२

स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् ।
यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ॥ २३

रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ।
रुद्रसङ्ख्याशतं धृत्वा रुद्ररूपो भवेन्नरः ॥ २४

एकादशशतानीह धृत्वा यत्फलमाप्यते ।
तत्फलं शक्यते नैव वकुं वर्षशतैरपि ॥ २५

हे महेश्वरि ! जो रुद्राक्ष बेरके फलके बराबर होता है, वह उतना छोटा होनेपर भी लोकमें उत्तम फल देनेवाला तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला होता है ॥ १६ ॥

जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके बराबर होता है, वह समस्त अरिष्टोंका विनाश करनेवाला होता है तथा जो गुंजाफलके समान बहुत छोटा होता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों और फलोंकी सिद्धि करनेवाला होता है ॥ १७ ॥

रुद्राक्ष जैसे-जैसे छोटा होता है, वैसे-वैसे अधिक फल देनेवाला होता है। एक छोटे रुद्राक्षको विद्वानोंने एक बड़े रुद्राक्षसे दस गुना अधिक फल देनेवाला बताया है ॥ १८ ॥

पापोंका नाश करनेके लिये रुद्राक्षधारण आवश्यक बताया गया है। वह निश्चय ही सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंका साधक है, अतः उसे अवश्य ही धारण करना चाहिये ॥ १९ ॥

हे परमेश्वरि ! लोकमें मंगलमय रुद्राक्ष जैसा फल देनेवाला देखा जाता है, वैसी फलदायिनी दूसरी कोई माला नहीं दिखायी देती ॥ २० ॥

हे देवि ! समान आकार-प्रकारवाले, चिकने, सुदृढ़, स्थूल, कण्टकयुक्त (उभे हुए छोटे-छोटे दानोंवाले) और सुन्दर रुद्राक्ष अभिलिष्ट पदार्थोंके दाता तथा सदैव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं ॥ २१ ॥

जिसे कीड़ोंने दूषित कर दिया हो, जो खण्डित हो, फूटा हो, जिसमें उभे हुए दाने न हों, जो ब्रणयुक्त हो तथा जो पूरा-पूरा गोल न हो, इन छः प्रकारके रुद्राक्षोंको त्याग देना चाहिये ॥ २२ ॥

जिस रुद्राक्षमें अपने आप ही डोरा पिरोनेके योग्य छिद्र हो गया हो, वही यहाँ उत्तम माना गया है। जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छेद किया गया हो, वह मध्यम श्रेणीका होता है ॥ २३ ॥

रुद्राक्षधारण बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। ग्यारह सौ रुद्राक्षोंको धारण करनेवाला मनुष्य रुद्रस्वरूप ही हो जाता है ॥ २४ ॥

इस जगत्‌में ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता ॥ २५ ॥

शतार्थेन युतैः पञ्चशतैर्वै मुकुटं मतम्।
रुद्राक्षैर्विरचेत्सम्यग्भक्तिमान्पुरुषो वरः ॥ २६
त्रिभिः शतैः षष्ठियुक्तैस्त्रिरावृत्या तथा पुनः।
रुद्राक्षैरुपवीतं च निर्मायाङ्गक्तितत्परः ॥ २७
शिखायां च त्रयं प्रोक्तं रुद्राक्षाणां महेश्वरि।
कर्णयोः षट् च षट् चैव वामदक्षिणयोस्तथा ॥ २८
शतमेकोत्तरं कण्ठे बाह्योवै रुद्रसङ्ख्यया।
कूर्परद्वारयोस्तत्र मणिबन्धे तथा पुनः ॥ २९
उपवीते त्रयं धार्य शिवभक्तिरत्नैः।
शेषानुर्वरितान्पञ्च सम्मितान्धारयेत्कठौ ॥ ३०
एतत्सङ्ख्या धृता येन रुद्राक्षाः परमेश्वरि।
तद्वूपं तु प्रणम्य हि स्तुत्यं सर्वैर्महेशवत् ॥ ३१
एवं भूतं स्थितं ध्याने यदा कृत्वासने जनम्।
शिवेति व्याहरंश्वैव दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ ३२
शताधिकसहस्रस्य विधिरेष प्रकीर्तिः।
तदभावे प्रकारोऽन्यः शुभः सम्प्रोच्यते मया ॥ ३३
शिखायामेकरुद्राक्षं शिरसा त्रिंशतं वहेत्।
पञ्चशत्त्वं गले दध्याद् बाह्योः षोडश षोडश ॥ ३४
मणिबन्धे द्वादश द्विस्कन्धे पञ्चशतं वहेत्।
अष्टोत्तरशतैर्माल्यमुपवीतं प्रकल्पयेत् ॥ ३५
एवं सहस्ररुद्राक्षान्धारयेद्यो दृढव्रतः।
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥ ३६
एकं शिखायां रुद्राक्षं चत्वारिंशत् मस्तके।
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ॥ ३७
एकैकं कर्णयोः षट् षट् बाह्योः षोडश षोडश।
करयो रविमानेन द्विगुणेन मुनीश्वर ॥ ३८

भक्तिमान् पुरुष भलीभौति साढे पाँच सौ रुद्राक्षके दानोंका सुन्दर मुकुट बनाये। तीन सौ साठ दानोंको लम्बे सूत्रमें पिरोकर एक हार बना ले। वैसे-वैसे तीन हार बनाकर भक्तिपरायण पुरुष उनका यज्ञोपवीत तैयार करे ॥ २६-२७ ॥

हे महेश्वर! शिवभक्त मनुष्योंको शिखामें तीन, दाहिने और बाँयें दोनों कानोंमें क्रमशः छः-छः, कण्ठमें एक सौ एक, भुजाओंमें ग्यारह-ग्यारह, दोनों कुहनियों और दोनों मणिबन्धोंमें पुनः ग्यारह-ग्यारह, यज्ञोपवीतमें तीन तथा कटिप्रदेशमें गुप्त रूपसे पाँच रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। हे परमेश्वर! [उपर्युक्त कही गयी] इस संख्याके अनुसार जो व्यक्ति रुद्राक्ष धारण करता है, उसका स्वरूप भगवान् शंकरके समान सभी लोगोंके लिये प्रणम्य और स्तुत्य हो जाता है ॥ २८—३१ ॥

इस प्रकार रुद्राक्षसे युक्त होकर मनुष्य जब आसन लगाकर ध्यानपूर्वक शिवका नाम जपने लगता है, तो उसको देखकर पाप स्वतः छोड़कर भाग जाते हैं ॥ ३२ ॥

इस तरह मैंने एक हजार एक सौ रुद्राक्षोंको धारण करनेकी विधि कह दी है। इतने रुद्राक्षोंके न प्राप्त होनेपर मैं दूसरे प्रकारकी कल्याणकारी विधि कह रहा हूँ ॥ ३३ ॥

शिखामें एक, सिरपर तीस, गलेमें पचास और दोनों भुजाओंमें सोलह-सोलह रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ ३४ ॥

दोनों मणिबन्धोंपर बारह, दोनों स्कन्धोंमें पाँच सौ और एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी माला बनाकर यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करना चाहिये ॥ ३५ ॥

इस प्रकार दृढ़ निश्चय करनेवाला जो मनुष्य एक हजार रुद्राक्षोंको धारण करता है, वह रुद्रस्वरूप है; समस्त देवगण जैसे शिवको नमस्कार करते हैं, वैसे ही उसको भी नमन करते हैं ॥ ३६ ॥

शिखामें एक, मस्तकपर चालीस, कण्ठप्रदेशमें बत्तीस, वक्षःस्थलपर एक सौ आठ, प्रत्येक कानमें एक-एक, भुजबन्धोंमें छः-छः या सोलह-सोलह, दोनों हाथोंमें उनका दुगुना अथवा हे मुनीश्वर!

सङ्ख्या प्रीतिधृता येन सोऽपि शैवजनः परः ।
शिववत्पूजनीयो हि वन्द्यः सवैरभीक्षणशः ॥ ३९

शिरसीशानमन्त्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ।
अघोरेण गले धार्य तेनैव हृदयेऽपि च ॥ ४०

अघोरबीजमन्त्रेण करयोर्धारयेत्सुधीः ।
पञ्चदशाक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे ॥ ४१

पञ्चब्रह्मभिरङ्गैश्च त्रिमालां पञ्च सप्त च ।
अथ वा मूलमन्त्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ॥ ४२

मद्यं मांसं तु लशुनं पलाण्डुं शिग्गुमेव च ।
श्लेष्मान्तकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः ॥ ४३

वलक्षं रुद्राक्षं द्विजतनुभिरेवेह विहितं
सुरक्तं क्षत्राणां प्रमुदितमुमे पीतमसकृत् ।
ततो वैश्यैर्धार्यं प्रतिदिवसमावश्यकमहो
तथा कृष्णं शूद्रैः श्रुतिगदितमार्गोऽयमगजे ॥ ४४

वर्णी वनी गृहयतिर्नियमेन दध्या-
देतद्रहस्यपरमो न हि जातु तिष्ठेत् ।
रुद्राक्षधारणमिदं सुकृतैश्च लभ्यं
त्यक्त्वेदमेतदखिलान्नरकान् प्रयान्ति ॥ ४५

आदावामलकास्ततो लघुतरा
रुग्णास्ततः कण्टकैः
सन्दष्टाः कृमिभिस्तनूपकरण-
च्छिद्रेण हीनास्तथा ।
धार्या नैव शुभेष्मुभिश्वरणकवद्
रुद्राक्षमप्यन्ततो
रुद्राक्षो मम लिङ्गमङ्गलमुमे
सूक्ष्मं प्रशस्तं सदा ॥ ४६

सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया ।
धार्याः सदैव रुद्राक्षा यतीनां प्रणवेन हि ॥ ४७

प्रीतिपूर्वक जितनी इच्छा हो, उतने रुद्राक्षोंको धारण करना चाहिये । ऐसा जो करता है, वह शिवभक्त सभी लोगोंके लिये शिवके समान पूजनीय, वन्दनीय और बार-बार दर्शनके योग्य हो जाता है ॥ ३७—३९ ॥

सिरपर ईशानमन्त्रसे, कानमें तत्पुरुषमन्त्रसे तथा गले और हृदयमें अघोरमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये ॥ ४० ॥

विद्वान् पुरुष दोनों हाथोंमें अघोर बीजमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करे और उदरपर वामदेवमन्त्रसे पन्द्रह रुद्राक्षोंद्वारा गैंठी हुई माला धारण करे ॥ ४१ ॥

सद्योजात आदि पाँच ब्रह्ममन्त्रों तथा अंगमन्त्रोंके द्वारा रुद्राक्षकी तीन, पाँच या सात मालाएँ धारण करे अथवा मूलमन्त्र [नमः शिवाय] से ही समस्त रुद्राक्षोंको धारण करे ॥ ४२ ॥

रुद्राक्षधारी पुरुष अपने खान-पानमें मदिरा, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोड़ा, विड्वराह आदिको त्याग दे ॥ ४३ ॥

हे गिरिराजनन्दिनी उमे ! श्वेत रुद्राक्ष केवल ब्रह्मणोंको ही धारण करना चाहिये । गहरे लाल रंगका रुद्राक्ष क्षत्रियोंके लिये हितकर बताया गया है । वैश्योंके लिये प्रतिदिन बार-बार पीले रुद्राक्षको धारण करना आवश्यक है और शूद्रोंको काले रंगका रुद्राक्ष धारण करना चाहिये—यह वेदोक्त मार्ग है ॥ ४४ ॥

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासी—सबको नियमपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना उचित है । इसे धारण किये बिना न रहे, यह परम रहस्य है । इसे धारण करनेका सौभाग्य बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है । इसको त्यागनेवाला व्यक्ति नरकको जाता है ॥ ४५ ॥

हे उमे ! पहले आँखलेके बराबर और फिर उससे भी छोटे रुद्राक्ष धारण करे । जो रोगयुक्त हों, जिनमें दाने न हों, जिन्हें कीड़ोंने खा लिया हो, जिनमें पिरोनेयोग्य छेद न हो, ऐसे रुद्राक्ष मंगलाकांक्षी पुरुषोंको नहीं धारण करना चाहिये । रुद्राक्ष मेरा मंगलमय लिंगविग्रह है । वह अन्ततः चनेके बराबर लघुतर होता है । सूक्ष्म रुद्राक्षको ही सदा प्रशस्त माना गया है ॥ ४६ ॥

सभी आश्रमों, समस्त वर्णों, स्त्रियों और शूद्रोंको भी भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिये । यतियोंके लिये प्रणवके उच्चारणपूर्वक रुद्राक्ष धारण करनेका विधान है ॥ ४७ ॥

दिवा बिभ्रद्रात्रिकृतै रात्रौ बिभ्रद्विवाकृतैः।
प्रातर्मध्याह्नसायाहे मुच्यते सर्वपातकैः॥ ४८

ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके जटाधारिण एव ये।
ये रुद्राक्षधरास्ते वै यमलोकं प्रयान्ति न॥ ४९

रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्ति
तथा त्रिपुण्ड्रं च ललाटमध्ये।
पञ्चाक्षरं ये हि जपन्ति मन्त्रं
पूज्या भवद्धिः खलु ते हि साधवः॥ ५०
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्रं भालपट्टके।
मुखे पञ्चाक्षरं नास्ति तमानय यमालयम्॥ ५१
ज्ञात्वा ज्ञात्वा तत्प्रभावं भस्मरुद्राक्षधारिणः।
ते पूज्याः सर्वदास्माकं नो नेतव्याः कदाचन॥ ५२

एवमाज्ञापयामास कालोऽपि निजकिङ्करान्।
तथेति मत्वा ते सर्वे तूष्णीमासन्सुविस्मिताः॥ ५३
अत एव महादेवि रुद्राक्षोऽप्यधनाशनः।
तद्वरो मत्प्रियः शुद्धोऽत्यधवानपि पार्वति॥ ५४

हस्ते बाहौ तथा मूर्धिन रुद्राक्षं धारयेत्तु यः।
अवध्यः सर्वभूतानां रुद्ररूपी चरेद्धुवि॥ ५५

सुरासुराणां सर्वेषां वन्दनीयः सदा स वै।
पूजनीयो हि दृष्टस्य पापहा च यथा शिवः॥ ५६
ध्यानज्ञानावमुक्तोऽपि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥ ५७

रुद्राक्षेण जपन्मन्त्रं पुण्यं कोटिगुणं भवेत्।
दशकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः॥ ५८

मनुष्य दिनमें [रुद्राक्ष धारण करनेसे] रात्रिमें किये गये पापोंसे और रात्रिमें [रुद्राक्ष धारण करनेसे] दिनमें किये गये पापोंसे; प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल [रुद्राक्ष धारण करनेसे] किये गये समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४८॥

संसारमें जितने भी त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं, जटाधारी हैं और रुद्राक्ष धारण करनेवाले हैं, वे यमलोकको नहीं जाते हैं॥ ४९॥

जिनके ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगा हो और सभी अंग रुद्राक्षसे विभूषित हों तथा जो पंचाक्षरमन्त्रका जप कर रहे हों, वे आप-सदृश पुरुषोंके पूज्य हैं; वे वस्तुतः साधु हैं॥ ५०॥

[यम अपने गणोंको आदेश करते हैं कि] जिसके शरीरपर रुद्राक्ष नहीं है, मस्तकपर त्रिपुण्ड्र नहीं है और मुखमें 'ॐ नमः शिवाय' यह पंचाक्षर मन्त्र नहीं है, उसको यमलोक लाया जाय। [भस्म एवं रुद्राक्षके] उस प्रभावको जानकर या न जानकर जो भस्म और रुद्राक्षको धारण करनेवाले हैं, वे सर्वदा हमारे लिये पूज्य हैं; उन्हें यमलोक नहीं लाना चाहिये॥ ५१-५२॥

कालने भी इस प्रकारसे अपने गणोंको आदेश दिया, तब 'वैसा ही होगा'—ऐसा कहकर आश्चर्यचकित सभी गण चुप हो गये॥ ५३॥

इसलिये हे महादेवि! रुद्राक्ष भी पापोंका नाशक है। हे पार्वति! उसको धारण करनेवाला मनुष्य पापी होनेपर भी मेरे लिये प्रिय है और शुद्ध है॥ ५४॥

हाथमें, भुजाओंमें और सिरपर जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह समस्त प्राणियोंसे अवध्य है और पृथ्वीपर रुद्ररूप होकर विचरण करता है॥ ५५॥

सभी देवों और असुरोंके लिये वह सदैव वन्दनीय एवं पूजनीय है। वह दर्शन करनेवाले प्राणीके पापोंका शिवके समान ही नाश करनेवाला है॥ ५६॥

ध्यान और ज्ञानसे रहित होनेपर भी जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है॥ ५७॥

मणि आदिकी अपेक्षा रुद्राक्षके द्वारा मन्त्रजप करनेसे करोड़ गुना पुण्य प्राप्त होता है और उसको धारण करनेसे तो दस करोड़ गुना पुण्यलाभ होता है॥ ५८॥

यावत्कालं हि जीवस्य शारीरस्थो भवेत्स वै।
तावत्कालं स्वल्पमृत्युर्न तं देवि विबाधते ॥ ५९

त्रिपुण्ड्रेण च संयुक्तं रुद्राक्षाविलसाङ्गकम्।
मृत्युञ्जयं जपन्तं च दृष्ट्वा रुद्रफलं लभेत् ॥ ६०

पञ्चदेवप्रियश्वैव सर्वदेवप्रियस्तथा।
सर्वमन्त्राञ्जपेद्दक्तो रुद्राक्षमालया प्रिये ॥ ६१

विष्णवादिदेवभक्ताश्च धारयेयुर्न संशयः।
रुद्रभक्तो विशेषेण रुद्राक्षान्धारयेत्सदा ॥ ६२

रुद्राक्षा विविधाः प्रोक्तास्तेषां भेदान् वदाम्यहम्।
शृणु पार्वति सद्दक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदान् ॥ ६३

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ६४

यत्र सम्पूजितस्तत्र लक्ष्मीर्दूरतरा न हि।
नश्यन्त्युपद्रवाः सर्वे सर्वकामा भवन्ति हि ॥ ६५

द्विवक्त्रो देवदेवेशः सर्वकामफलप्रदः।
विशेषतः स रुद्राक्षो गोवधं नाशयेद् द्रुतम् ॥ ६६

त्रिवक्त्रो यो हि रुद्राक्षः साक्षात्साधनदः सदा।
तत्प्रभावाद्वेयुवै विद्याः सर्वाः प्रतिष्ठिताः ॥ ६७

चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति।
दर्शनात् स्पर्शनात् सद्यश्वतुर्वर्गफलप्रदः ॥ ६८

हे देवि! यह रुद्राक्ष, प्राणीके शरीरपर जबतक रहता है, तबतक स्वल्पमृत्यु उसे बाधा नहीं पहुँचाती है ॥ ५९ ॥

त्रिपुण्ड्रको धारणकर तथा रुद्राक्षसे सुशोभित अंगवाला होकर मृत्युञ्जयका जप कर रहे उस [पुण्यवान् मनुष्य]-को देखकर ही रुद्रदर्शनका फल प्राप्त हो जाता है ॥ ६० ॥

हे प्रिये! पञ्चदेवप्रिय [अर्थात् स्मार्त और वैष्णव] तथा सर्वदेवप्रिय सभी लोग रुद्राक्षकी मालासे समस्त मन्त्रोंका जप कर सकते हैं ॥ ६१ ॥

विष्णु आदि देवताओंके भक्तोंको भी निस्सन्देह इसे धारण करना चाहिये। रुद्रभक्तोंके लिये तो विशेष रूपसे रुद्राक्ष धारण करना आवश्यक है ॥ ६२ ॥

हे पार्वति! रुद्राक्ष अनेक प्रकारके बताये गये हैं। मैं उनके भेदोंका वर्णन करता हूँ। वे भेद भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले हैं। तुम उत्तम भक्तिभावसे उनका परिचय सुनो ॥ ६३ ॥

एक मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् शिवका स्वरूप है। वह भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करता है। उसके दर्शनमात्रसे ही ब्रह्महत्याका पाप नष्ट हो जाता है ॥ ६४ ॥

जहाँ रुद्राक्षकी पूजा होती है, वहाँसे लक्ष्मी दूर नहीं जातीं, उस स्थानके सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा वहाँ रहनेवाले लोगोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ६५ ॥

दो मुखवाला रुद्राक्ष देवदेवेशवर कहा गया है। वह सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंको देनेवाला है। वह विशेष रूपसे गोहत्याका पाप नष्ट करता है ॥ ६६ ॥

तीन मुखवाला रुद्राक्ष सदा साक्षात् साधनका फल देनेवाला है, उसके प्रभावसे सारी विद्याएँ प्रतिष्ठित हो जाती हैं ॥ ६७ ॥

चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माका रूप है और ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति देनेवाला है। उसके दर्शन और स्पर्शसे शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥

पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निमतः प्रभुः ।
सर्वमुक्तिप्रदश्वैव सर्वकामफलप्रदः ॥ ६९

अगम्यागमनं पापमध्यस्य च भक्षणम् ।
इत्यादिसर्वपापानि पञ्चवक्त्रो व्यपोहति ॥ ७०

षट्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारणाद् दक्षिणे भुजे ।
ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ७१

सप्तवक्त्रो महेशानि ह्यनङ्गो नाम नामतः ।
धारणात्तस्य देवेशि दरिद्रोऽपीश्वरो भवेत् ॥ ७२

रुद्राक्षश्चाष्टवक्त्रश्च वसुमूर्तिश्च भैरवः ।
धारणात्तस्य पूर्णायुर्मृतो भवति शूलभृत् ॥ ७३

भैरवो नववक्त्रश्च कपिलश्च मुनिः स्मृतः ।
दुर्गा वा तदधिष्ठात्री नवरूपा महेश्वरी ॥ ७४

तं धारयेद्वामहस्ते रुद्राक्षं भक्तित्परः ।
सर्वेश्वरो भवेन्नूनं मम तुल्यो न संशयः ॥ ७५

दशवक्त्रो महेशानि स्वयं देवो जनार्दनः ।
धारणात्तस्य देवेशि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७६

एकादशमुखो यस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरि ।
स रुद्रो धारणात्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ ७७

द्वादशास्यं तु रुद्राक्षं धारयेत् केशदेशके ।
आदित्याश्वैव ते सर्वे द्वादशैव स्थितास्तथा ॥ ७८

पाँच मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्निरुद्ररूप है। वह सब कुछ करनेमें समर्थ, सबको मुक्ति देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला है। वह पंचमुख रुद्राक्ष अगम्या स्त्रीके साथ गमन और पापान्-भक्षणसे उत्पन्न समस्त पापोंको दूर कर देता है ॥ ६९-७० ॥

छः मुखोंवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका स्वरूप है। यदि दाहिनी बाँहमें उसे धारण किया जाय, तो धारण करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ७१ ॥

हे महेश्वर! सात मुखवाला रुद्राक्ष अनंग नामसे प्रसिद्ध है। हे देवेश! उसको धारण करनेसे दरिद्र भी ऐश्वर्यशाली हो जाता है ॥ ७२ ॥

आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमूर्ति भैरवरूप है। उसको धारण करनेसे मनुष्य पूर्णायु होता है और मृत्युके पश्चात् शूलधारी शंकर हो जाता है ॥ ७३ ॥

नौ मुखवाले रुद्राक्षको भैरव तथा कपिलमुनिका प्रतीक माना गया है अथवा नौ रूप धारण करनेवाली महेश्वरी दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी मानी गयी हैं ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य भक्तिपरायण होकर अपने बायें हाथमें नवमुख रुद्राक्ष धारण करता है, वह निश्चय ही मेरे समान सर्वेश्वर हो जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ७५ ॥

हे महेश्वर! दस मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् विष्णुका रूप है। हे देवेश! उसको धारण करनेसे मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ७६ ॥

हे परमेश्वर! ग्यारह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह रुद्ररूप है; उसको धारण करनेसे मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है ॥ ७७ ॥

बारह मुखवाले रुद्राक्षको केशप्रदेशमें धारण करे। उसको धारण करनेसे मानो मस्तकपर बारहों आदित्य विराजमान हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

त्रयोदशमुखो विश्वेदेवस्तद्वारणान्नरः ।
सर्वान्कामानवाप्रोति सौभाग्यं मङ्गलं लभेत् ॥ ७९

चतुर्दशमुखो यो हि रुद्राक्षः परमः शिवः ।
धारयेन्मूर्धिन तं भक्त्या सर्वपापं प्रणश्यति ॥ ८०

इति रुद्राक्षभेदा हि प्रोक्ता वै मुखभेदतः ।
तत्तन्मन्त्राज्ञृणु प्रीत्या क्रमाच्छैलेश्वरात्मजे ॥ ८१

ॐ ह्रीं नमः १ ॐ नमः २ ॐ क्लीं नमः ३
ॐ ह्रीं नमः ४ ॐ ह्रीं नमः ५ ॐ ह्रीं हुं नमः ६
ॐ हुं नमः ७ ॐ हुं नमः ८ ॐ ह्रीं हुं नमः ९
ॐ ह्रीं नमः १० ॐ ह्रीं हुं नमः ११ ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः १२ ॐ ह्रीं नमः १३ ॐ नमः १४

भक्तिश्रद्धायुतश्वैव सर्वकामार्थसिद्धये ।
रुद्राक्षान्धारयेन्मन्त्रदैविं आलस्यवर्जितः ॥ ८२

विना मन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः ।
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्तुर्दश ॥ ८३

रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा भूतप्रेतपिशाचकाः ।
डाकिनी शाकिनी चैव ये चान्ये द्रोहकारकाः ॥ ८४

कृत्रिमं चैव यत्किञ्चिदभिचारादिकं च यत् ।
तत्सर्वं दूरतो याति दृष्ट्वा शङ्खितविग्रहम् ॥ ८५

रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा शिवो विष्णुः प्रसीदति ।
देवी गणपतिः सूर्यः सुराश्चान्येऽपि पार्वति ॥ ८६

तेरह मुखवाला रुद्राक्ष विश्वेदेवोंका स्वरूप है। उसको धारण करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त करता है तथा सौभाग्य और मंगललाभ करता है ॥ ७९ ॥

चौदह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह परमशिवरूप है। उसे भक्तिपूर्वक मस्तकपर धारण करे, इससे समस्त पापोंका नाश हो जाता है ॥ ८० ॥

हे गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मुखोंके भेदसे रुद्राक्षके [चौदह] भेद बताये गये। अब तुम क्रमशः उन रुद्राक्षोंके धारण करनेके मन्त्रोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो—

१-३० ह्रीं नमः । २-३० नमः । ३-क्लीं नमः ।
४-३० ह्रीं नमः । ५-३० ह्रीं नमः । ६-३० ह्रीं हुं नमः ।
७-३० हुं नमः । ८-३० हुं नमः । ९-३० ह्रीं हुं नमः ।
१०-३० ह्रीं नमः । ११-३० ह्रीं हुं नमः । १२-३० क्रौं
क्षौं रौं नमः । १३-३० ह्रीं नमः । १४-३० नमः [—
इन चौदह मन्त्रोंद्वारा क्रमशः एकसे लेकर चौदह मुखवाले रुद्राक्षोंको धारण करनेका विधान है।]
साधकको चाहिये कि वह निद्रा और आलस्यका त्याग करके श्रद्धाभक्तिसे सम्पन्न होकर सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये उक्त मन्त्रोंद्वारा उन-उन रुद्राक्षोंको धारण करे ॥ ८१-८२ ॥

इस पृथ्वीपर जो मनुष्य मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित किये बिना ही रुद्राक्ष धारण करता है, वह क्रमशः चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त घोर नरकको जाता है ॥ ८३ ॥

रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले पुरुषको देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा जो अन्य द्रोहकारी राक्षस आदि हैं, वे सब-के-सब दूर भाग जाते हैं। जो कृत्रिम अभिचार आदि कर्म प्रयुक्त होते हैं, वे सब रुद्राक्षधारीको देखकर संशक्त हो दूर चले जाते हैं ॥ ८४-८५ ॥

हे पार्वति! रुद्राक्षमालाधारी पुरुषको देखकर मैं शिव, भगवान् विष्णु, देवी दुर्गा, गणेश, सूर्य तथा अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ८६ ॥

एवं ज्ञात्वा तु माहात्म्यं रुद्राक्षस्य महेश्वरि।
सम्यग्धार्याः समन्नाश्च भक्त्या धर्मविवृद्धये ॥ ८७

इत्युक्तं गिरिजाग्रे हि शिवेन परमात्मना।
भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ८८

शिवस्यातिप्रियौ ज्ञेयौ भस्मरुद्राक्षधारिणौ।
तद्वारणप्रभावाद्विं भुक्तिमुक्तिर्न संशयः ॥ ८९

भस्मरुद्राक्षधारी यः शिवभक्तः स उच्यते।
पञ्चाक्षरजपासक्तः परिपूर्णश्च सन्मुखे ॥ ९०

विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया।
पूजितोऽपि महादेवो नाभीष्टफलदायकः ॥ ९१

तत्सर्वं च समाख्यातं यत्पृष्ठं हि मुनीश्वर।
भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥ ९२
एतद्यः शृणुयान्त्यं माहात्म्यं परमं शुभम्।
रुद्राक्षभस्मनोर्भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ९३
इह सर्वसुखं भुक्त्वा पुत्रपौत्रादिसंयुतः।
लभेत्परत्र सन्मोक्षं शिवस्यातिप्रियो भवेत् ॥ ९४

विद्येश्वरसंहितेयं कथिता वो मुनीश्वराः।
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यं मुक्तिदा शिवशासनात् ॥ ९५

इति श्रीशिवमहापुराणे प्रथमायां विद्येश्वरसंहितायां साध्यसाधनखण्डे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णन
नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २५ ॥

हे महेश्वरि! इस प्रकार रुद्राक्षकी महिमाको जानकर धर्मकी वृद्धिके लिये भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त मन्त्रोद्घारा विधिवत् उसे धारण करना चाहिये ॥ ८७ ॥

[हे मुनीश्वरो!] इस प्रकार परमात्मा शिवने भगवती पार्वतीके सामने भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करनेवाले भस्म तथा रुद्राक्षके माहात्म्यका वर्णन किया था ॥ ८८ ॥

भस्म और रुद्राक्षको धारण करनेवाले मनुष्य भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय हैं। उसको धारण करनेके प्रभावसे ही भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८९ ॥

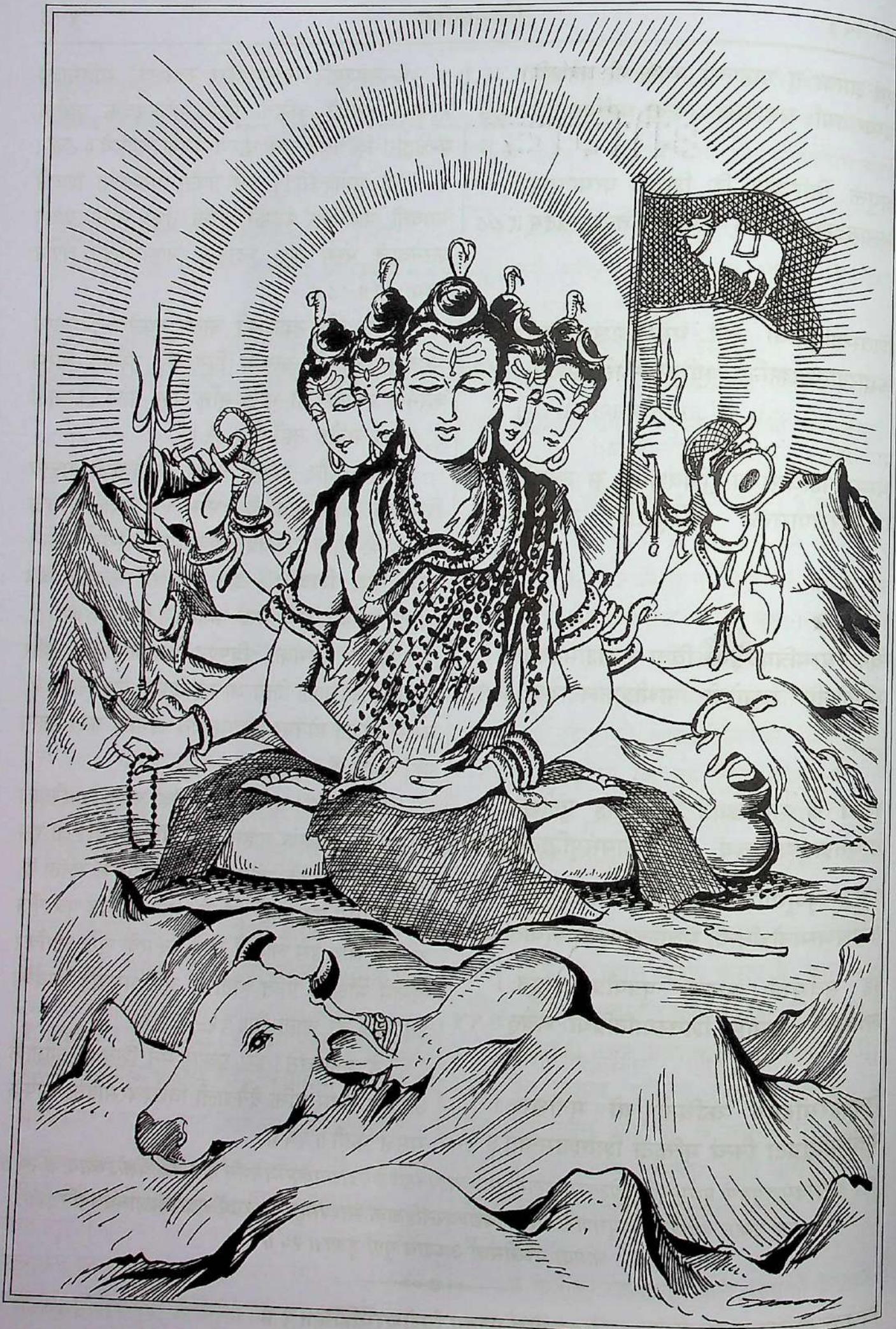
भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य शिवभक्त कहा जाता है। भस्म एवं रुद्राक्षसे युक्त होकर जो मनुष्य [शिवप्रतिमाके सामने स्थित होकर] 'उँ नमः शिवाय'—इस पंचाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह पूर्ण भक्त कहलाता है ॥ ९० ॥

बिना भस्मका त्रिपुण्ड्र धारण किये और बिना रुद्राक्ष-माला लिये जो महादेवकी पूजा करता है, उससे पूजित होनेपर भी महादेव अभीष्ट फल प्रदान नहीं करते हैं ॥ ९१ ॥

हे मुनीश्वर! सभी कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाले भस्म और रुद्राक्षके माहात्म्यको मैंने सुनाया। जो इस रुद्राक्ष और भस्मके माहात्म्यको भक्तिपूर्वक सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वह पुत्र-पौत्र आदिके साथ इस लोकमें सभी प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है और भगवान् शिवका अतिप्रिय हो जाता है ॥ ९२—९४ ॥

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने शिवकी आज्ञाके अनुसार उत्तम मुक्ति देनेवाली विद्येश्वरसंहिता आपके समक्ष कही ॥ ९५ ॥

॥ समाप्तेयं प्रथमा विद्येश्वरसंहिता ॥ १ ॥



पञ्चमुख भगवान् शिव

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमः सृष्टिखण्डः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ऋषियोंके प्रश्नके उत्तरमें श्रीसूतजीद्वारा नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं
गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम्।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं
बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि ॥ १

वन्दे शिवं तं प्रकृतेरनादिं
प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ॥ २

वन्देऽन्तरस्थं निजगूढरूपं
शिवं स्वतः स्वष्टुमिदं विचष्टे।
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति
यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवत्तम् ॥ ३

व्यास उवाच
जगतः पितरं शाभ्मुं जगतो मातरं शिवाम्।
तत्पुत्रञ्च गणाधीशं नत्वैतद्वर्णयामहे ॥ ४
एकदा मुनयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः।
पप्रच्छुर्वरया भक्त्या सूतं ते शौनकादयः ॥ ५

ऋषय ऊचुः

विद्येश्वरसंहितायाः श्रुता सा सत्कथा शुभा।
साध्यसाधनखण्डाख्या रम्याद्या भक्त्यवत्सला ॥ ६

जो विश्वकी उत्पत्ति-स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण हैं, गिरिराजकुमारी उमाके पति हैं, तत्त्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्तिका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं, जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, जो बोधस्वरूप हैं तथा निर्विकार हैं, उन भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

मैं स्वभावसे ही उन अनादि, शान्तस्वरूप, पुरुषोत्तम शिवकी वन्दना करता हूँ, जो अपनी मायासे इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करके आकाशकी भाँति इसके भीतर और बाहर भी स्थित हैं ॥ २ ॥

जैसे लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होकर उसके पास ही लटका रहता है, उसी प्रकार ये सारे जगत् सदा सब ओर जिसके आस-पास ही भ्रमण करते हैं, जिन्होंने अपनेसे ही इस प्रपंचको रचनेकी विधि बतायी थी, जो सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं तथा जिनका अपना स्वरूप अत्यन्त गूढ़ है, उन भगवान् शिवकी मैं सादर वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥

व्यासजी बोले—जगत्के पिता भगवान् शिव, जगन्माता कल्याणमयी पार्वती तथा उनके पुत्र गणेशजीको नमस्कार करके हम इस पुराणका वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले शौनक आदि सभी मुनियोंने उत्तम भक्तिभावके साथ सूतजीसे पूछा— ॥ ५ ॥

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] विद्येश्वर-संहिताकी जो साध्य-साधन-खण्ड नामवाली शुभ तथा उत्तम कथा है, उसे हमलोगोंने सुन लिया। उसका आदिभाग बहुत ही रमणीय है तथा वह शिवभक्तोंपर भगवान् शिवका वात्सल्य-स्नेह प्रकट करनेवाली है ॥ ६ ॥

सूत सूत महाभाग चिरञ्जीव सुखी भव।
यच्छ्रावयसि नस्तात शाङ्करं परमां कथाम्॥ ७

पिबन्तस्त्वन्मुखाभ्योजच्युतं ज्ञानामृतं वयम्।
अवितृप्तः पुनः किञ्चित्प्रष्टुमिच्छामहेऽनघ॥ ८

व्यासप्रसादात्सर्वज्ञो प्राप्तोऽसि कृतकृत्यताम्।
नाज्ञातं विद्यते किञ्चिद्भूतं भव्यं भवच्य यत्॥ ९

गुरोव्यासस्य सद्भक्त्या समासाद्य कृपां पराम्।
सर्वं ज्ञातं विशेषेण सर्वं सार्थं कृतं जनुः॥ १०

इदानीं कथय प्राज्ञ शिवरूपमनुन्तमम्।
दिव्यानि वै चरित्राणि शिवयोरप्यशेषतः॥ ११

अगुणो गुणतां याति कथं लोके महेश्वरः।
शिवतत्त्वं वयं सर्वे न जानीमो विचारतः॥ १२

सृष्टेः पूर्वं कथं शम्भुः स्वरूपेणावतिष्ठते।
सृष्टिमध्ये स हि कथं क्रीडन्संवर्तते प्रभुः॥ १३

तदन्ते च कथं देवः स तिष्ठति महेश्वरः।
कथं प्रसन्नतां याति शङ्करो लोकशङ्करः॥ १४

स प्रसन्नो महेशानः किं प्रयच्छति सत्फलम्।
स्वभक्तेभ्यः परेभ्यश्च तत्सर्वं कथयस्व नः॥ १५

सद्यः प्रसन्नो भगवान्भवतीत्यनुशुश्रुम।
भक्तप्रयासं स महान् पश्यति दयापरः॥ १६

ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च त्रयो देवाः शिवाङ्गजाः।
महेशस्तत्र पूर्णाशः स्वयमेव शिवोऽपरः॥ १७

तस्याविर्भावमाख्याहि चरितानि विशेषतः।
उमाविर्भावमाख्याहि तद्विवाहं तथा प्रभो॥ १८

तदगार्हस्थं विशेषेण तथा लीलाः परा अपि।
एतत्सर्वं तदन्यच्च कथनीयं त्वयानघ॥ १९

हे महाभाग! हे सूतजी! हे तात! आप हमलोगोंको सदाशिव भगवान् शंकरकी उत्तम कथाका श्रवण करा रहे हैं, अतएव आप चिरकालतक जीवित रहें और सदा सुखी रहें। आपके मुखकमलसे निकल रहे ज्ञानामृतका पूर्ण रूपसे पान करते हुए भी हमलोग तृप्त नहीं हो पा रहे हैं, इसलिये हे अनघ (पुण्यात्मा)! हम सब पुनः कुछ पूछना चाहते हैं॥ ७-८॥

भगवान् व्यासकी कृपासे आप सर्वज्ञ एवं कृतकृत्य हैं। आपके लिये भूत-भविष्य और वर्तमानका कुछ भी अज्ञात नहीं है अर्थात् सब कुछ आपको ज्ञात है॥ ९॥

अपनी सद्भक्तिके द्वारा गुरु व्यासजीसे परमकृपाको प्राप्तकर आप विशेष रूपसे सब कुछ जान गये हैं और अपने सम्पूर्ण जीवनको भी कृतार्थ कर लिया है॥ १०॥

हे विद्वन्! अब आप भगवान् शिवके परम उत्तम स्वरूपका वर्णन कीजिये। साथ ही शिव और पार्वतीके दिव्य चरित्रोंका पूर्णरूपसे श्रवण कराइये॥ ११॥

निर्गुण महेश्वर लोकमें सगुणरूप कैसे धारण करते हैं? हम सबलोग विचार करनेपर भी शिवके तत्त्वको नहीं समझ पाते॥ १२॥

सृष्टिके पूर्वमें भगवान् शिव किस प्रकार अपने स्वरूपसे स्थित होते हैं, पुनः सृष्टिके मध्यकालमें वे भगवान् किस तरह क्रीड़ा करते हुए सम्यक् व्यवहार करते हैं। सृष्टिकल्पका अन्त होनेपर वे महेश्वरदेव किस रूपमें स्थित रहते हैं? लोककल्याणकारी शंकर कैसे प्रसन्न होते हैं॥ १३-१४॥

प्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तों तथा दूसरोंको कौन-सा उत्तम फल प्रदान करते हैं? यह सब हमसे कहिये। हमने सुना है कि भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। वे महान् दयालु हैं, इसलिये वे अपने भक्तोंका कष्ट नहीं देख सकते॥ १५-१६॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता शिवके ही अंगसे उत्पन्न हुए हैं। इनमें महेश तो पूर्णाश हैं, वे स्वयं ही दूसरे शिव हैं। आप उनके प्राकट्यकी कथा तथा उनके विशेष चरित्रोंका वर्णन कीजिये। हे प्रभो! आप उमाके आविर्भाव और उनके विवाहकी भी कथा कहिये। विशेषतः उनके गार्हस्थ्यधर्मका और अन्य लीलाओंका भी वर्णन कीजिये। हे निष्पाप सूतजी! ये सब तथा अन्य बातें भी आप बतायें॥ १७-१९॥

व्यास उवाच :

इति पृष्ठस्तदा तैस्तु सूतो हर्षसमन्वितः ।
स्मृत्वा शम्भुपदाम्भोजं प्रत्युवाच मुनीश्वरान् ॥ २०

सूत उवाच

सम्यक् पृष्ठं भवद्दिश्च धन्या यूयं मुनीश्वराः ।
सदाशिवकथायां वो यज्जाता नैष्ठिकी मतिः ॥ २१

सदाशिवकथाप्रशः पुरुषांस्त्रीन्युनाति हि ।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृञ्चाह्नवीसलिलं यथा ॥ २२
शम्भोर्गुणानुवादात्को विरञ्येत पुमान्द्विजाः ।
विना पशुञ्चं त्रिविधजनानन्दकरात्सदा ॥ २३

गीयमानो वितृष्णौश्च भवरोगौषधोऽपि हि ।
मनःश्रोत्राभिरामश्च यतः सर्वार्थदः स वै ॥ २४

कथयामि यथाबुद्धि भवत्प्रश्नानुसारतः ।
शिवलीलां प्रयत्नेन द्विजास्तां शृणुतादरात् ॥ २५

भवद्दिः पृच्छ्यते यद्वत्तत्तथा नारदेन वै ।
पृष्ठं पित्रे प्रेरितेन हरिणा शिवरूपिणा ॥ २६

ब्रह्मा श्रुत्वा सुतवचः शिवभक्तः प्रसन्नधीः ।
जगौ शिवयशः प्रीत्या हर्षयन्मुनिसत्तमम् ॥ २७

व्यास उवाच

सूतोक्तमिति तद्वाक्यमाकर्ण्य द्विजसत्तमाः ।
पप्रच्छुस्तत्सुसंवादं कुतूहलसमन्विताः ॥ २८
ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग शैवोत्तम महामते ।
श्रुत्वा तव वचो रम्यं चेतो नः सकुतूहलम् ॥ २९
कदा बभूव सुखकृद्विधिनारदयोर्महान् ।
संवादो यत्र गिरिशसुलीला भवमोचनी ॥ ३०

विधिनारदसंवादपूर्वकं शाङ्करं यशः ।
ब्रूहि नस्तात तत्प्रीत्या तत्तत्प्रश्नानुसारतः ॥ ३१

व्यासजी बोले—उनके ऐसा पूछनेपर सूतजी प्रसन्न हो उठे और भगवान् शंकरके चरणकमलोंका स्मरण करके मुनीश्वरोंसे कहने लगे— ॥ २० ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो ! आपलोगोंने बड़ी उत्तम बात पूछी है। आपलोग धन्य हैं, जो कि भगवान् सदाशिवकी कथामें आपलोगोंकी आन्तरिक निष्ठा हुई है, सदाशिवसे सम्बन्धित कथा वक्ता, पूछनेवाले और सुननेवाले—इन तीनों प्रकारके पुरुषोंको गंगाजीके समान पवित्र करती है ॥ २१-२२ ॥

हे द्विजो ! पशुओंकी हिंसा करनेवाले निष्ठुर कसाईके सिवा दूसरा कौन पुरुष तीनों प्रकारके लोगोंको सदा आनन्द देनेवाले शिव-गुणानुवादको सुननेसे ऊब सकता है। जिनके मनमें कोई तृष्णा नहीं है, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् शिवके उन गुणोंका गान करते हैं; क्योंकि वह संसाररूपी रोगकी दवा है, मन तथा कानोंको प्रिय लगानेवाला है और सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है ॥ २३-२४ ॥

हे ब्राह्मणो ! आपलोगोंके प्रश्नके अनुसार मैं यथाबुद्धि प्रयत्नपूर्वक शिवलीलाका वर्णन करता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनें ॥ २५ ॥

जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी प्रकार नारदजीने शिवरूपी भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर अपने पिता ब्रह्माजीसे पूछा था। अपने पुत्र नारदका प्रश्न सुनकर शिवभक्त ब्रह्माजीका चित्त प्रसन्न हो गया और वे उन मुनिश्रेष्ठको हर्ष प्रदान करते हुए प्रेमपूर्वक भगवान् शिवके यशका गान करने लगे ॥ २६-२७ ॥

व्यासजी बोले—सूतजीके द्वारा कथित उस वचनको सुनकर वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो उठे और उन लोगोंने उस विषयको उनसे पूछा— ॥ २८ ॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी ! हे महाभाग ! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ ! हे महामते ! आपके सुन्दर वचनको सुनकर हमारे हृदयमें कौतूहल हो रहा है ॥ २९ ॥

ब्रह्मा और नारदका यह महान् सुख देनेवाला संवाद कब हुआ था, जिसमें संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाली शिवलीला वर्णित है ॥ ३० ॥

हे तात ! प्रेमपूर्वक नारदके द्वारा पूछे गये उन-उन प्रश्नोंके अनुसार भगवान् शंकरके यशका गुणानुवाद करनेवाले ब्रह्मा और नारदके संवादका वर्णन करें ॥ ३१ ॥

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
सूतः प्रोवाच सुप्रीतस्तसंवादानुसारतः ॥ ३२

आत्मज्ञानी उन मुनियोंके ऐसे वचनको सुनकर प्रसन्न हुए सूतजी उस ब्रह्मा-नारद-संवादके अनुसार [कही गयी शिवकथाको] कहने लगे ॥ ३२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्टियुपाख्याने मुनिप्रश्नवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें मुनि-प्रश्न-वर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

नारद मुनिकी तपस्या, इन्द्रद्वारा तपस्यामें विघ्न उपस्थित करना, नारदका कामपर विजय पाना और अहंकारसे युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे अपने तपका कथन

सूत उवाच

एकस्मिन्समये विप्रा नारदो मुनिसत्तमः ।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा तपोऽर्थं मन आदधे ॥ १ ॥
हिमशैलगुहा काचिदेका परमशोभना ।
यत्समीपे सुरनदी सदा वहति वेगतः ॥ २ ॥

तत्राश्रमो महादिव्यो नानाशोभासमन्वितः ।
तपोऽर्थं स ययौ तत्र नारदो दिव्यदर्शनः ॥ ३ ॥

तां दृष्ट्वा मुनिशार्दूलस्तेषे स सुचिरं तपः ।
बध्वासनं दृढं मौनी प्राणानायम्य शुद्धधीः ॥ ४ ॥

चक्रे मुनिः समाधिं तमहम्ब्रह्मेति यत्र ह ।
विज्ञानं भवति ब्रह्मसाक्षात्कारकरं द्विजाः ॥ ५ ॥

इत्थं तपति तस्मिन्वै नारदे मुनिसत्तमे ।
चकम्पेऽर्थं शुनासीरो मनस्सन्तापविहृलः ॥ ६ ॥

मनसीति विचिन्त्यासौ मुनिर्मे राज्यमिच्छति ।
तद्विघ्नकरणार्थं हि हरिव्यत्नमियेष सः ॥ ७ ॥

सस्मार स स्मरं शक्तश्वेतसा देवनायकः ।
आजगाम द्रुतं कामः समधीर्महिषीयुतः ॥ ८ ॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो !] एक समयकी बात है, ब्रह्मजीके पुत्र, मुनिशिरोमणि, विनीतचित्त नारदजीने तपस्याके लिये मनमें विचार किया ॥ १ ॥

हिमालय पर्वतमें कोई एक परम शोभा-सम्पन्न गुफा थी, जिसके निकट देवनदी गंगा निरन्तर वेगपूर्वक बहती थीं ॥ २ ॥

वहाँ एक महान् दिव्य आश्रम था, जो नाना प्रकारकी शोभासे सुशोभित था । वे दिव्यदर्शी नारदजी तपस्या करनेके लिये वहाँ गये ॥ ३ ॥

उस गुफाको देखकर मुनिवर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और सुदीर्घकालतक वहाँ तपस्या करते रहे । उनका अन्तःकरण शुद्ध था । वे दृढ़तापूर्वक आसन बाँधकर मौन हो प्राणायामपूर्वक समाधिमें स्थित हो गये ॥ ४ ॥

हे ब्राह्मणो ! उन्होंने वह समाधि लगायी, जिसमें ब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाला ‘अहं ब्रह्मस्मि’ [मैं ब्रह्म हूँ]—यह विज्ञान प्रकट होता है ॥ ५ ॥

मुनिवर नारदजी जब इस प्रकार तपस्या करने लगे, तब देवराज इन्द्र काँप उठे और मानसिक सन्तापसे व्याकुल हो गये ॥ ६ ॥

‘वे नारद मुनि मेरा राज्य लेना चाहते हैं’—मन-ही-मन ऐसा सोचकर इन्द्रने उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये प्रयत्न करनेकी इच्छा की । उस समय देवनायक इन्द्रने मनसे कामदेवका स्मरण किया । [स्मरण करते ही] समान बुद्धिवाले कामदेव अपनी पली रतिके साथ आ गये ॥ ७-८ ॥

अथागतं स्मरं दृष्ट्वा सम्बोध्य सुरराट् प्रभुः ।
उवाच तं प्रपश्याशु स्वार्थे कुटिलशेषुः ॥ ९

इन्द्र उवाच

मित्रवर्य महावीर सर्वदा हितकारक ।
शृणु प्रीत्या वचो मे त्वं कुरु साहाय्यमात्मना ॥ १०
त्वद्बलान्मे बहूनाञ्च तपोगर्वो विनाशितः ।
मद्राज्यस्थिरता मित्र त्वदनुग्रहतः सदा ॥ ११

हिमशैलगुहायां हि मुनिस्तपति नारदः ।
मनसोद्दिश्य विश्वेशं महासंयमवान्दृढः ॥ १२

याचेन विधितो राज्यं स ममेति विशङ्कितः ।
अद्यैव गच्छ तत्र त्वं तत्पोविष्टमाचर ॥ १३

इत्याज्ञप्तो महेन्द्रेण स कामः समधुप्रियः ।
जगाम तत्स्थलं गर्वादुपायं स्वं चकार ह ॥ १४

रचयामास तत्राशु स्वकलाः सकला अपि ।
वसन्तोऽपि स्वप्रभावं चकार विविधं मदात् ॥ १५

न बभूव मुनेश्वेतो विकृतं मुनिसत्तमाः ।
भ्रष्टो बभूव तद्गर्वो महेशानुग्रहेण ह ॥ १६

शृणुतादरतस्तत्र कारणं शौनकादयः ।
ईश्वरानुग्रहेणात्र न प्रभावः स्मरस्य हि ॥ १७

अत्रैव शम्भुनाकारि सुतपश्च स्मरारिणा ।
अत्रैव दग्धस्तेनाशु कामो मुनितपोपहः ॥ १८

कामजीवनहेतोर्हि रत्या सम्प्रार्थितैः सुरैः ।
सम्प्रार्थित उवाचेदं शङ्करो लोकशङ्करः ॥ १९

कञ्चित्समयमासाद्य जीविष्यति सुराः स्मरः ।
परन्त्वह स्मरोपायश्चलिष्यति न कश्चन ॥ २०

आये हुए कामदेवको देखकर कपटबुद्धि देवराज इन्द्र शीघ्र ही स्वार्थके लिये उनको सम्बोधित करते हुए कहने लगे— ॥ ९ ॥

इन्द्र बोले—मित्रोंमें श्रेष्ठ! हे महावीर! हे सर्वदा हितकारक! तुम प्रेमपूर्वक मेरे वचनोंको सुनो और मेरी सहायता करो ॥ १० ॥

हे मित्र! तुम्हारे बलसे मैंने बहुत लोगोंकी तपस्याका गर्व नष्ट किया है। तुम्हारी कृपासे ही मेरा यह राज्य स्थिर है ॥ ११ ॥

पूर्णरूपसे संयमित होकर दृढ़निश्चयी देवर्षि नारद मनसे विश्वेश्वर भगवान् शंकरकी प्राप्तिका लक्ष्य बनाकर हिमालयकी गुफामें तपस्या कर रहे हैं ॥ १२ ॥

मुझे यह शंका है कि [तपस्यासे प्रसन्न] ब्रह्मासे वे मेरा राज्य ही न माँग लें। आज ही तुम वहाँ चले जाओ और उनकी तपस्यामें विघ्न डालो ॥ १३ ॥

इन्द्रसे ऐसी आज्ञा पाकर वे कामदेव वसन्तको साथ लेकर बड़े गर्वसे उस स्थानपर गये और अपना उपाय करने लगे ॥ १४ ॥

उन्होंने वहाँ शीघ्र ही अपनी सारी कलाएँ रच डालीं। वसन्तने भी मदमत्त होकर अनेक प्रकारसे अपना प्रभाव प्रकट किया ॥ १५ ॥

हे मुनिवरो! [कामदेव और वसन्तके अथक प्रयत्न करनेपर भी] नारदमुनिके चित्तमें विकार नहीं उत्पन्न हुआ। महादेवजीके अनुग्रहसे उन दोनोंका गर्व चूर्ण हो गया ॥ १६ ॥

हे शौनक आदि महर्षियो! ऐसा होनेमें जो कारण था, उसे आदरपूर्वक सुनिये। महादेवजीकी कृपासे ही [नारदमुनिपर] कामदेवका कोई प्रभाव नहीं पड़ा ॥ १७ ॥

पहले उसी आश्रममें कामशत्रु भगवान् शिवने उत्तम तपस्या की थी और वहींपर उन्होंने मुनियोंकी तपस्याका नाश करनेवाले कामदेवको शीघ्र ही भस्म कर डाला था ॥ १८ ॥

उस समय रतिने कामदेवको पुनः जीवित करनेके लिये देवताओंसे प्रार्थना की। तब देवताओंने समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरसे याचना की। इसपर वे बोले—हे देवताओ! कुछ समय व्यतीत होनेके बाद कामदेव जीवित तो हो जायेंगे, परंतु यहाँ उनका कोई उपाय नहीं चल सकेगा ॥ १९-२० ॥

इह यावद्दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वामरा: सदा ।
कामबाणप्रभावोऽत्र न चलिष्यत्यसंशयम् ॥ २१

इति शास्त्राभूक्तिः कामो मिथ्यात्मगतिकस्तदा ।
नारदे स जगामाशु दिवमिन्द्रसमीपतः ॥ २२

आचख्यौ सर्ववृत्तान्तं प्रभावं च मुनेः स्मरः ।
तदाज्ञया ययौ स्थानं स्वकीयं समधुप्रियः ॥ २३

विस्मितोऽभूत्सुराधीशः प्रशशंसाथ नारदम् ।
तदवृत्तान्तानभिज्ञो हि मोहितः शिवमायया ॥ २४

दुर्ज्ञया शास्त्रवी माया सर्वेषां प्राणिनामिह ।
भक्तं विनार्पितात्मानं तया सम्मोह्यते जगत् ॥ २५

नारदोऽपि चिरं तस्थौ तत्रेशानुग्रहेण ह ।
पूर्णं मत्वा तपस्तत्स्वं विराम ततो मुनिः ॥ २६

कामाज्यं निजं मत्वा गर्वितोऽभून्मुनीश्वरः ।
वृथैव विगतज्ञानः शिवमायाविमोहितः ॥ २७

धन्या धन्या महामाया शास्त्रवी मुनिसत्तमाः ।
तदगतिं न हि पश्यन्ति विष्णुब्रह्मादयोऽपि हि ॥ २८

तया सम्मोहितोऽतीव नारदो मुनिसत्तमः ।
कैलासं प्रययौ शीघ्रं स्ववृत्तं गदितुं मदी ॥ २९

रुद्रं नत्वाब्रवीत्सर्वं स्ववृत्तं गर्ववान्मुनिः ।
मत्वात्मानं महात्मानं स्वप्रभुञ्च स्मरञ्जयम् ॥ ३०

तच्छ्रुत्वा शङ्करः प्राह नारदं भक्तवत्सलः ।
स्वमायामोहितं हेत्वनभिज्ञं भ्रष्टचेतसम् ॥ ३१

हे अमरगण ! यहाँ खड़े होकर लोग चारों ओर जितनी दूरतककी भूमिको नेत्रोंसे देख पाते हैं, वहाँतक कामदेवके बाणोंका प्रभाव नहीं चल सकेगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २१ ॥

भगवान् शंकरकी इस उक्तिके अनुसार उस समय वहाँ नारदजीके प्रति कामदेवका अपना प्रभाव मिथ्या सिद्ध हुआ । वे शीघ्र ही स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास लौट गये ॥ २२ ॥

वहाँ कामदेवने अपना सारा वृत्तान्त और मुनिका प्रभाव कह दिया । तत्पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे वे वसन्तके साथ अपने स्थानको लौट गये ॥ २३ ॥

उस समय देवराज इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने नारदजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की । परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण वे उस पूर्ववृत्तान्तका स्मरण न कर सके ॥ २४ ॥

वास्तवमें इस संसारमें सभी प्राणियोंके लिये शास्त्रकी मायाको जानना अत्यन्त कठिन है । जिसने अपने-आपको शिवको समर्पित कर दिया है, उस भक्तको छोड़कर शेष सम्पूर्ण जगत् उनकी मायासे मोहित हो जाता है ॥ २५ ॥

नारदजी भी भगवान् शंकरकी कृपासे वहाँ चिर-कालतक तपस्यामें लगे रहे । अन्तमें अपनी तपस्याको पूर्ण हुआ जानकर वे मुनि उससे विरत हो गये ॥ २६ ॥

कामदेवपर अपनी विजय मानकर उन मुनीश्वरको व्यर्थ ही गर्व हो गया । भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें यथार्थ बातका ज्ञान नहीं रहा ॥ २७ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! भगवान् शास्त्रकी महामाया धन्य है, धन्य है । ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी उसकी गतिको नहीं देख पाते हैं ॥ २८ ॥

उस मायासे अत्यन्त मोहित मुनिशिरोमणि नारद गर्वयुक्त होकर अपना [कामविजय-सम्बन्धी] वृत्तान्त बतानेके लिये तुरंत ही कैलास पर्वतपर गये ॥ २९ ॥

वहाँ रुद्रदेवको नमस्कार करके गर्वसे भरे हुए मुनिने अपने आपको महात्मा, प्रभु तथा कामजेता मानकर उनसे अपना सारा वृत्तान्त कहा ॥ ३० ॥

यह सुनकर भक्तवत्सल शंकरजी अपनी मायासे मोहित, वास्तविक कारणसे अनभिज्ञ तथा भ्रष्टचित्त नारदसे कहने लगे— ॥ ३१ ॥

रुद्र उवाच

हे तात नारद प्राज्ञ धन्यस्त्वं शृणु मद्वचः।
वाच्यमेवं न कुत्रापि हरेरग्रे विशेषतः॥ ३२

पृच्छमानोऽपि न ब्रूयाः स्ववृत्तं मे यदुक्तवान्।
गोप्यं गोप्यं सर्वथा हि नैव वाच्यं कदाचन॥ ३३

शास्म्यहं त्वां विशेषेण मम प्रियतमो भवान्।
विष्णुभक्तो यतस्त्वं हि तद्वक्तोऽतीव मेऽनुगः॥ ३४

शास्ति स्मेत्थञ्च बहुशो रुद्रः सूतिकरः प्रभुः।
नारदो न हितं मेने शिवमायाविमोहितः॥ ३५

प्रबला भाविनी कर्मगतिज्ञेया विचक्षणैः।
न निवार्या जनैः कैश्चिदपीच्छा सैव शाङ्करी॥ ३६

ततः स मुनिवर्यो हि ब्रह्मलोकं जगाम ह।
विधिं नत्वाब्रवीत्कामजयं स्वस्य तपोबलात्॥ ३७

तदाकर्ण्य विधिः सोऽथ स्मृत्वा शम्भुपदाम्बुजम्।
विज्ञाय कारणं सर्वं निषिद्धेयं सुतं तदा॥ ३८

मेने हितं न विद्युक्तं नारदो ज्ञानिसत्तमः।
शिवमायामोहितश्च रुदचित्तमदाङ्कुरः॥ ३९

शिवेच्छा यादृशी लोके भवत्येव हि सा तदा।
तदधीनं जगत्पर्वं वचस्तन्यां स्थितं यतः॥ ४०

नारदोऽथ ययौ शीघ्रं विष्णुलोकं विनष्टधीः।
मदाङ्कुरमना वृत्तं गदितुं स्वं तदग्रतः॥ ४१

रुद्र बोले—हे तात! हे नारद! हे प्राज्ञ! तुम धन्य हो। मेरी बात सुनो, अबसे फिर कभी ऐसी बात कहीं भी न कहना और विशेषतः भगवान् विष्णुके सामने तो इसकी चर्चा कदापि न करना॥ ३२॥

तुमने मुझसे अपना जो वृत्तान्त बताया है, उसे पूछनेपर भी दूसरोंके सामने न कहना। यह [सिद्धि-सम्बन्धी] वृत्तान्त सर्वथा गुप्त रखनेयोग्य है, इसे कभी किसीसे प्रकट नहीं करना चाहिये॥ ३३॥

तुम मुझे विशेष प्रिय हो, इसीलिये [अधिक जोर देकर] मैं तुम्हें यह शिक्षा देता हूँ; क्योंकि तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो और उनके भक्त होते हुए मेरे अत्यन्त अनुगामी हो॥ ३४॥

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् रुद्रने नारदजीको शिक्षा दी, परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण नारदजीने उनकी दी हुई शिक्षाको अपने लिये हितकर नहीं माना। भावी कर्मगति अत्यन्त बलवान् होती है, उसे बुद्धिमान् लोग ही जान सकते हैं। भगवान् शिवकी इच्छाको कोई भी मनुष्य नहीं टाल सकता॥ ३५-३६॥

तदनन्तर मुनिशिरोमणि नारद ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने अपने तपोबलसे कामदेवको जीत लेनेकी बात कही॥ ३७॥

उनकी वह बात सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके और समस्त कारण जानकर अपने पुत्रको यह सब कहनेसे मना किया॥ ३८॥

नारदजी शिवकी मायासे मोहित थे, अतएव उनके चित्तमें मदका अंकुर जम गया था। इसलिये ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ नारदजीने ब्रह्माजीकी बातको अपने लिये हितकर नहीं समझा॥ ३९॥

इस लोकमें शिवकी जैसी इच्छा होती है, वैसा ही होता है। समस्त विश्व उन्हींकी इच्छाके अधीन है और उन्हींकी वाणीरूपी तन्त्रीसे बैंधा हुआ है॥ ४०॥

तब नष्ट बुद्धिवाले नारदजी अपना सारा वृत्तान्त गर्वपूर्वक भगवान् विष्णुके सामने कहनेके लिये वहाँसे शीघ्र ही विष्णुलोकमें गये॥ ४१॥

आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा नारदं विष्णुरादरात् ।
उत्थित्वाग्रे गतोऽरं तं शिश्लेष ज्ञातहेतुकः ॥ ४२

स्वासने समुपावेश्य स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ।
हरिः प्राह वचस्तथ्यं नारदं मदनाशनम् ॥ ४३

विष्णुरुवाच

कुत आगम्यते तात किमर्थमिह चागतः ।
धन्यस्त्वं मुनिशार्दूलं तीर्थोऽहं तु तवागमात् ॥ ४४
विष्णुवाक्यमिति श्रुत्वा नारदो गर्वितो मुनिः ।
स्ववृत्तं सर्वमाचष्ट समदं मदमोहितः ॥ ४५

श्रुत्वा मुनिवचो विष्णुः समदं कारणं ततः ।
ज्ञातवानखिलं स्मृत्वा शिवपादाम्बुजं हृदि ॥ ४६

तुष्टाव गिरिशं भक्त्या शिवात्मा शैवराङ्गुरिः ।
साञ्चलिर्विसुधीर्नप्रमस्तकः परमेश्वरम् ॥ ४७

विष्णुरुवाच

देव देव महादेव प्रसीद परमेश्वर ।
धन्यस्त्वं शिव धन्या ते माया सर्वविमोहिनी ॥ ४८
इत्यादि स स्तुतिं कृत्वा शिवस्य परमात्मनः ।
निमील्य नयने ध्यात्वा विरराम पदाम्बुजम् ॥ ४९

यत्कर्तव्यं शङ्करस्य स ज्ञात्वा विश्वपालकः ।
शिवशासनतः प्राह हृदाथ मुनिसत्तमम् ॥ ५०

विष्णुरुवाच

धन्यस्त्वं मुनिशार्दूलं तपोनिधिरुदारधीः ।
भक्तित्रिकं न यस्यास्ति काममोहादयो मुने ॥ ५१

विकारास्तस्य सद्यो वै भवन्त्यखिलदुःखदाः ।
नैष्ठिको ब्रह्मचारी त्वं ज्ञानवैराग्यवान्सदा ॥ ५२

नारद मुनिको आते देखकर भगवान् विष्णु बड़े आदरसे उठकर शीघ्र ही आगे बढ़े और उन्होंने मुनिको हृदयसे लगा लिया । उन्हें मुनिके आगमनके हेतुका ज्ञान पहलेसे ही था । नारदजीको अपने आसनपर बैठाकर भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके श्रीहरि उनसे यथार्थ तथा गर्वनाशक वचन कहने लगे— ॥ ४२-४३ ॥

विष्णु बोले—हे तात ! आप कहाँसे आ रहे हैं ? यहाँ किसलिये आपका आगमन हुआ है ? हे मुनिश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं । आपके शुभागमनसे मैं पवित्र हो गया ॥ ४४ ॥

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर गर्वसे भरे हुए नारद मुनिने मदसे मोहित होकर अपना सारा वृत्तान्त बड़े अभिमानके साथ बताया ॥ ४५ ॥

नारद मुनिका वह अहंकारयुक्त वचन सुनकर मन-ही-मन शिवके चरणारविन्दोंका स्मरणकर भगवान् विष्णुने उनके कामविजयके समस्त यथार्थ कारणको पूर्णरूपसे जान लिया ॥ ४६ ॥

उसके पश्चात् शिवके आत्मस्वरूप, परम शैव, सुबुद्ध भगवान् विष्णु भक्तिपूर्वक अपना सिर झुकाकर हाथ जोड़कर परमेश्वर कैलासपति शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ ४७ ॥

विष्णु बोले—हे देवेश्वर ! हे महादेव ! हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न हों । हे शिव ! आप धन्य हैं और सबको विमोहित करनेवाली आपकी माया भी धन्य है ॥ ४८ ॥

इस प्रकार परमात्मा शिवकी स्तुति करके हरि अपने नेत्रोंको बन्दकर उनके चरणकमलोंमें ध्यानस्थित होकर चुप हो गये ॥ ४९ ॥

विश्वपालक हरि शिवके द्वारा जो होना था, उसे हृदयसे जानकर शिवके आज्ञानुसार मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे कहने लगे— ॥ ५० ॥

विष्णु बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं, आप तपस्याके भण्डार हैं और आपका हृदय भी बड़ा उदार है । हे मुने ! जिसके भीतर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नहीं होते, उसीके मनमें समस्त दुःखोंको देनेवाले काम, मोह आदि विकार शीघ्र उत्पन्न होते हैं । आप तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं और सदा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त रहते हैं, फिर आपमें कामविकार कैसे आ सकता है । आप तो जन्मसे निर्विकार तथा शुद्ध बुद्धिवाले हैं ॥ ५१-५२ ॥

कथं कामविकारी स्याज्जन्मनाविकृतः सुधीः ।
इत्याद्युक्तं वचो भूरि श्रुत्वा स मुनिसत्तमः ॥ ५३
विजहास हृदा नत्वा प्रत्युवाच वचो हरिम् ।

नारद उवाच

किंप्रभावः स्मरः स्वामिन्कृपा यद्यस्ति ते मयि ॥ ५४

इत्युक्त्वा हरिमानप्य ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ ५५

इति श्रीशिवमहापुराणे द्वितीयायां रुद्रसंहितायां प्रथमखण्डे सृष्ट्युपाख्याने नारदतपोवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें
नारदतपोवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

मायानिर्मित नगरमें शीलनिधिकी कन्यापर मोहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे
उनका रूप माँगना, भगवान्‌का अपने रूपके साथ वानरका-सा मुँह देना,
कन्याका भगवान्‌को वरण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणोंको शाप देना

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।
अद्वृतेयं कथा तात वर्णिता कृपया हि नः ॥ १ ॥मुनौ गते हरिस्तात किञ्चकार ततः परम् ।
नारदोऽपि गतः कुत्र तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः ।
प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा नानासूतिकरं बुधः ॥ ३ ॥

सूत उवाच

मुनौ यदृच्छया विष्णुर्गते तस्मिन्हि नारदे ।
शिवेच्छया चकाराशु मायां मायाविशारदः ॥ ४ ॥मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् ।
शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ॥ ५ ॥

श्रीहरिकी कही हुई बहुत-सी बातें सुनकर मुनिशिरोमणि नारदजी जोर-जोरसे हँसने लगे और मन-ही-मन भगवान्‌को प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे— ॥ ५३ ॥

नारदजी बोले—हे स्वामिन्! यदि मुझपर आपकी कृपा है, तब कामदेवका मेरे ऊपर क्या प्रभाव हो सकता है। ऐसा कहकर भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारदमुनि वहाँसे चले गये ॥ ५४-५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें
नारदतपोवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

ऋषिगण बोले—हे सूत! हे सूत! हे महाभाग!

हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है। हे तात! कृपापूर्वक आपने हम सभीको जो कथा सुनायी है, यह निश्चित ही आश्चर्यजनक है ॥ १ ॥

हे तात! मुनिके चले जानेके पश्चात् भगवान् विष्णुने क्या किया और नारदजी कहाँ गये? वह सब आप हमलोगोंको बतायें ॥ २ ॥

व्यासजी बोले—उन ऋषियोंकी बात सुनकर पौराणिकोंमें श्रेष्ठ तथा बुद्धिमान् सूतजी नाना प्रकारकी सृष्टि करनेवाले शिवका स्मरण करके कहने लगे— ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] उन नारदमुनिके इच्छानुसार वहाँसे चले जानेपर भगवान् शिवकी इच्छासे मायाविशारद श्रीहरिने तत्काल अपनी माया प्रकट की ॥ ४ ॥

उन्होंने मुनिके मार्गमें एक विशाल, सौ योजन विस्तारवाले, अद्भुत तथा अत्यन्त मनोहर नगरकी रचना की ॥ ५ ॥

स्वलोकादधिकं रम्यं नानावस्तुविराजितम्।
नरनारीविहाराद्यं चतुर्वर्णाकुलं परम्॥ ६

तत्र राजा शीलनिधिर्नामैश्वर्यसमन्वितः।
सुतास्वयम्वरोद्युक्तो महोत्सवसमन्वितः॥ ७

चतुर्दिग्भ्यः समायातैः संयुतं नृपनन्दनैः।
नानावेषैः सुशोभैश्च तत्कन्यावरणोत्सुकैः॥ ८

एतादृशं पुरं दृष्ट्वा मोहं प्राप्तोऽथ नारदः।
कौतुकी तनृपद्मारं जगाम मदनैधितः॥ ९

आगतं मुनिवर्यं तं दृष्ट्वा शीलनिधिर्नृपः।
उपवेश्यार्चयाञ्छके रत्सिंहासने वरे॥ १०

अथ राजा स्वतनयां नामतः श्रीमतीं वराम्।
नारदस्य समानीयं पादयोः समपातयत्॥ ११

तत्कन्यां प्रेक्ष्य स मुनिनारदः प्राह विस्मितः।
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा॥ १२

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा प्राह कृताञ्जलिः।
दुहितेयं मम मुने श्रीमती नाम नामतः॥ १३

प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभम्।
सा स्वयम्वरसम्प्राप्ता सर्वलक्षणलक्षिता॥ १४

अस्या भाग्यं वद मुने सर्वं जातकमादरात्।
कीदृशं तनयेयं मे वरमाप्यति तद्वद्॥ १५

इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामिच्छुः कामविह्वलः।
समाभाष्य स राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत्॥ १६

भगवान् उसे अपने वैकुण्ठलोकसे भी अधिक रमणीय बनाया था। नाना प्रकारकी वस्तुएँ उस नगरकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ स्त्रियों और पुरुषोंके लिये बहुत-से विहारस्थल थे। वह नगर चारों वर्णोंके लोगोंसे युक्त था॥ ६॥

वहाँ शीलनिधि नामक ऐश्वर्यशाली राजा राज्य करते थे। वे अपनी पुत्रीका स्वयंवर करनेके लिये उद्यत थे। अतः उन्होंने महान् उत्सवका आयोजन किया था। उनकी कन्याका वरण करनेके लिये उत्सुक हो चारों दिशाओंसे बहुत-से राजकुमार आये थे, जो नाना प्रकारकी वेशभूषा तथा सुन्दर शोभासे प्रकाशित हो रहे थे। उन राजकुमारोंसे वह नगर भरा-पूरा दिखायी देता था॥ ७-८॥

ऐसे राजनगरको देख नारदजी मोहित हो गये। वे कौतुकी कामासक नारद राजा शीलनिधिके द्वारपर गये॥ ९॥

मुनिश्रेष्ठ नारदको आया देखकर राजा शीलनिधिने उन्हें श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बिठाकर उनका पूजन किया॥ १०॥

तत्पश्चात् राजाने श्रीमती नामक अपनी सुन्दरी कन्याको बुलवाकर उससे नारदजीके चरणोंमें प्रणाम करवाया॥ ११॥

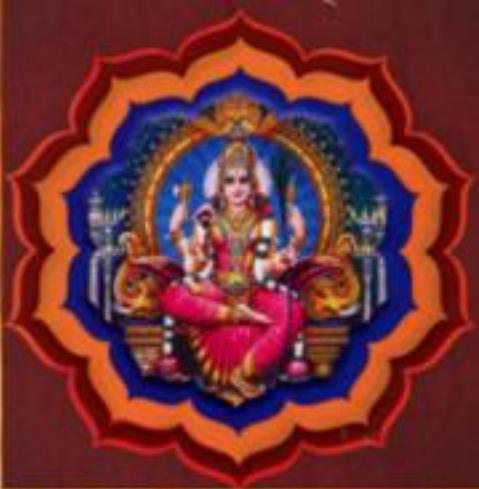
उस कन्याको देखकर नारदमुनि चकित हो गये और बोले—हे राजन्! यह देवकन्याके समान सुन्दरी तथा महाभाग्यशालीनी कन्या कौन है?॥ १२॥

उनकी यह बात सुनकर राजाने हाथ जोड़कर कहा—हे मुने! यह मेरी पुत्री है, इसका नाम श्रीमती है॥ १३॥

अब इसके विवाहका समय आ गया है। यह अपने लिये सुन्दर वर चुननेके निमित्त स्वयंवरमें जानेवाली है। इसमें सब प्रकारके शुभ लक्षण लक्षित होते हैं॥ १४॥

हे महर्षे! आप जन्मस्थ जातक ग्रहोंके अनुसार इसका सम्पूर्ण भाग्य बतायें और यह मेरी पुत्री कैसा वर प्राप्त करेगी, यह भी कहें॥ १५॥

राजाके इस प्रकार पूछनेपर कामसे विह्वल हुए मुनिश्रेष्ठ नारद उस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा मनमें लिये राजाको सम्बोधित करके यह वाक्य बोले—॥ १६॥



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

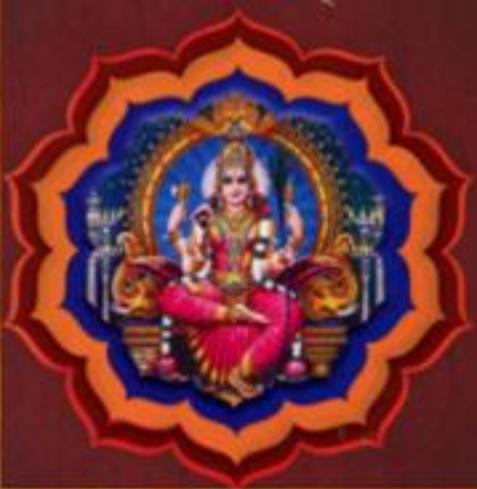
Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server

सुतेयं तव भूपाल सर्वलक्षणलक्षिता ।
महाभाग्यवती धन्या लक्ष्मीरिव गुणालया ॥ १७

सर्वेश्वरोऽजितो वीरो गिरीशसदृशो विभुः ।
अस्याः पतिर्थुवं भावी कामजित्सुरसत्तमः ॥ १८

इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य ययौ यादृच्छिको मुनिः ।
बभूव कामविवशः शिवमायाविमोहितः ॥ १९

चित्ते विचिन्त्य स मुनिराज्यां कन्यकां कथम् ।
स्वयम्वरे नृपालानामेकं मां वृणुयात्कथम् ॥ २०

सौन्दर्यं सर्वनारीणां प्रियं भवति सर्वथा ।
तद् दृष्ट्वैव प्रसन्ना सा स्ववशा नात्र संशयः ॥ २१
विधायेत्थं विष्णुरूपं ग्रहीतुं मुनिसत्तमः ।
विष्णुलोकं जगामाशु नारदः स्मरविह्वलः ॥ २२
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ।
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि स्ववृत्तान्तमशेषतः ॥ २३

तथेत्युक्ते तथाभूते शिवेच्छाकार्यकर्तरि ।
ब्रूहीत्युक्तवति श्रीशे मुनिराह च केशवम् ॥ २४

नारद उवाच

त्वदीयो भूपतिः शीलनिधिः स वृषतत्परः ।
तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती वरवर्णिनी ॥ २५

जगन्मोहिन्यभिख्याता त्रैलोक्येऽप्यतिसुन्दरी ।
परिणेतुमहं विष्णो तामिच्छाम्यद्य मा चिरम् ॥ २६

स्वयम्वरं चकारासौ भूपतिस्तनयेच्छया ।
चतुर्दिग्भ्यः समायाता राजपुत्राः सहस्रशः ॥ २७

यदि दास्यसि रूपं मे तदा तां प्राप्नुयां ध्रुवम् ।
त्वदरूपं सा विना कण्ठे जयमालां न धास्यति ॥ २८

हे भूपाल ! आपकी यह पुत्री समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, परम सौभाग्यवती, धन्य और साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति समस्त गुणोंकी आगार है । इसका पति निश्चय ही भगवान् शंकरके समान वैभवशाली, सर्वेश्वर, किसीसे पराजित न होनेवाला, वीर, कामविजयी तथा सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ होगा ॥ १७-१८ ॥

ऐसा कहकर राजासे विदा लेकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारदमुनि वहाँसे चल दिये । वे कामके वशीभूत हो गये थे । शिवकी मायाने उन्हें विशेष मोहमें डाल दिया था ॥ १९ ॥

वे मुनि मन-ही-मन सोचने लगे कि मैं इस राजकुमारीको कैसे प्राप्त करूँ ! स्वयंवरमें आये हुए नरेशोंमेंसे सबको छोड़कर यह एकमात्र मेरा ही वरण कैसे करे ! ॥ २० ॥

समस्त नारियोंको सौन्दर्य सर्वथा प्रिय होता है । सौन्दर्यको देखकर ही वह प्रसन्नतापूर्वक मेरे अधीन हो सकती है, इसमें संशय नहीं है । ऐसा विचारकर कामसे विह्वल हुए मुनिवर नारद भगवान् विष्णुका रूप ग्रहण करनेके लिये तत्काल उनके लोकमें जा पहुँचे ॥ २१-२२ ॥

वहाँ भगवान् विष्णुको प्रणाम करके वे यह वचन बोले—[हे भगवन्!] मैं एकान्तमें आपसे अपना सारा वृत्तान्त कहूँगा ॥ २३ ॥

तब ‘बहुत अच्छा’—यह कहकर शिव-इच्छित कर्म करनेवाले लक्ष्मीपति श्रीहरि नारदजीके साथ एकान्तमें जा बैठे और बोले—हे मुने ! अब आप अपनी बात कहिये, तब केशवसे मुनि नारदजीने कहा ॥ २४ ॥

नारदजी बोले—हे भगवन् ! आपके भक्त जो राजा शीलनिधि हैं, वे सदा धर्मपालनमें तत्पर रहते हैं । उनकी एक विशाललोचना कन्या है, जो बहुत ही सुन्दरी है । उसका नाम श्रीमती है ॥ २५ ॥

वह जगन्मोहिनीके रूपमें विख्यात है और तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी है । हे विष्णो ! आज मैं शीघ्र ही उस कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ ॥ २६ ॥

राजा शीलनिधिने अपनी पुत्रीकी इच्छासे स्वयंवर रचाया है, इसलिये चारों दिशाओंसे वहाँ हजारों राजकुमार आये हुए हैं । यदि आप अपना रूप मुझे दे दें, तो मैं उसे निश्चित ही प्राप्त कर लूँगा । आपके रूपके बिना वह मेरे कण्ठमें जयमाला नहीं डालेगी ॥ २७-२८ ॥